चाणक्य
सत्यकेतु विद्यालंकार
ASG

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वे दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य

(ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक

सत्यकेतु विद्यालंकार, डी. लिट्. (पेरिस)

(गोविन्दवल्लभ पन्त पुरस्कार, मोतीलाल नेहरू पुरस्कार एवं मंगलाप्रसाद पारितोषिक द्वारा सम्मानित)

श्री सरस्वती सदन

ए-१/३२, सफदरजंग इन्क्लेव, नई दिल्ली-११००२९

[मूल्य : ३७ रुपये]

प्रकाशक :
सरस्वती सदन
ए-१/३२, सफदरजंग इन्क्लेव
नई दिल्ली-११००२९

नौवां संस्करण : १९९०

मुद्रक :
चमन औफसैट प्रेस
सुईवालान
नई दिल्ली-२

विषय-सूची

प्रस्तावना

भारत के इतिहास में मौर्य युग का बहुत अधिक महत्त्व है। मौर्यवंश के सम्राटों ने सम्पूर्ण भारत में अपना एकच्छत्र चक्रवर्ती शासन स्थापित किया था, और उनके प्रताप के कारण यह सम्पूर्ण देश एक राजनीतिक संगठन में संगठित हो गया था। मौर्य साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा हिन्दूकुश पर्वतमाला से भी परे तक थी। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विन्सेण्ट ए. स्मिथ के शब्दों में "दो हजार साल से भी अधिक हुए, भारत के प्रथम सम्राट् (चन्द्रगुप्त मौर्य) ने इस देश की उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ में ही आहें भरते रहे, और जिसे सोलहवीं तथा सतरहवीं सदियों के मुगल सम्राटों ने भी कभी पूर्णता से प्राप्त नहीं किया।"

मौर्य साम्राज्य के निर्माण में आचार्य चाणक्य का प्रमुख कर्तृत्व था। नन्द वंश का नाश कर उन्होंने कुमार चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ कराया, और पंजाब, सिन्ध आदि उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों को यवनों की अधीनता से मुक्त कराके सम्पूर्ण भारत को एक विशाल साम्राज्य के रूप में संगठित किया। भारत की राजनीतिक एकता अंग्रेजों के शासन में भी पूर्ण रूप से स्थापित नहीं हो सकी थी, और अब स्वराज्य के बाद तो यह देश तीन भागों में विभक्त हो गया है। रेल, तार, वायुयान और रेडियो के इस वैज्ञानिक युग में भी भारत में जो एकता स्थापित नहीं होने पाई, उसे आचार्य चाणक्य ने उस युग में स्थापित किया था, जब कि मनुष्य के पास घोड़े से अधिक तेज चलने वाली कोई सवारी नहीं थी। एक राजनीतिज्ञ की दृष्टि से आचार्य चाणक्य का कितना अधिक महत्त्व है, इसका अनुमान केवल इसी एक बात से किया जा सकता है।

पर चाणक्य केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, वे एक महान् आचार्य भी थे और उनका 'अर्थशास्त्र' भारत के प्राचीन राजनीतिशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जब तक 'कौटलीयम् अर्थशास्त्रम्'

प्रकाश में नहीं आया था, यह समझा जाता था कि प्राचीन भारतीय केवल अध्यात्म विद्या के चिन्तन में ही तत्पर रहे और उन्होंने ऐहलौकिक ज्ञान-विज्ञान की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। दर्शन और पारलौकिक चिन्तन के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत-से ग्रन्थ लिखे, पर राज्यशासन और राजनीति जैसे विषयों की उन्होंने सदा उपेक्षा की। पर अकेले 'अर्थशास्त्र' ने इस धारणा को असत्य सिद्ध कर दिया है। चाणक्य द्वारा विरचित अर्थशास्त्र में न केवल राजनीति-सम्बन्धी सिद्धान्तों का ही विशद रूप से प्रतिपादन किया गया है, अपितु साथ ही शासन-प्रबन्ध का भी उसमें विस्तृत रूप से वर्णन है। विद्वानों की दृष्टि में इस ग्रन्थ का महत्त्व प्लेटो और अरिस्टोटल जैसे ग्रीक विद्वानों के ग्रन्थों से कम नहीं है। निःसन्देह, चाणक्य राजनीति-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे और इसी कारण उनके सम्बन्ध में यह लिखा गया था कि 'उन्होंने न केवल नन्द राजा के हाथ में गए हुए राज्य का ही पुनरुद्धार किया, पर साथ ही शास्त्र और शस्त्र का भी पुनरुद्धार किया।' भारत की शास्त्र-शक्ति और शस्त्र-शक्ति का पुनरुद्धार करने वाला यह महान् आचार्य वस्तुतः भारतीय इतिहास में अद्वितीय स्थान रखता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य चाणक्य केवल राजनीतिशास्त्र के ही पण्डित नहीं थे, अपितु दर्शनशास्त्र और कामशास्त्र पर भी उनका अधिकार था। चाणक्य के अनेक नामों में एक नाम वात्स्यायन भी है। कामशास्त्र का रचयिता वात्स्यायन को माना जाता है, और न्याय दर्शन के प्राचीन सूत्रों पर भी वात्स्यायन का भाष्य बहुत प्रसिद्ध है। अनेक विद्वानों का मत है कि कामशास्त्र का रचयिता और न्यायसूत्रों का भाष्य-कार वात्स्यायन एक ही व्यक्ति था, और इसी ने 'अर्थशास्त्र' की भी रचना की थी। इस मत में कहाँ तक सचाई है, इस पर हमें यहाँ विचार करने की आवश्यकता नहीं। यह निर्विवाद है कि चाणक्य भारत की शास्त्रशक्ति का पुनरुद्धार करने वाले महान् आचार्य थे, और उन्होंने जिस विचारसरणी का प्रारम्भ किया, बाद के विद्वान् देर तक उसका अनुसरण करते रहे।

यही कारण है कि चाणक्य के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के कथानक

भारत में चिरकाल तक लिखे जाते रहे, और अनेक प्राचीन पुस्तकों में उनका वृत्तान्त उपलब्ध है। चन्द्रगुप्त मौर्य के लगभग सात सदी बाद गुप्त युग में महाकवि विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' नाटक लिखकर चाणक्य की नीति-कुशलता को बड़े उज्ज्वल रूप में चित्रित किया। विष्णु-पुराण आदि में उपलब्ध ऐतिहासिक अनुश्रुति में चाणक्य के कर्तृत्व को स्मरण किया गया, और कामन्दक नीतिसार, पञ्चतन्त्र, कादम्बरी और दशकुमारचरित आदि कितने ही संस्कृत ग्रन्थों में इस आचार्य का उल्लेख किया गया। केवल संस्कृत साहित्य में ही नहीं, अपितु बौद्ध और जैन ग्रन्थों में भी इस आचार्य के कथानक विद्यमान हैं। प्राचीन पुस्तकों में जो इस ढंग से चाणक्य की स्मृति को सुरक्षित रखा गया है, वह इस बात का प्रमाण है कि इस आचार्य के राजनीतिक कर्तृत्व और विद्वत्ता की स्मृति भारत में बहुत समय तक कायम रही थी।

वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों का ध्यान चाणक्य की ओर आकृष्ट हुआ है। उनके 'अर्थशास्त्र' का अनेक यूरोपियन तथा भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है, और इस ग्रन्थ पर बहुत-सी पुस्तकें विद्वानों ने लिखी हैं। साहित्यिक लोग भी चाणक्य के कर्तृत्व से आकृष्ट हुए, और उन्होंने उन पर अनेक उपन्यास लिखे। हरिनारायण आपटे और कन्हैया-लाल माणिकलाल मुंशी जैसे साहित्यिकों ने मराठी और गुजराती भाषाओं में चाणक्य पर जो उपन्यास लिखे, उनका बहुत आदर हुआ, और पाठकों ने उन्हें बहुत शौक से पढ़ा, क्योंकि उन्हें पढ़कर भारत के अतीत गौरव और चाणक्य के अनुपम कर्तृत्व की एक झलक प्राप्त हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि चाणक्य का कथानक भारतीय पाठकों के लिए एक अद्भुत आकर्षण रखता है।

भारत के प्राचीन इतिहास पर मैंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' में मैंने मौर्यवंश के सम्राटों का वृत्तान्त जहाँ विशद रूप से लिखा है, वहाँ साथ ही चाणक्य और उसके अर्थशास्त्र पर भी विस्तार के साथ प्रकाश डाला है। 'पाटलिपुत्र की कथा' में भी मैंने चाणक्य के राजनीतिक कर्तृत्व की विवेचना की है। इन ग्रन्थों को लिखते

हुए मैं यह अनुभव करता रहा हूँ कि चाणक्य के सम्बन्ध में और अधिक विस्तार से लिखने की आवश्यकता है। हमारे देश के बहुत-से विद्वान् अब तक भी चाणक्य की तुलना मेकियावली से करते हैं। उनकी दृष्टि में चाणक्य एक कूटनीतिज्ञ मात्र था, जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हीन-से-हीन साधनों का प्रयोग करने में संकोच नहीं करता था, और जो राजा को यही उपदेश देता था कि राजनीति में उचित-अनुचित का विवेक करना सर्वथा अनुचित है। कुछ लोग तो शायद यह समझते हैं कि मेकिया-वेली के साथ चाणक्य की तुलना करके वे भारत के इस प्राचीन आचार्य को गौरव प्रदान कर रहे हैं। वे यह भूल जाते हैं कि चाणक्य एक विशाल साम्राज्य के संस्थापक थे, भारत को राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में संगठित कर उन्होंने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया था, और अर्थशास्त्र (राजनीति) पर जो प्रामाणिक ग्रन्थ उन्होंने लिखा, वह संसार के साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास का अनुशीलन करते हुए मैंने यह विचार किया कि चाणक्य पर एक ऐसा उपन्यास लिखूँ, जो सर्वसाधारण पाठकों के लिए भी रुचिकर हो, और जिसे पढ़कर वे भारत के इस महापुरुष के सम्बन्ध में कुछ परिचय पा सकें। इस उपन्यास के लिखने का यही प्रयोजन है। उपन्यास मेरा क्षेत्र नहीं है, अतः मैं अपने प्रयत्न में कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय मैं स्वयं नहीं कर सकता। पर मुझे विश्वास है कि पाठक मेरी इस पुस्तक से आचार्य चाणक्य के सम्बन्ध में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर सकेंगे।

उपन्यास में लेखक अपनी कल्पना से बहुत काम लेता है। इतिहास और उपन्यास में यही मुख्य भेद है। इतिहास में केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन किया जाता है, जो अनुसन्धान द्वारा सत्य सिद्ध हों। पर उपन्यास में लेखक को अपनी कल्पना से भी काम लेने का अवसर मिल जाता है। मैंने भी इस उपन्यास में कल्पना से बहुत काम लिया है।

पर मेरा कथानक ऐतिहासिक तथ्य से अधिक दूर नहीं है। ऐतिहासिक शोध द्वारा यह ज्ञात है कि चाणक्य तक्षशिला के निवासी थे, वहाँ के विश्व-

विख्यात आचार्यों में उनकी गिनती थी, और वे वहां अर्थशास्त्र या राजनीति का अध्यापन करते थे। मोरिय गण का कुमार चन्द्रगुप्त उनके पास अध्ययन के लिए गया था, और चाणक्य इस कुमार की योग्यता से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। जिन दिनों चाणक्य तक्षशिला में अध्यापन का कार्य कर रहे थे, तभी सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय उत्तर-पश्चिमी भारत और पंजाब में बहुत-से छोटे-बड़े राज्यों (जनपदों) की सत्ता थी, जो आपस में संघर्ष करते रहते थे। राजनीतिक एकता का वहाँ सर्वथा अभाव था। मगध के शक्तिशाली राजा यमुना से पूर्व के सम्पूर्ण उत्तरी भारत को अपनी अधीनता में ला चुके थे, और पूर्व में बंगाल की खाड़ी से लगाकर पश्चिम में यमुना नदी तक नन्द वंश का चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित था। पंजाब में राजनीतिक एकता का अभाव होने के कारण सिकन्दर उन्हें जीत सकने में समर्थ हुआ और गान्धार, केकय, मद्रक, कठ, मालव आदि वहुत-से जनपद उसकी अधीनता में आ गए।

यह भी ऐतिहासिक तथ्य है, कि पंजाब में सिकन्दर का शासन देर तक कायम नहीं रह सका। उसके विरुद्ध जो विद्रोह हुआ, उसका नेतृत्व चाणक्य और चन्द्रगुप्त ने किया था, और जनता को यवनों (ग्रीक लोगों) के विरुद्ध भड़काने में ब्राह्मणों और विद्यार्थियों का बहुत हाथ था। ग्रीक लेखकों ने स्पष्ट रूप से लिखा है, कि ब्राह्मण और विद्यार्थी जनता को सिकन्दर के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करते थे, और इन लोगों को मृत्यु से जरा भी भय अनुभव नहीं होता था। इनके प्रचार के कारण पंजाब के जनपदों के निवासी सिकन्दर के विरुद्ध उठ खड़े हुए, और यवन सेनापति उन्हें अपने वश में ला सकने में असमर्थ रहे।

ग्रीक लेखकों ने लिखा है, कि "सिकन्दर के लौटने पर चन्द्रगुप्त ने भारत को स्वतन्त्रता दिलाई। परन्तु कृतकार्य होने पर उसने तुरन्त ही स्वतन्त्रता को दासता के रूप में परिवर्तित कर दिया। जिन्हें उसने विदेशियों के जुए से स्वतन्त्र किया था, उन्हें अब अपने अधीन कर लिया।" यह तथ्य है कि पंजाब के जनपदों को सिकन्दर की अधीनता से स्वतन्त्र कराके चन्द्रगुप्त ने उन्हें अपने अधीन कर लिया था और फिर इन्हीं जनपदों

की सेनाओं की सहायता से मगध के विशाल साम्राज्य पर आक्रमण कर वहाँ से नन्द की शक्ति का अन्त कर दिया था। उत्तर-पश्चिमी भारत और पंजाब पहले चन्द्रगुप्त की अधीनता में आए, और फिर मागध साम्राज्य को जीतकर वह सम्पूर्ण उत्तरी भारत का एकच्छत्र सम्राट् बन गया। इस सब कार्य के पुरोधा या संचालक चाणक्य थे, जिनके मन में पहले पहल यह विचार उत्पन्न हुआ था कि "हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण जो यह आर्य-भूमि है, वह एक चक्रवर्ती साम्राज्य का क्षेत्र है, और उसे एक ही शासन की अधीनता में रहना चाहिए।" चाणक्य ने अपने इस विचार को बड़े स्पष्ट रूप से 'अर्थशास्त्र' में प्रतिपादित किया है।

इसी ऐतिहासिक तथ्य को सम्मुख रखकर मैंने इस उपन्यास के कथानक की रचना की है। मेरा कथानक वास्तविक ऐतिहासिक घटनाक्रम से बहुत भिन्न नहीं है। मौर्य-युग के इतिहास की जो खोज अब तक हुई है, उसके आधार पर यह बात विश्वास के साथ कही जा सकती है।

इस उपन्यास में मौर्य-युग के भारत के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन का चित्र भी पाठकों के सम्मुख उपस्थित होगा। इनका जिस ढंग से चित्रण मैंने किया है, वह चाणक्य द्वारा विरचित 'अर्थशास्त्र' के आधार पर है। छोटे-छोटे जनपदों के उस युग में कूटनीति का जो स्वरूप था, अर्थशास्त्र के अध्ययन से उसका स्पष्ट चित्र हमारे सामने आ जाता है। शस्त्रयुद्ध की अपेक्षा उस समय मन्त्रयुद्ध (कूट राजनीति के युद्ध) को कहीं अधिक महत्व दिया जाता था। विजिगीषु राजा अन्य जनपदों को परास्त करने के लिए अपने गुप्तचरों का बहुत उपयोग करते थे, और साधु, तापस, वेश्या आदि अनेक रूपों में ये गुप्तचर अन्य जनपदों में कार्य किया करते थे। इनका जो वर्णन मैंने इस पुस्तक में किया है, वह कल्पित न होकर 'अर्थशास्त्र' पर आधारित है। इसी प्रकार युद्ध और दुर्ग पर आक्रमण करने का जो ढंग मैंने इस पुस्तक में दिया है, वह भी पूर्णतया 'अर्थशास्त्र' के आधार पर है। राज्य और समाज विषयक जो विचार मैंने इस उपन्यास में दिये हैं, वे भी मेरे अपने नहीं हैं, वे सब

'अर्थशास्त्र' में उसी रूप में मिलते हैं, जैसे कि इस पुस्तक में मैंने दिये हैं।

अपने पात्रों का नाम निर्धारित करते हुए भी मैंने यह ध्यान में रखा है, कि उसी ढंग के नाम रखे जाएं, जैसे कि उस युग में प्रयुक्त होते थे। इसी कारण व्याडि, इन्द्रदत, शकटार आदि नाम मैंने चुने हैं, जिनसे कुछ भ्रम भी हो सकता है। ये नाम प्राचीन पुस्तकों में मिलते हैं, और इनके सम्बन्ध में अनेक कथाएँ भी उपलब्ध हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि इन्द्रदत्त, व्याडि आदि से सम्बद्ध कथाओं का इस उपन्यास के कथानक से सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न न करें। मैंने इन नामों को केवल इसलिए प्रयुक्त किया है, क्योंकि उस युग में ये प्रचलित थे। व्याडि आदि की जो कथाएँ प्राचीन ग्रन्थों में मिलती हैं, वे मुझे ज्ञात हैं। इस उपन्यास के कथानक से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस उपन्यास में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिनसे अनेक पाठक अपरिचित होंगे। ये सब शब्द आचार्य चाणक्य के 'अर्थशास्त्र' से लिये गए हैं। चाणक्य के समय में ये शब्द भारत में प्रचलित थे। उस युग का वातावरण उत्पन्न करने में इन शब्दों से सहायता मिलती है। आशा है, पाठकों को इन्हें समझने में विशेष कठिनाई नहीं होगी। पुस्तक के अन्त में इन शब्दों के अर्थ भी दे दिये गए हैं।

इस उपन्यास में अनेक ऐसे भौगोलिक नाम भी आये हैं, जो वर्तमान समय में प्रचलित नहीं हैं। यवन देश से ग्रीस (यूनान) अभिप्रेत है, और वाहीक से पंजाब। इस प्रकार के प्रदेशों, नगरों और नदियों आदि के नामों का परिचय पुस्तक के प्रारम्भ में दे दिया गया है।

सत्यकेतु विद्यालंकार

स्थान परिचय

अग्रोदक—आग्रेय गण की राजधानी। वर्तमान—अगरोहा (हिसार जिले में)।

अभिसार—जेहलम तथा चनाब नदियों का मध्यवर्ती काश्मीर की उपत्यका का प्रदेश, जिसमें ब्रिटिश युग की पुंछ, राजौरी और भिम्भर रियासतें स्थित थीं।

अर्खोसिया—आजकल का कन्धार प्रदेश।

असिक्नी—चनाब नदी (पंजाब में)।

अहिच्छत्र—उत्तर पाञ्चाल जनपद की राजधानी। वर्तमान समय के बरेली जिले में रामनगर के समीप।

अङ्ग देश—आधुनिक भागलपुर, सहरसा और मुंगेर जिले (बिहार में)।

आरिया—आधुनिक हेरात (अफगानिस्तान में)।

आग्रेय—एक गणराज्य, जिसकी स्थिति हरयाणा के हिसार जिले में थी।

इरावती नदी—आधुनिक रावी नदी।

उपरिशयन—पामीर से हेरात तक की पर्वत-शृंखला का प्रदेश।

उरशा—आधुनिक हजारा जिला (उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त में)।

कठ—एक गणराज्य, जो रावी और व्यास नदियों के बीच में स्थित था। इस प्रदेश को आजकल 'माझा' कहते हैं।

कपिश—हिन्दूकुश पर्वत से काबुल नदी तक का प्रदेश, जिसे आजकल काफिरिस्तान कहते हैं।

कलिङ्ग—वर्तमान उड़ीसा।

कम्बोज—आधुनिक पामीर का प्रदेश।

काम्पिल्य—पाञ्चाल जनपद की अन्यतम नगरी। जब पाञ्चाल जनपद दो भागों में विभक्त हो गया, तो काम्पिल्य दक्षिणी पाञ्चाल की राजधानी बना। उत्तरी पाञ्चाल की राजधानी अहिच्छत्र थी।

कुभा—वर्तमान काबुल नदी।

कुरु देश—गंगा-यमुना नदियों का मध्यवर्ती प्रदेश, जिसमें मेरठ और उसके समीपवर्ती जिले तथा दिल्ली अन्तर्गत थे ।

कुलूत देश—वर्तमान कुल्लू ।

केकय—जेहलम और चनाब नदियों के मध्यवर्ती जेहलम, गुजरात और शाहपुर जिलों का प्रदेश ।

कोलिय—उत्तरी बिहार का अन्यतम गणराज्य ।

कोशल—आधुनिक अवध ।

कौशाम्बी—प्राचीन वत्स राज्य की राजधानी । वर्तमान इलाहाबाद जिले में स्थित कोसम गाँव कौशाम्बी के स्थान को सूचित करता है ।

गदरोशिया—मकरान (बिलोचिस्तान में) ।

गान्धार—इस नाम के दो राज्य थे, पूर्वी गान्धार और पश्चिमी गान्धार । सिन्ध और जेलहम नदियों के बीच में पूर्वी गान्धार था, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी । सिन्ध नदी के पश्चिम में पश्चिमी गान्धार का राज्य था, जिसकी राजधानी पुष्करावती थी ।

गौरी—आधुनिक पंजकोरा नदी ।

चम्पा—अंग देश की राजधानी, जो चम्पा नदी के तट पर स्थित था ।

तक्षशिला—पूर्वी गान्धार की राजधानी । वर्तमान टैक्सिला ।

थ्रेस—प्राचीन ग्रीस का अन्यतम प्रदेश ।

पाञ्चाल—आधुनिक रुहेलखण्ड, फर्रुखाबाद, कन्नौज और कानपुर ।

पार्स—फारस, ईरान ।

पिप्पलिवन—मोरिय गण की राजधानी (उत्तरी बिहार में) ।

पुण्ड्र—पूर्णिया, दीनाजपुर जिले (बिहार में) ।

पुष्करावती—पश्चिमी गान्धार की राजधानी ।

बावेरू—प्राचीन बैबिलोन (ईराक में) ।

बाख्त्री—बैक्ट्रिया (हिन्दूकुश पर्वत के पार) ।

बृहद्हट्ट—वर्तमान बेहट (सहारनपुर जिले में) ।

मद्रक—एक गणराज्य जो पंजाब के सियालकोट क्षेत्र में स्थित था ।

मध्य देश—उत्तरी भारत के वे प्रदेश जो वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश तथा विहार के अन्तर्गत है।

मायापुरी—हरिद्वार क्षेत्र के अन्तर्गत।

यवन सागर—ईजियन सी।

राजगृह—केकय जनपद की राजधानी। मगध की प्राचीन राजधानी का नाम भी राजगृह था।

वाहीक देश—पंजाब।

बाल्हीक—बल्ख (अफगानिस्तान के उत्तर में)।

वज्जि—उत्तरी बिहार का एक जनपद, जिसके नेतृत्व में बौद्ध काल में एक राज्य-संघ भी संगठित हो गया था।

वितस्ता—जेहलम नदी।

विपाशा—व्यास नदी।

वैशाली—वज्जि राज्य-संघ की राजधानी (उत्तरी बिहार में)।

वंक्षु—आमू नदी (मध्य एशिया में)।

शकस्थान—सीस्तान।

शतद्रु—सतलज नदी।

शोण—सोन नदी।

श्रावस्ती—कोशल जनपद की राजधानी।

सांकल—कठ गण राज्य की राजधानी।

सुग्ध—आधुनिक बोखारा, समरकन्द।

सौराष्ट्र—काठियावाड़।

स्रुघ्न—कुरु देश के उत्तर में। सहारनपुर और अम्बाला जिलों के उत्तरी भाग इसके अन्तर्गत थे।

हरउवती—आधुनिक कन्धार। इस नाम की नदी भी इस प्रदेश में थी।

क्षत्रिय—एक गणराज्य जो मध्य पंजाब में स्थित था।

क्षुद्रक—एक गणराज्य जिसकी स्थिति पंजाब में मालव गण के समीप थी।

आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य

(१)

गुरु और शिष्य

जिस युग की कथा हम लिख रहे हैं, उसमें तक्षशिला भारत का सर्वप्रधान शिक्षा-केन्द्र था। अनेक विश्वविख्यात आचार्य तब वहाँ निवास किया करते थे, और उनके ज्ञान और यश से आकृष्ट होकर हजारों विद्यार्थी दूर-दूर से वहाँ आया करते थे। काशी, उज्जैन, अहिच्छत्र आदि की कीर्ति उन दिनों तक्षशिला के सम्मुख मन्द पड़ गई थी, और गान्धार जनपद की यह नगरी मगध, कोशल, वत्स, पाञ्चाल, कुरु, केकय, अभिसार, कपिश, बाल्हीक, कम्बोज आदि जनपदों के विद्यार्थियों से सदा परिपूर्ण रहती थी। त्रयी (वेद), आन्वीक्षकी (दर्शनशास्त्र), दण्डनीति (राजनीतिशास्त्र), वार्त्ता (कृषि, पशुपालन और वाणिज्य), शिल्प, आयुर्वेद, कला, शस्त्र-संचालन आदि सब विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन का तक्षशिला में समुचित प्रबन्ध था; और तब तक किसी विद्यार्थी की शिक्षा को उस युग में पूर्ण नहीं समझा जाता था, जब तक कि वह तक्षशिला जाकर वहाँ के विश्वविख्यात आचार्यों से शिक्षा न प्राप्त कर ले।

तक्षशिला के आचार्यों में कौटल्य विष्णुगुप्त का स्थान प्रमुख था। वे आन्वीक्षकी और दण्डनीति के प्रकाण्ड पण्डित थे, और धनुर्विद्या में उनकी अनुपम गति थी। राजनीति और शस्त्र-संचालन का उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत के विविध जनपदों के बहुत-से राजकुमार उनके चरणों में उपस्थित हुआ करते थे। उनके पास शिक्षा पानेवाले राजकुमारों की संख्या १०१ थी। राजकुमारों के अतिरिक्त चार सौ के लगभग अन्य विद्यार्थी उनकी शिष्यमण्डली के अन्तर्गत थे।

एक दिन दोपहर के समय जब आचार्य विष्णुगुप्त अपनी कुटी के बाहर फुलवारी में टहल रहे थे, एक युवक उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उसकी आयु सोलह साल की थी, कपड़े फटे हुए थे और माथे पर खून की गहरी रेखा चमक रही थी। युवक ने पैर छूकर आचार्य को प्रणाम किया,

और सिर झुकाकर एक ओर खड़ा हो गया। आचार्य ने प्रश्न किया—'तात, तुम कहाँ से आए हो ?'

'पाटलिपुत्र से।'

'तुम किसके पुत्र हो ?'

'मैं मोरियगण के गणमुख्य महानाम का पुत्र हूँ।'

'तो फिर तुम पाटलिपुत्र में क्या करते थे ?'

'जब मगध के सम्राट् महापद्म नन्द ने अपने साम्राज्य का विस्तार करते हुए हिमालय की उपत्यका पर आक्रमण किया, तो पिप्पलिवन का मोरियगण उसके समक्ष नहीं टिक सका। वैशाली का शक्तिशाली वज्जिसंघ पहले ही मगध के साम्राज्यवाद का शिकार हो चुका था। शाक्य, मल्ल, भग्ग, बुली, कोलिय आदि गणराज्य पहले ही अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धो चुके थे। मेरे पिता नन्द की सेना से लड़ते हुए काम आए। जब तक एक भी मोरिय सैनिक जीवित रहा, पिप्पलिवन पर मागध सेनाओं का कब्जा नहीं हो सका। पर वह छोटा-सा राज्य कब तक मगध का मुकाबिला कर सकता था ? पिप्पलिवन पर मागध सेनाओं का अधिकार हो गया, और हजारों मोरिय महिलाओं और बालक-बालिकाओं को बन्दी बनाकर मगध के सैनिक पाटलिपुत्र ले गए। उन्हें पाटलिपुत्र के दासहट्ट में दास-दासियों के रूप में बेच दिया गया। मेरी माता भी उन्हें में थीं। पिप्पलिवन के गणमुख्य की पत्नी, मोरियगण की राजमहिषी, मेरी माँ को नन्द ने अपने अन्तःपुर में दासी का कार्य करने के लिए रख लिया। मेरा बचपन मागध सम्राट् के अन्तःपुर में दासीपुत्र के समान व्यतीत हुआ। यही कारण है, जो मैं अब पाटलिपुत्र से आ रहा हूँ।'

'तुम जानते हो, मेरे शिक्षणालय में दासीपुत्रों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं है।'

'पर मैं दासीपुत्र नहीं हूँ। मेरी माता राजमहिषी है, और मैं राजकुमार हूँ। मोरिय कुमार कभी दास नहीं हो सकते। मेरी नसों में सूर्य वंश के क्षत्रियों का शुद्ध आर्य रक्त प्रवाहित हो रहा है। मेरी प्रतिज्ञा है, कि नन्द को परास्त कर मैं अपने वंश के लुप्त गौरव का पुनरुद्धार करूँगा।'

अच्छा, तुम यहाँ किस लिए आए हो ?'

'दण्डनीति और शस्त्र विद्या की उच्चतमशिक्षा प्राप्त करने के लिए, ताकि मैं अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में सफल हो सकूँ।'

'बहुत ठीक, पर क्या तुम आचार्य का भाग (शुल्क) साथ लाए हो, या शिक्षा के बदले में सेवा करने का विचार रखते हो ? तुम्हें ज्ञात होगा,

मेरे शिक्षणालय में शिक्षा का शुल्क १००० कार्षापण है।'

'आचार्य का शुल्क दे सकने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है, और सेवा करने का मुझे अभ्यास नहीं है। यह कार्य मेरे कुल-गौरव के अनुरूप भी नहीं है।'

'तो फिर तुम अपना निर्वाह किस प्रकार करोगे ?'

'मैं आचार्य का शुल्क अपनी तलवार के जोर पर चुकाने के लिए उद्यत हूँ। जब मैं नन्द को परास्त कर मोरियगण की स्वतन्त्रता का पुनरुद्धार करूँगा, तो आचार्य के शुल्क को ब्याज सहित चुका दूंगा।'

'तुम्हारे माथे पर खून की यह रेखा कैसी है ?'

'मैं कल रात ही श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ तक्षशिला आ गया था। मेरी इच्छा थी कि मैं रात को ही आचार्य के चरणों में उपस्थित हो जाऊँ। पर अँधेरा हो जाने के कारण तक्षशिला के द्वार तब तक बन्द हो गए थे, और श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ को नगर के बाहर पान्थागार में विश्राम करने के लिए विवश होना पड़ा था। मैंने अकेले नगर में प्रवेश करने का प्रयत्न किया, पर दुर्गपाल के सैनिकों ने मेरे मार्ग को रोक लिया। मेरे लिए यह सम्भव नहीं था कि मैं अपने इस अपमान को सह सकता। मैंने तलवार खींच ली, और दो सैनिकों को घायल कर दिया। पर गान्धार जनपद की दुर्गपाल सेना का मुकाबिला कर सकना अकेले मेरे लिए सम्भव नहीं था। मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। मेरे माथे पर खून की जो रेखा चमक रही है, वह इसी खड्गयुद्ध का प्रमाणपत्र है।'

'तो फिर तुम दुर्गपाल की कैद से इतनी जल्दी कैसे मुक्त हो गए ?'

'आज सुबह मुझे तक्षशिला के कण्टकशोधन (फौजदारी) न्यायालय के सम्मुख पेश किया गया था। मुझ पर यह आरोप लगाया गया कि मैंने गान्धार जनपद के राजशासन का उल्लंघन किया, और दो राजकीय सैनिकों पर आक्रमण किया। मैंने इस अभियोग का प्रत्याख्यान नहीं किया। मैंने सब बातें सच-सच बयान कर दीं और अपने अपराध को स्वीकार कर लिया। प्रदेष्टा (न्यायाधीश) को जब यह ज्ञात हुआ कि में मोरिय जनपद का राजकुमार हूँ, आचार्य के पास रहकर विद्याध्ययन करने के लिए आया हूँ, और गान्धार के राजशासन से अपरिचित होने के कारण ही आवेश में आकर मुझसे यह अपराध हो गया था, तो मेरी किशोरावस्था को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने मुझे बन्धन-मुक्त कर देने की आज्ञा प्रदान कर दी। पर साथ ही मुझे इस बात के लिए सावधान भी कर दिया कि तक्षशिला में निवास करते हुए भविष्य में फिर कभी गान्धार जनपद

के चरित्र, व्यवहार और राजशासन का उल्लंघन न करूँ।'

'तुमने अब तक क्या शिक्षा प्राप्त की है, कुमार?'

'पाटलिपुत्र में दासीपुत्र के समान जीवन व्यतीत करते हुए मुझे नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिल सका, आचार्य! पर मैं धनुष, खड्ग, शक्ति, प्रास, शूल, तोमर आदि अस्त्र-शस्त्रों के चलाने में निपुण हूँ। अपनी माता से राजनीति और दर्शनशास्त्र का भी कुछ ज्ञान मैंने प्राप्त किया है।'

'मगधराज के अन्तःपुर से तुम किस प्रकार बाहर आ सके? पाटलिपुत्र की आन्तर्वंशिक सेना से तुम कैसे बच पाए?'

'नन्द के अन्तःपुर का दास्य जीवन मेरे हृदय में शूल की तरह चुभा करता था, आचार्य! मेरी माता मुझे पिप्पलिवन के गणराज्य की गौरव-गाथाएँ बहुधा सुनाती रहती थीं। उन्हें सुनते हुए मेरे हृदय में मगध के राजवंश के प्रति विद्वेष की अग्नि भड़क उठती थी। मैं सोचता था, किसी प्रकार नन्द की आन्तर्वंशिक सेना की नजर से बचकर पाटलिपुत्र से बाहर निकल जाऊँ, और नन्द के विनाश का प्रयत्न करूँ। श्रेष्ठी धनदत्त का मेरी माता से अच्छा परिचय था। वह अनेक बार व्यापार के लिए पिप्पलिवन जा चुका था। उसी की सहायता से मैं पाटलिपुत्र से बाहर निकल सका और आज आचार्य की सेवा में उपस्थित हूँ।'

'तुम एक साहसी युवक हो, कुमार! तुम्हारी आकांक्षाएँ महान् हैं, और तुममें उद्दण्ड साहस है। मेरे लिए यही पर्याप्त है। तुम मेरे पास 'आचार्य-भागदायक' विद्यार्थियों के समान रहोगे। आचार्य का शुल्क शिक्षा पूर्ण करने के बाद तुमसे वसूल हो जाएगा, इसका मुझे विश्वास है। अब तुम आश्रम में जाओ और स्नान, भोजन आदि से निवृत्त होकर विश्राम करो।'

आचार्य विष्णुगुप्त ने ताली बजाई और शिवदत्त नामक विद्यार्थी सेवा में उपस्थित हो गया। शिवदत्त पुष्करावती का निवासी एक गरीब छात्र था, जो शिक्षा के बदले में सेवा करके आचार्य विष्णुगुप्त के शिक्षणालय में रह रहा था। आचार्य ने उसे आदेश दिया कि इस नए विद्यार्थी के निवास, भोजन आदि की सब व्यवस्था समुचित रूप से कर दे।

आचार्य विष्णुगुप्त के इस नवीन शिष्य का नाम चन्द्रगुप्त था, जो पिप्पलिवन के मोरियगण का राजकुमार था, और जो मगध के शक्तिशाली राजवंश के मद को चूर्ण कर अपनी मातृभूमि के लुप्त गौरव के पुनरुद्धार की महत्त्वाकांक्षा को लेकर तक्षशिला आया था।

(२)

श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ

मगध के सम्राट् महापद्म नन्द के विशाल अन्तःपुर की रक्षा करनेवाली शक्तिशाली आन्तर्वंशिक सेना की निगाह से बचकर कुमार चन्द्रगुप्त जो पाटलिपुत्र से भाग सका था, उसमें श्रेष्ठी धनदत्त की सहायता ही प्रधान कारण थी। धनदत्त आग्रेय जनपद का निवासी था, और उस युग के सब से समृद्ध व वैभवशाली व्यापारियों में उसकी गिनती थी। चम्पा, वैशाली, पाटलिपुत्र, काशी, कौशाम्बी, उज्जैन, श्रावस्ती, इन्द्रप्रस्थ, तक्षशिला आदि बहुत-से नगरों में उसकी पण्यशालाएँ (व्यापारिक कोठियाँ) विद्यमान थीं, और उसके सार्थ (काफिले) सर्वत्र जाते-आते रहते थे। हरयाणा के उस क्षेत्र में जहाँ आजकल हिसार का जिला है, उस समय आग्रेय जनपद की स्थिति थी। उसकी राजधानी अग्रोदक नगरी थी, जो अपने वैभव के लिए भारतभर में प्रसिद्ध थी। आग्रेय एक 'वार्ताशस्त्रोप-जीवि' जनपद था, जिसके नागरिक जहाँ अपनी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए शस्त्र-संचालन का अभ्यास करते थे, वहाँ कृषि, पशुपालन और वाणिज्य द्वारा अपना निर्वाह करते थे। आग्रेय जनपद के वणिक् अपने साहस के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। समुद्र या मरुस्थल, जंगल या पहाड़—कोई भी उनकी व्यापारिक यात्राओं के मार्ग में बाधा उपस्थित नहीं कर सकता था। पूर्व में चम्पा से लगाकर पश्चिम में तक्षशिला तक के राजमार्गों पर आग्रेय वणिकों के सार्थ सर्वत्र नजर आते थे, और उनकी पण्यशालाएँ भारत की सभी नगरियों में स्थापित थीं। धनदत्त आग्रेय जनपद के वणिकों में सर्वप्रधान था, और उसकी मुद्रा से अंकित हुण्डी को अस्वीकृत करने का साहस उस युग के किसी भी व्यापारी में नहीं था।

श्रेष्ठी धनदत्त का जो सार्थ कुमार चन्द्रगुप्त को साथ लेकर तक्षशिला आया था, उसमें ५०० बैलगाड़ियाँ, २०० खच्चर, ७५ ऊँट और १० हाथी थे। इन पर जो माल लदा हुआ था, वह अनेक प्रकार का था। चीन का रेशम, कलिङ्ग, बंग और काशी के सूती वस्त्र, नैपाल के कम्बल, पुण्ड्र देश के सनिया कपड़े, पाण्ड्य देश के रत्न, समुद्र के मोती, विदर्भ, कलिङ्ग आदि से प्राप्त होनेवाले हीरे, मेदक, प्रसन्न, मैरेय, मधु, आसव आदि अनेक प्रकार की शराब, श्यामिका, प्रैयक आदि विविध प्रकार की खालें, बहुत-से कीमती काष्ठ, विष और औषधियाँ, केकय देश का नमक, विविध

प्रकार की सुगन्धियाँ, और सुवर्ण, रजत, ताम्र आदि धातुएँ उस माल के अन्तर्गत थीं, जिसे श्रेष्ठी धनदत्त अपने साथ लाया था। धनदत्त के सार्थ के साथ आए मनुष्यों की संख्या १,५०० से भी अधिक थी। बैलगाड़ियों को हाँकनेवाले, ऊँटों, खच्चरों और हाथियों को चलानेवाले और माल का क्रय-विक्रय करनेवाले सब लोग विकट योद्धा थे, जो जरूरत पड़ने पर डाकुओं और शत्रुओं का भलीभाँति मुकाबिला कर सकते थे। आग्रेय जनपद के ये लोग जहाँ व्यापार में कुशल थे, वहाँ साथ ही शस्त्र-संचालन में भी निपुण थे। धनदत्त के सार्थ में ५०० ऐसे सैनिक भी थे, जिन्हें सार्थ की रक्षा के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया गया था। ये 'भृत' सैनिक थे, जिनका पेशा ही युद्ध करना था। इन्हें भरपूर वेतन मिलता था, और वे अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए अपनी जान की बाजी लगा देने में जरा भी संकोच अनुभव नहीं करते थे।

उस युग में तक्षशिला न केवल शिक्षा के लिए ही प्रसिद्ध था, अपितु उत्तर-पश्चिमी भारत के व्यापार का भी प्रमुख केन्द्र था। आर्यावर्त्त से पश्चिमी गान्धार, कपिश, बाल्हीक और कम्बोज देशों को जानेवाला राज-मार्ग तक्षशिला होकर जाता था और इन देशों के व्यापारी भारतीय माल को खरीदने के लिए बड़ी संख्या में इस नगरी में आया करते थे। श्रेष्ठी धनदत्त का यह सार्थ चम्पा से चला था और पाटलिपुत्र, काशी, श्रावस्ती, अहिच्छत्र, इन्द्रप्रस्थ आदि होता हुआ तक्षशिला पहुँचा था। मार्ग के सब बड़े नगरों में माल को बेचता और खरीदता हुआ वह अब अपनी सुदीर्घ यात्रा के अन्तिम पड़ाव पर पहुँच गया था। तक्षशिला में अपने सब माल को बेचकर श्रेष्ठी धनदत्त को वह माल खरीदना था, जो कपिश, पार्श (ईरान) और सुदूर पश्चिम के यवन देशों से भारत में बिकने के लिए आया करता था।

श्रेष्ठी धनदत्त का यह सार्थ रात के समय तक्षशिला पहुँचा था। उस समय तक्षशिला के द्वार बन्द हो गए थे और उसे विवश होकर प्राचीर से बाहर पान्थशाला में ही रात बितानी पड़ी थी। अगले दिन सुबह तक्षशिला के पण्याध्यक्ष के कर्मचारी धनदत्त के पास आ गए और उन्होंने माल की जाँच शुरू कर दी।

'तुम कौन हो?'

'मैं सार्थ का अधिपति श्रेष्ठी धनदत्त हूँ।'

'तुम कहाँ के रहनेवाले हो?'

'मैं आग्रेय जनपद का नागरिक और अग्रोदक नगरी का वणिक् हूँ।'

'तुम्हारे पास कितना और क्या माल है ?'

'मेरे माल की कीमत एक कोटि कार्षापण के लगभग है। मेरे पास बहुत प्रकार का माल है, जिसमें रेशम, कम्बल, ऊनी और सूती वस्त्र, मोती, रत्न, हीरे, मणि, शराब, खाल, विष, औषधि, बहुमूल्य काष्ठ, नमक, सोना, चाँदी, सुगन्धि आदि कितने ही प्रकार की वस्तुएँ विक्रय के लिए हैं।'

'तुम्हारे माल पर आखिरी मुहर किस जगह लगी थी ?'

'केकय देश की सीमा से निकलकर गान्धार जनपद में प्रवेश करते हुए वितस्ता (जेहलम) नदी के पश्चिमी तट पर।'

'ये सब मुहरें सुरक्षित हैं, कहीं टूटी तो नहीं हैं ?'

'सब मुहरें अविकल रूप से सुरक्षित हैं।'

'तुमने अपनी अभिज्ञानमुद्रा (पासपोर्ट) कहाँ से प्राप्त की थी ?'

'पाटलिपुत्र से।'

'तुमने अभी कहा था कि तुम अग्रोदक नगरी के वणिक् हो ?'

'पर मेरी पण्यशालाएँ पूर्व में चम्पा से लगाकर पश्चिम में तक्षशिला तक सर्वत्र विद्यमान हैं। बंगाल की खाड़ी से यमुना तक सब जगह अब मगध के सम्राट् महापद्म नन्द का अबाधित शासन है। मैंने चम्पा से अपनी व्यापार-यात्रा शुरू की थी। इसीलिए अपनी अभिज्ञानमुद्रा मैंने मागध साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र से प्राप्त की थी।'

'तुम्हारे साथ कुल कितने आदमी हैं ?'

'१५०८ आदमी मेरे साथ में हैं।'

'क्या उन सब की मुद्राएँ तुमने पाटलिपुत्र में बनवाई थीं ?'

'मार्ग में ९०० आदमी मैंने केकय देश से लिए थे। उनकी अभिज्ञान-मुद्राएँ केकय की राजधानी राजगृह से प्राप्त की गई थीं।'

'केकय से तुमने नए आदमी क्यों लिए ?'

'राजगृह के कुछ व्यापारी गान्धार देश में व्यापार के लिए आ रहे थे। मेरा बहुत-सा माल राजगृह में बिक गया था। इसलिए मेरी अनेक गाड़ियाँ खाली हो गई थीं। केकय देश के ये व्यापारी मेरी गाड़ियों के लिए भाड़े के रूप में अच्छी रकम देने को तैयार थे। इसलिए मैंने उन्हें साथ ले लिया।'

'क्या तुमने अपने सब आदमियों और पशुओं पर वर्तनी (सार्थ की रक्षा के लिए राज्य की ओर से वसूल किया जानेवाला कर) प्रदान कर दी है ?'

'यह कर मैंने गान्धार जनपद में प्रवेश करते ही प्रदान कर दिया था। २,५२८ पणों की वर्तनी-कर की रसीद मेरे पास है।'

'क्या तुम्हें ज्ञात है कि अन्य जनपदों के सार्थों पर गान्धार जनपद में किस हिसाब से वर्तनी-कर वसूल होता है?'

'हाँ, श्रीमान् ! प्रति मनुष्य एक पण और प्रति पशु आधा पण।'

'अच्छा, अब तुम जाओ। पहले विवीताध्यक्ष के कार्यालय से यह प्रमाणपत्र ले आओ कि तुम्हारी अभिज्ञानमुद्राएं ठीक हैं, और वर्तनी-कर की सही रकम तुमने प्रदान कर दी है। इस प्रमाणपत्र को देखकर तुमसे पण्यशुल्क वसूल किया जाएगा और तब तुम्हें तक्षशिला में प्रवेश करने की अनुमति दी जाएगी।'

पण्याध्यक्ष से आदेश पाकर श्रेष्ठी धनदत्त विवीताध्यक्ष के कार्यालय में उपस्थित हुआ। वहाँ पहले वर्तनी-कर की रसीद की जाँच की गई। रसीद ठीक थी और वर्तनी सही मात्रा में अदा की गई थी। अभिज्ञान-मुद्राओं की जाँच में विवीताध्यक्ष को बहुत समय लगा। केकय देश से जो १०० नए आदमी धनदत्त के सार्थ में शामिल हुए थे, उनकी अभिज्ञान-मुद्राओं का सूक्ष्मता के साथ निरीक्षण किया गया। जाँच से ज्ञात हुआ कि इनमें १५ स्त्रियाँ थीं, जो पुरुष वेश में थीं। २७ आदमी ऐसे थे, जो केकय देश के राजकर्मचारी थे। व्यापारियों का भेस बनाकर ये धनदत्त के सार्थ में शामिल हो गए थे। इन सब की अभिज्ञानमुद्राएँ नकली थीं। इन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

विवीताध्यक्ष ने अन्य सब लोगों की अभिज्ञानमुद्राओं को स्वीकृत कर उन पर अपनी मुहर लगा दी, और उन्हें तक्षशिला में प्रवेश करने की अनुमति दे दी गई। पर श्रेष्ठी धनदत्त को यह आदेश दिया गया कि वह दो दिन बाद दोपहर के समय कण्टकशोधन न्यायालय में उपस्थित हो, और इस बात का जवाब दे कि केकय देश के इतने आदमी नकली अभिज्ञान-मुद्राएँ लेकर किस प्रकार उसके सार्थ में शामिल हुए।

पण्याध्यक्ष को पण्यशुल्क प्रदान करने में श्रेष्ठी धनदत्त को तीन दिन लग गए। उसके सब माल की ध्यानपूर्वक जाँच की गई। सब मुहरों को तोड़कर माल का निरीक्षण किया गया। केकय देश के व्यापारियों का माल जिन गाड़ियों पर लदा था, उनकी बहुत सूक्ष्मता के साथ जाँच-पड़ताल की गई। जाँच से मालूम हुआ कि बीस गाड़ियों में नमक के नीचे विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र रखे हुए हैं। पण्याध्यक्ष ने इन गाड़ियों को जब्त कर लिया और धनदत्त पर एक नया मुकदमा कायम कर दिया।

उस पर यह अभियोग लगाया गया कि उसके सार्थ के आदमी नमक की आड़ में तक्षशिला में हथियार पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे थे और उसने इस गैरकानूनी कार्य में उनकी सहायता की थी। पण्यशुल्क वसूल कर लेने के बाद अन्य सब माल को तक्षशिला में ले जाने की अनुमति दे दी गई।

दो दिन बाद कण्टकशोधन न्यायालय में जब श्रेष्ठी धनदत्त का मुकदमा पेश हुआ, तो न्यायालय में बहुत भीड़ थी। तक्षशिला के बहुत-से व्यापारी और राजपुरुष धनदत्त से भलीभाँति परिचित थे। उसकी विशाल पण्यशाला नगर के प्रधान हट्ट में स्थित थी और वहाँ हजारों कार्षापणों का प्रतिदिन कारोबार हुआ करता था। श्रेष्ठी धनदत्त जैसा वैभवशाली व्यक्ति आज कण्टकशोधन न्यायालय में अभियुक्त के रूप में पेश होगा, इस समाचार से तक्षशिला के धनी-मानी वर्ग में हलचल मच गई थी। ठीक समय धनदत्त को प्रदेष्टा (न्यायाधीश) के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसका बयान शुरू होने से पहले प्रदेष्टा ने उसे कहा—'तुम प्रतिज्ञा करो कि जो कुछ तुम कहोगे, सच कहोगे। यदि तुम झूठ बोलोगे, तो तुम्हें यज्ञ का फल नहीं मिलेगा और शत्रु को परास्त करने के बाद भी तुम खप्पर हाथ में लेकर इधर-उधर भीख माँगते फिरोगे।' श्रेष्ठी धनदत्त ने प्रदेष्टा के आदेशानुसार सत्य बोलने की शपथ ली, और तब यह बयान दिया—

'केकय देश की राजधानी राजगृह में मेरा बहुत-सा माल बिक गया था। मैं बहुत प्रकार के अस्त्र-शस्त्र विक्रय के लिए अपने साथ लाया था। मगध के लोहे के हथियारों की पश्चिम के जनपदों में बहुत माँग रहती है, इसलिए मैंने पाटलिपुत्र से बहुत-से अस्त्र-शस्त्र क्रय किए थे। ये सब राजगृह में बिक गए। मेरी बहुत-सी गाड़ियाँ वहाँ खाली हो गईं। केकय देश में नमक की पहाड़ियाँ हैं, जिनके प्रस्तर-शिला सदृश नमक की भारत में सर्वत्र बड़ी माँग रहती है। मेरी इच्छा थी कि मैं यह नमक खरीदकर तक्षशिला ले आऊँ। पर राजगृह के कुछ व्यापारी मेरे पास आए, और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की, कि मैं उन्हें अपनी खाली गाड़ियाँ भाड़े पर दे दूँ। उन्होंने अपने को नमक का व्यापारी बताया और मेरी गाड़ियों का जो भाड़ा देना स्वीकार किया, वह बहुत उचित था। अपने सार्थ में अन्य व्यापारियों को शामिल कर लेना सार्थवाहों के चरित्र और व्यवहार के सर्वथा अनुकूल है। मैंने अपनी खाली गाड़ियाँ केकय देश के इन व्यापारियों को भाड़े पर दे दीं, और उन्होंने उनमें नमक भर लिया। नमक के नीचे जो हथियार उन्होंने छिपाकर रखे, उसकी उत्तरदायिता मुझ पर नहीं है।

उनकी अभिज्ञानमुद्राओं के लिए भी मैं उत्तरदायी नहीं हूँ। उन्होंने अपनी अभिज्ञानमुद्राएँ केकय देश के राजकर्मचारियों से प्राप्त की थीं। राजगृह में मेरी कोई पण्यशाला नहीं है, अतः इन व्यापारियों के धर्म-अधर्म एवं शुचि-अशुचि को जानने का मेरे पास कोई साधन नहीं था।'

श्रेष्ठी धनदत्त के बयान की सत्यता में सन्देह करने का कोई कारण नहीं था। प्रदेष्टा ने उसे स्वीकार कर लिया, और धनदत्त को निर्दोष घोषित कर दिया गया। उसके सार्थ का सब माल तक्षशिला के हट्ट में पहुँच गया और धनदत्त ने उसका विक्रय प्रारम्भ कर दिया। उसकी पण्यशाला में इतनी जगह थी कि वहाँ हजारों आदमी आराम के साथ ठहर सकते थे और पशुओं के लिए भी वहाँ पर्याप्त स्थान था।

(३)

केकय का षड्यन्त्र

तक्षशिला नगरी के ठीक मध्य में, पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले राजमार्ग पर एक विशाल कोष्ठक (मन्दिर) था, जिसमें भगवान् अपराजित की प्रतिमा प्रतिष्ठापित थी। उस दिन इस मन्दिर के समीप का राजमार्ग श्रद्धालु नरनारियों से खचाखच भरा हुआ था। लोग उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब भगवान् अपराजित की रथयात्रा का उत्सव प्रारम्भ होगा, और वे देव-दर्शन का सुअवसर प्राप्त कर सकेंगे। अपराजित का यह कोष्ठक १०० हाथ से भी अधिक ऊँचा था और चारों ओर की प्राचीर के कारण एक दुर्ग के समान था। कोष्ठक में प्रवेश करने के लिए चारों ओर बड़े-बड़े द्वार थे, जिनके साथ-साथ बहुत-सी दूकानें बनी हुई थीं। प्राचीर और मन्दिर के बीच के खुले भाग में एक मेला-सा लगा हुआ था। लोगों की भीड़ के कारण मन्दिर के द्वार तक पहुँच सकना सुगम नहीं था।

मन्दिर के दक्षिणी द्वार के सामने एक कार्तान्तिक (ज्योतिषी) ऊँचे आसन पर विराजमान थे। शिष्यमण्डली ने उन्हें चारों ओर से घेर रखा था। लोग श्रद्धापूर्वक उनके सम्मुख सिर झुकाते और अपना भविष्य पूछते। ये ज्योतिषी तक्षशिला में नए ही आए थे, पर कुछ ही दिनों में उनकी कीर्ति सारे गान्धार जनपद में फैल गई थी। लोग कहते थे, वे उज्जैन के निवासी हैं, त्रिकालदर्शी हैं, भूत-भविष्य और वर्तमान की

कोई भी बात उनसे छिपी हुई नहीं है। मनुष्य की शक्ल देखते ही वे उसका भूत और भविष्य सही-सही बता देते हैं। गड़ा हुआ धन भी उनकी दृष्टि से छिपा नहीं रह सकता। एक भिखारी तक्षशिला में भीख माँगता फिरा करता था। उसके पास न खाने को अन्न था, न पहनने को कपड़ा। उसने ज्योतिषी जी की सेवा की। उन्होंने उसे बता दिया कि तक्षशिला के उत्तर में जो पहाड़ी है, उस पर के पुराने भग्न मन्दिर के खण्डहर के नीचे अपार धन गड़ा हुआ है। भिखारी रात के समय वहाँ गया, और उसे वहाँ दस लक्ष सुवर्ण मुद्राएँ मिल गईं। तक्षशिला का श्रेष्ठी लक्ष्मीपति वही भिखारी तो है, जो तीन मास पहले गली-गली की खाक छानता फिरा करता था। आज उसके धन-वैभव का क्या ठिकाना! अब तो वह कुबेर का अवतार-सा प्रतीत होता है। यह सब इन्हीं ज्योतिषी जी की कृपा है, जो स्वयं कौपीन धारण करके रहते हैं, और कन्द, मूल, फल से अपना निर्वाह करते हैं। उन्हें धन-माया से जरा भी मोह नहीं है। उज्जैन से देशाटन करते हुए वे तक्षशिला पधारे हैं, और कुछ मास यहाँ रहकर पश्चिम में पुष्करावती की ओर चले जाएँगे।'

ज्योतिषी जी की त्रिकालदर्शिता की बात सुनकर तक्षशिला के धनी-मानी नागरिक प्रतिदिन बड़ी संख्या में उनकी सेवा में उपस्थित होने लगे, और अपने भाग्यफल को जानकर सन्तोष अनुभव करने लगे। अपराजित के मन्दिर में उनके चारों ओर हर समय भीड़ लगी रहती थी। ज्योतिषी जी की कीर्ति और महिमा की बात गान्धार जनपद के प्रधानमन्त्री वररुचि ने भी सुनी। उनकी पत्नी सुभगा ज्योतिषी जी के दर्शनों के लिए उतावली हो गई और भगवान् अपराजित की रथयात्रा देखने के बहाने उनकी सेवा में जा पहुँची।

ज्योतिषी जी आँखें बन्द किए ध्यानमग्न बैठे थे। सुभगा ने उनके चरण छुए, और हाथ जोड़कर सामने बैठ गई। ज्योतिषी जी ने आँखें बिना खोले ही गम्भीर स्वर में कहा—

'राजमाता मेरा आशीर्वाद स्वीकार करें।'

'पर मैं तो आचार्य वररुचि की पत्नी हूँ, राजमहिषी नहीं हूँ।'

'पर तुम्हारे भाग्य में राजमाता होना लिखा है। तुम्हारा पुत्र सोम-श्रवा गान्धार जनपद के राजसिंहासन पर आरूढ़ होगा। इस समय उसकी आयु पन्द्रह वर्ष की है। अब से केवल पाँच साल बाद वह गान्धार का स्वामी बन जाएगा। अभिसार, केकय और कपिश के राजा उसकी

अधीनता स्वीकार करेंगे। उसकी वीरगाथाओं को गा-गाकर चारण लोग अपने को धन्य समझेंगे।'

'यह आप क्या कह रहे हैं, महाराज! आचार्य वररुचि गान्धारपति महाराज आम्भि के सेवक हैं। उनकी इच्छा है कि सोमश्रवा भी महाराज का सेवक बने।'

'पर तुम्हारे भाग्य में तो राजमाता बनना लिखा है। ग्रहों पर मेरा क्या बस है?'

ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुनकर सुभगा पुलकित हो गई। वह मन-ही-मन उस दिन की कल्पना करने लगी, जब उसका पुत्र गान्धार की राजगद्दी पर विराजमान होगा, सब क्षत्रिय उसके सम्मुख सिर झुकाएँगे और गान्धार की राज्यश्री उसके चरणों में लोटती होगी। पत्रपुष्प से ज्योतिषी जी की पूजा कर सुभगा अपने घर लौट गई। यह सुसमाचार उसने अपने पति से कहा। पत्नी की बात सुनकर वररुचि गम्भीर हो गए। वे चाणाक्ष राजनीतिज्ञ थे। गान्धार के राजकुल के प्रति उनके हृदय में अविकल भक्ति थी। कोई भी व्यक्तिगत स्वार्थ उन्हें अपने कर्त्तव्य से नहीं डिगा सकता था। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक सुभगा से कहा—'मुझे प्रतीत होता है कि यह ज्योतिषी कोई गूढ़पुरुष (गुप्तचर) है। राजकुल और अमात्यकुल में विद्वेष उत्पन्न करने के उद्देश्य से ही उसने ऐसी बात कही है। केकय और अभिसार इस प्रयत्न में हैं कि गान्धार पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लें। केकयराज का मन्त्री इन्द्रदत्त बहुत चतुर है। मैं उसे बचपन से जानता हूँ। राजनीति में वह औशनस सम्प्रदाय का अनुयायी है। राजनीतिक उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए घृणित-से-घृणित उपाय का अवलम्बन करने में उसे जरा भी संकोच नहीं होता। धर्मशास्त्र और आन्वीक्षकी का उसकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है। अपनी कूटनीति से उसने अभिसार देश को केकय का अनुगामी बना लिया है। गान्धार को अधीन करने का उसने अनेक बार प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं हुई। शस्त्रयुद्ध में असफल होकर अब उसने मन्त्रयुद्ध का प्रारम्भ किया है। मैं अपने गुप्तचरों को आज ही इस बात का आदेश दूँगा, कि वे इस ज्योतिषी पर निगाह रखें। तुम उसकी भविष्यवाणी का किसी से भी जिकर न करना।'

आचार्य वररुचि की बात सुनकर सुभगा चुप हो गई। अपने पुत्र के भाग्योदय की बात से उसके हृदय में आशा और उल्लास का जो अंकुर उत्पन्न हुआ था, उस पर तुषारपात हो गया। पर सुभगा के पुत्र के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी ज्योतिषी जी ने की थी, वह गुप्त नहीं रह सकी।

कुछ देर बाद एक सम्भ्रान्त महिला ज्योतिषी जी की सेवा में उपस्थित हुई। उसका नाम भद्रा था। वह गान्धारराज आम्भि की राजमहिषी महादेवी दिव्या की प्रेष्या (विश्वस्त सेविका) थी। उसने ज्योतिषी जी से प्रश्न किया—

'महाराज! मेरे भाग्य का उदय कब होगा?'

'मुझे मालूम है कि श्रेष्ठी लक्ष्मीपति से तुझे अगाध प्रेम है। उसने तुझे कितना धन दिया, तेरी कितनी भक्ति की, तुझे सन्तुष्ट करने के लिए उसने क्या-कुछ नहीं किया। पर तू उससे सदा विमुख ही बनी रही। आखिर निराश होकर उसने तेरा ध्यान छोड़ दिया। पर मुझसे यह छिपा नहीं है, कि तू उसे दिल से प्यार करती है। तू संकोचवश अपना प्रेम उससे प्रकट नहीं करना चाहती। जा, यह जड़ी ले जा। इसे पास रखने से श्रेष्ठी लक्ष्मीपति स्वयं ही तेरे पास खिंचा चला आएगा। रात को सोते हुए इस जड़ी को अपनी वेणी में बाँध लेना। सुबह तक श्रेष्ठी लक्ष्मीपति स्वयं तेरे पास आ जाएगा।'

'तब तो सचमुच मेरा भाग्योदय हो जाएगा।'

'आज तो मेरे पास वही लोग भविष्य जानने के लिए आ रहे हैं, जिनका भाग्य शीघ्र ही उदय होने वाला है। वररुचि की पत्नी सुभगा अभी मेरे पास आई थी। उसका भाग्य कितना प्रबल है! पाँच साल बाद उसका पुत्र सोमश्रवा गान्धार के राजसिंहासन पर आरूढ़ होगा। वह राजमाता बन जाएगी। कितनी सौभाग्यशालिनी है, यह सुभगा! उसका सुभगा नाम सचमुच सत्य सिद्ध हो जाएगा।'

'तो फिर आम्भि और उनके कुमार का क्या होगा, महाराज?'

'उनका भविष्य बहुत भयंकर है। आम्भि सोमश्रवा की कैद में तिल-तिलकर प्राणत्याग करेगा और उसका पुत्र वररुचि द्वारा मार दिया जाएगा।'

प्रेष्या जब महाराज आम्भि के अन्तःपुर को वापस गई, तो उसका हृदय तेजी के साथ धड़क रहा था। अपने प्रेमी को पा जाने की बात से वह परम प्रसन्न थी, पर आम्भि और कुमार के भविष्य का खयाल करके उसका हृदय भय से परिपूर्ण हो रहा था।

अगले दिन सुबह श्रेष्ठी लक्ष्मीपति बहुत-से बहुमूल्य उपहार लेकर भद्रा से मिलने के लिए आया। वह उससे बहुत प्रेमपूर्वक मिला। उसके व्यवहार को देखकर भद्रा को इस बात में जरा भी सन्देह नहीं रहा कि उज्जैन के ज्योतिषी महाराज सचमुच त्रिकालदर्शी हैं, उनकी शक्ति अद्भुत है, और

उनकी भविष्यवाणी कभी सत्य हुए बिना नहीं रह सकती।

धड़कते हुए दिल से भद्रा गान्धार जनपद की राजमहिषी की सेवा में उपस्थित हुई। उसने राजमहिषी से कहा—

'आर्ये ! यदि कोई आदमी आस्तीन में साँप को जगह दे, तो उसे क्या कहा जाएगा ?'

'मूर्ख, परम मूर्ख !'

'महाराज ने जिस वररुचि को अपना अमात्य बना रखा है, वह आस्तीन का साँप ही तो है।'

'यह कैसी बात कहती हो तुम ? वररुचि का कुल सदा गान्धार के राजकुल के प्रति अनुरक्त रहा है। वररुचि से अधिक योग्य मन्त्री इस समय सारे भारत में कोई नहीं है।'

'मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें, आर्ये ! वररुचि महाराज के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा है। वह महाराज को पदच्युत कर अपने पुत्र सोमश्रवा को गान्धार के राजसिंहासन पर बिठाना चाहता है। त्रिकालदर्शी ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की है, कि आज से पाँच साल बाद सोमश्रवा गान्धार के राज-सिंहासन पर आरूढ़ होगा, और महाराज आम्भि···मुंह से कैसे कहूँ, आर्ये ! महाराज और कुमार के सम्बन्ध में बड़ी भयंकर भविष्यवाणी ज्योतिषी ने की है।'

'क्या यह भी सम्भव है ? कहीं यह ज्योतिषी किसी शत्रु का गूढ़-पुरुष तो नहीं है ?'

'नहीं, आर्ये ! वह सचमुच त्रिकादर्शी सिद्ध पुरुष हैं। उन्होंने मुझे एक ऐसी जड़ी दी, जिसके प्रभाव से श्रेष्ठी लक्ष्मीपति आज सुबह स्वयं ही मेरे पास आ गया।'

प्रेष्या की बात सुनकर राजमहिषी का मुंह चिन्ता से मलिन हो गया। वह बाल खोलकर और मलिन वस्त्र पहनकर कोपागार में जा पड़ी। प्रेष्या ने यह समाचार महाराज आम्भि से कहा। वे तुरन्त कोपागार में गए और राजमहिषी को मनाने का प्रयत्न करने लगे। राजमहिषी के मुंह से केवल एक बात निकल रही थी—'इसी क्षण वररुचि और सोमश्रवा को पकड़-कर बन्दीगृह में डाल दो। न उन्हें भोजन मिले और न जल। जब तक मैं उन दोनों को स्वयं अपनी आँखों से बन्दीगृह में भूख और प्यास से तड़पता हुआ न देख लूंगी, अन्न व जल ग्रहण नहीं करूंगी।'

जिस समय महाराज आम्भि कोपागार में पड़ी हुई राजमहिषी को समझाने-बुझाने का प्रयत्न कर रहे थे, आचार्य वररुचि त्रिकालदर्शी

ज्योतिषी के विषय में जाँच-पड़ताल करने की व्यवस्था में तत्पर थे। इस कार्य के लिए जो राजपुरुष भगवान् अपराजित के मन्दिर में भेजे गए, उन्होंने लौटकर सूचना दी कि आज सुबह से ही ज्योतिषी जी का कहीं पता नहीं है। मन्दिर के पुजारी ने बताया, कि आधी रात को ही ज्योतिषी जी कहीं चले गए। ऐसे सिद्ध पुरुष कहीं एक स्थान पर सदा रह सकते हैं ? वे तो रमते योगी थे। रथयात्रा के बाद भगवान् अपराजित का दर्शन कर वे कहीं चले गए।

आचार्य वररुचि इस समाचार को सुनकर बहुत चिन्तित हुए। उन्हें अब इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया कि वह ज्योतिषी कोई गूढ़पुरुष था, जो केकय या अभिसार की ओर से 'मन्त्रयुद्ध' करने के लिए तक्षशिला आया था। वररुचि इस बात से और भी अधिक चिन्तित थे कि वह गूढ़-पुरुष जो विष-बीज बो गया है, वह अवश्य फल लाएगा। सोमश्रवा के सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी उसने की है, वह अवश्य ही महाराज आम्भि के कानों तक पहुँच जाएगी। आम्भि मन्त्रयुद्ध के दाँव-पेंचों को बिल्कुल भी नहीं समझता। अपने कुल के भयंकर भविष्य की बात सुनकर वह आपे से बाहर हो जाएगा और इसका परिणाम गान्धार जनपद के लिए बहुत दुःखमय होगा।

इसी समय महाराज आम्भि की आन्तर्वंशिक सेना के कुछ सैनिक आचार्य वररुचि के निवासस्थान पर आए और उन्होंने महाराज का 'शासन' (राजाज्ञा) दिखाकर वररुचि और सोमश्रवा को गिरफ्तार कर लिया। आचार्य-पत्नी सुभगा भी उसी समय बन्दी बना ली गई।

ये गिरफ्तारियाँ उसी दिन हुईं, जबकि गान्धार जनपद के विवीताध्यक्ष के आदेश से श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के ४२ व्यक्तियों को यह आरोप लगाकर कैद किया गया था कि उनकी अभिज्ञानमुद्राएँ नकली थीं।

(४)

केकय का मन्त्रणा-गृह

केकय देश की राजधानी राजगृह के उत्तरी भाग में एक विशाल मैदान था, जो चारों ओर एक ऊँची प्राचीर से घिरा हुआ था। यह मैदान तीन सौ गज लम्बा और लगभग इतना ही चौड़ा था। इस मैदान में न कोई वृक्ष था और न कोई पौदा। घास की एक पत्ती तक भी इसमें कहीं नजर

नहीं आती थी। मैदान के ठीक बीच में एक छोटा-सा मकान था, जो चारों ओर से खुला हुआ था। प्राचीर में केवल एक दरवाजा था, जिस पर बीस प्रहरी हर समय पहरा देते रहते थे। आचार्य इन्द्रदत्त के अपने हाथ से लिखे हुए आदेशपत्र के बिना कोई भी व्यक्ति इस द्वार के भीतर कदम नहीं रख सकता था। मनुष्य का तो कहना ही क्या, कोई पशु या पक्षी तक भी इस द्वार से या प्राचीर को लाँघकर उस मैदान में प्रवेश नहीं कर सकता था। प्राचीर के चारों ओर धनुर्धारी सैनिक रात-दिन पहरा देते रहते थे, और उन्हें यह आज्ञा थी कि यदि कोई पक्षी तक भी प्राचीर को लाँघकर उस मैदान के ऊपर उड़ने का प्रयत्न करे, तो उसे तीर मारकर तुरन्त नीचे गिरा दिया जाए। नंगे मैदान के ठीक बीच में स्थित जिस मकान का हमने ऊपर उल्लेख किया है, वह केकय का मन्त्रणा-गृह था।

जिस दिन तक्षशिला में आचार्य वररुचि, सोमश्रवा और उसकी माता सुभगा गिरफ्तार हुए, उसके ठीक तीन दिन बाद की बात है। राजगृह के इस मन्त्रणा-गृह में चार व्यक्ति धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

आचार्य इन्द्रदत्त ने पूछा—'कहो, व्याडि, तक्षशिला में क्या कर आए? तुम्हारे गूढ़पुरुषों को वहाँ कितनी सफलता मिली?'

'कुछ न पूछिए, आचार्य! वासन्ती ने तो तक्षशिला में जाकर कमाल ही कर दिया। उसके रूप और यौवन पर गान्धार के राजपुरुष मुग्ध हो गए। जब वह अपनी काली घुंघराली केशराशि को बखेरकर नाट्य करती, तो तक्षशिला के लोग अपनी सुध-बुध भूल जाते। गान्धार का सेनापति सिंहनाद उसकी मतवाली आँखों को देखकर पागल हो गया। एक दिन रात के समय वह वासन्ती के क्रीड़ागृह में गया। वासन्ती ने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया। सिंहनाद को प्रेम में उन्मत्त कर वासन्ती ने उसे कहा—'प्यारे, मैं तुम्हें कितना चाहती हूँ। पर क्या करूँ, महाराज आम्भि की भी मुझ पर नजर पड़ गई है। वे नहीं चाहते कि कोई और मेरे पास आए। वे रात के समय मुझे अपने प्रासाद में बुलाते हैं। उनसे छुट्टी मिले, तब तो मैं तुम्हारी बनूं।' यह सुनकर सिंहनाद आपे से बाहर हो गया। आखिर वह भी तो राजकुल का ही है। कहने लगा, 'अपने प्रेम के मार्ग में मैं किसी भी काँटे को नहीं सह सकता। यदि वासन्ती को पाने के लिए आम्भि को भी रास्ते से हटाना पड़े, तो मैं संकोच नहीं करूँगा।'

'शाबाश, वासन्ती। अन्य गणिकाओं का क्या हाल है?'

'रम्भा, पार्वती, उर्वशी आदि सभी रूपाजीवाओं ने तक्षशिला के भद्र-पुरुषों पर अपना जादू कर दिया है। बड़े-बड़े अमात्य, राजपुरुष और सेनाध्यक्ष उनके क्रीड़ागृहों में आते हैं, और नाच-रंग में फँसकर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। इन रूपाजीवाओं के घरों में वादक, पाचक, सेवक आदि के रूप में सैकड़ों वीर सैनिक निवास कर रहे हैं। ये सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं। जिस दिन आपका इशारा होगा, केकय देश के ये भट तक्षशिला के प्रधान पुरुषों पर हमला कर उनका काम तमाम कर देंगे। केकय की रूपाजीवाओं के रूप पर गान्धार देश के अग्रणी नेता फूलों पर भँवरों के समान मँडराते रहते हैं। उनका सन्ध्याकाल इन रूपाजीवाओं के क्रीड़ागृहों में ही व्यतीत होता है। आपके इशारे की देर है, एक साथ ही गान्धार के सैकड़ों प्रमुख पुरुषों की हत्या कर दी जाएगी।'

'श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ जो नई रूपाजीवाएँ और राजपुरुष अस्त्रशस्त्रों के साथ गांधार भेजे गए थे, क्या वे सकुशल तक्षशिला पहुँच गए ?'

'नहीं, आचार्य ! गान्धार का विवीताध्यक्ष चन्द्रहास बड़ा कुशल व्यक्ति है। उनकी अभिज्ञानमुद्राओं पर उसे सन्देह हो गया और उन सब को गिरफ्तार कर उसने बन्दीगृह में डाल दिया।'

'व्याडि, यह तो बहुत बुरा हुआ ! वररुचि जैसा चाणाक्ष मन्त्री अब यह भलीभाँति समझ जाएगा कि हमारा मन्त्रयुद्ध गान्धार में शुरू हो चुका है। क्या उसने हमारे गूढ़पुरुषों को ढूंढ़ निकालने का कुछ प्रयत्न किया ?'

'इसका अवसर ही नहीं आया, आचार्य ! वररुचि, सुभगा और सोमश्रवा तीनों इस समय बन्दीगृह में हैं। गान्धार की राजमहिषी उनकी कट्टर शत्रु हो गई है। ज्योतिषी का भेस बनाकर मैंने सुभगा को यह कह दिया था कि सोमश्रवा गान्धार के राजसिंहासन पर विराजमान होगा और आम्भि कारागार में तड़प-तड़पकर प्राण देगा। यह बात मैंने राज-महिषी की प्रेष्या के कानों तक भी पहुँचा दी थी। हमारे एक गूढ़पुरुष ने श्रेष्ठी लक्ष्मीपति बनकर इस प्रेष्या को अपने प्रेमपाश में फँसा रखा है। लक्ष्मीपति अब भी तक्षशिला में है, और प्रेष्या के प्रेमी के रूप में वह जब चाहे तब आम्भि के अन्तःपुर में आ-जा सकता है। राजमहिषी की भी उस पर कृपादृष्टि है। जिस दिन आपका इशारा होगा, बहुमूल्य रत्न और अन्य कीमती माल राजमहिषी को दिखाने के बहाने वह बहुत-से सेवकों के साथ अन्तःपुर में प्रविष्ट हो जाएगा। श्रेष्ठी लक्ष्मीपति के ये सब सेवक केकय के वीर योद्धा हैं। अवसर पाते ही ये अन्तःपुर में अव्यवस्था मचा देंगे,

और आम्भि की आन्तवंशिक सेना का डटकर मुकाबिला करेंगे।'

'हमारा गूढ़पुरुष सर्वजित् क्या-कुछ कर रहा है?'

'उसके आदमी कई महीनों से तक्षशिला में नट, नर्तक, वादक आदि के रूप में घूम रहे हैं। तक्षशिला के लोगों को तमाशे देखने का बहुत शौक है। सर्वजित् के आदमी जहाँ-कहीं अपनी प्रेक्षा शुरू करते हैं, हजारों की भीड़ एकत्र हो जाती है। गान्धार जनपद के बड़े लोग उन्हें अपने घर पर भी बुलाते हैं। कोई उनपर सन्देह नहीं करता।'

'तब तो गान्धार पर अभियान शुरू करने के लिए सब तैयारी हो गई है। पर वररुचि देर तक बन्दीगृह में नहीं रह सकेगा। वह बड़ा कुशल राजनीतिज्ञ है। मैं और वह एक साथ तक्षशिला में आचार्य भागुरि के आश्रम में रहे हैं। वह शीघ्र ही अवश्य कोई ऐसी युक्ति सोचेगा, जिससे आम्भि के विश्वास को पुनः प्राप्त कर सके। एक बार बन्दीगृह से मुक्त हो जाने के बाद वह हमारे षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ किए बिना न रहेगा।'

'तो फिर अब तुरन्त ही गान्धार पर आक्रमण कर देना चाहिए।'

'हाँ, केकय देश के उत्कर्ष का यही सुवर्णीय अवसर है। अभिसार पहले ही केकय की अधीनता स्वीकार कर चुका है। भारत के वाहीक खण्ड (पंजाब) में अब केवल गान्धार ही ऐसा जनपद है, जो केकय के उत्कर्ष में बाधक हो सकता है। गान्धार को परास्त कर देने के बाद क्षुद्रक, मालव, आग्रेय, रोहितक आदि गणराज्यों को जीत लेना कुछ भी कठिन नहीं होगा। इन गणों में न कोई राजा है, न कोई राजनीतिज्ञ मन्त्री। वहाँ तो सब कोई राजा हैं, ईर्ष्यावश सब एक-दूसरे से जलते रहते हैं। औशनस नीति का अनुसरण कर उनमें फूट डाल देना बहुत सुगम है। ये गणराज्य तभी तक अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सकते हैं, जब तक उनके कुलमुख्यों और राजाओं में एकता रहे। पर हमारे गूढ़पुरुष बहुत आसानी से उनमें फूट डाल देंगे। औशनस नीति का अनुसरण करके ही मगध के महामन्त्री आचार्य वत्सकार ने वज्जिसंघ में फूट डाली थी, और राजा अजातशत्रु इस प्रतापी संघ को अपने अधीन कर सका था। एक बार गान्धार वश में आ जाए, तो हमारे लिए क्षुद्रक, मालव आदि गणराज्यों को जीत सकना जरा भी कठिन नहीं होगा।'

'तो फिर गान्धार पर कब आक्रमण करना होगा, आचार्य!'

'अच्छा, यह तो बताओ, तक्षशिला में तुम आचार्य विष्णुगुप्त से भी मिले थे? आचार्य चणक का पुत्र यह विष्णुगुप्त बड़ा प्रतिभाशाली है। सम्पूर्ण भारत में इस जैसा विद्वान् और चाणाक्ष राजनीतिज्ञ इस समय

अन्य कोई नहीं है। क्या तुमने उसका सहयोग प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया था ?'

'किया था, आचार्य ! पर मुझे सफलता नहीं मिली। मैं आचार्य विष्णुगुप्त से मिला था। मेरी बात सुनकर वे बहुत गम्भीर हो गए। उन्होंने कहा, तक्षशिला भारत में ज्ञान, विज्ञान और शिक्षा का सब से बड़ा केन्द्र है। गान्धार के राजपुरुष न अन्य राज्यों को जीतना चाहते हैं, और न उन्हें राजनीतिक उत्कर्ष की ही कोई इच्छा है। अपने सांस्कृतिक उत्कर्ष का उन्हें गर्व है, और वे इसी से सन्तुष्ट हैं। ऐसे जनपद पर आक्रमण करके केकयराज को क्या लाभ होगा ? सुवर्णभूमि से बाल्हीक देश तक के सब जनपदों के हजारों विद्यार्थी अपनी ज्ञानपिपासा को शान्त करने के लिए तक्षशिला आते हैं। कुल, जाति आदि का कोई भी भेदभाव न कर तक्षशिला के आचार्य सब को समान रूप से ज्ञान प्रदान करते हैं। तक्षशिला अपने इसी गौरव से सन्तुष्ट है। केकयराज पोरु यदि उसकी स्वतन्त्रता को कायम रहने दें, तभी उत्तम होगा।'

'इसका तुमने क्या उत्तर दिया, व्याडि !'

'आचार्य विष्णुगुप्त से तर्क कर सकना मेरे लिए सम्भव नहीं था। जब उन्होंने यह कहा कि तक्षशिला के आचार्यों को विविध जनपदों के पारस्परिक झगड़ों में उदासीन ही रहना चाहिए, तो मेरे लिए कुछ अधिक कह सकना सम्भव भी नहीं था।'

'कहीं विष्णुगुप्त तुम्हारी इस बातचीत की सूचना आम्भि को तो नहीं दे देंगे ?'

'नहीं, आचार्य ! उन जैसे लोकोत्तर पुरुष से यह आशा नहीं की जा सकती। वे इस प्रकार की सूचना देकर गान्धार के गुप्तचर का कार्य नहीं करेंगे। विष्णुगुप्त गान्धार में निवास करते हैं, पर वे किसी एक जनपद के नागरिक नहीं हैं। वे सम्पूर्ण भारत के, सारे विश्व के नागरिक हैं। सब जनपद उनकी दृष्टि में एक समान हैं। मैं उनका बचपन का सहपाठी हूँ, उनका गुरुभाई हूँ। इसी स्थिति में मैं उनसे मिला था। मुझे विश्वास है, कि मेरी बातचीत का वे किसी से भी जिकर नहीं करेंगे।

'यदि आचार्य विष्णुगुप्त का सहयोग हमें प्राप्त हो सकता, तो केकय देश के उत्कर्ष का मार्ग सर्वथा निष्कण्टक हो जाता। जिस प्रकार पूर्वी समुद्र से यमुना नदी तक मगध का अखण्ड साम्राज्य स्थापित है, वैसे ही यमुना से वंक्षु तक केकय का आधिपत्य कायम हो सकता। पर कोई हर्ज नहीं, मैं भी औशनस सम्प्रदाय के आचार्य भागुरि का शिष्य हूँ। मेरे नीति-चक्र के

सम्मुख वाहीक देश का कोई भी जनपद खड़ा नहीं रह सकेगा।

व्याडि की बात को सुनकर आचार्य इन्द्रदत्त ने केकय के प्रधान सेनापति व्याघ्रपाद से पूछा—

'कहिए, सेनापति ! आपकी सेनाएँ अभियान के लिए तैयार हैं ?'

'हाँ, आचार्य ! केकय के बीस सहस्र सैनिक वितस्ता नदी के पूर्वी तट पर स्कन्धावार (छावनी) डाले पड़े हैं। आपका आदेश पाते ही वे गान्धार पर आक्रमण कर देंगे।'

'हमारी इस तैयारी का गान्धार के अन्तपाल (सीमारक्षक सेनापति) को तो ज्ञान नहीं है ?'

'मैंने इस बात का ध्यान रखा है कि केकय देश की सब सेना एक स्थान पर एकत्र न हो। सैन्य-शिक्षा के निमित्त ही सेना को वितस्ता के तट पर ले जाया गया है, यह बात मैंने सब जगह फैला दी है। गान्धार के अन्तपाल भी यही समझ रहे हैं।'

'तो फिर क्या आज्ञा है, महाराज ?' आचार्य इन्द्रदत्त ने महाराज पोरु से प्रश्न किया। अपने प्रधानमन्त्री इन्द्रदत्त, कापटिक गुप्तचर व्याडि और सेनापति व्याघ्रपाद के साथ केकयराज पोरु भी मन्त्रणा-गृह में उपस्थित थे।

'क्या इस प्रकार कूटयुद्ध करना आर्य मर्यादा के अनुकूल होगा ?' पोरु ने प्रश्न किया।

'आर्य-मर्यादा अब रह ही कहाँ गई है, महाराज ! सम्पूर्ण आर्यावर्त्त पर अब मगध का आधिपत्य स्थापित हो गया है। मगध के राजा शूद्र हैं। वे आर्य-मर्यादा की जरा भी परवाह नहीं करते हैं। असुरों के आचार्य भगवान् उशना (शुक्र) ने जिस नीति का प्रतिपादन किया था, आज तो सर्वत्र उसी की विजयदुन्दुभि बज रही है। मगध का प्रधानमन्त्री शकटार स्वयं औशनस सम्प्रदाय का अनुयायी है। मुझे विश्वास है कि वह मगध के शासन को वाहीक देश में भी स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। यदि मगध के शूद्र राजाओं ने वाहीक को भी जीत लिया, तो आर्य-मर्यादा कहाँ रह जाएगी, महाराज ! आर्यों की परम्परा की रक्षा का तो अब केवल एक ही उपाय है। सम्पूर्ण वाहीक केकय जनपद की अधीनता को स्वीकार करे, और मगध का शूद्र राजा इस सप्तसिन्धव देश को अपनी अधीनता में न ला सके। काँटे को निकालने के लिए काँटा ही काम में आता है, महाराज ? मगध के शूद्र सम्राटों से आर्य राज्यों की रक्षा करने के लिए हमें भी उन्हीं की नीति का अनुसरण करना होगा।'

'आचार्य ! यदि आपको यही उचित प्रतीत होता है, तो गान्धार के

विरुद्ध अभियान के लिए मेरी अनुमति है।'

मन्त्रयुद्ध पहले ही शुरू हो चुका था, अब केकय ने गान्धार के विरुद्ध शस्त्रयुद्ध भी प्रारम्भ कर दिया।

(५)

गान्धार की पराजय

गान्धार के विरुद्ध आक्रमण शुरू करने के लिए आचार्य इन्द्रदत्त ने शुभ मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं समझी। औशनस सम्प्रदाय के राजनीतिज्ञ नक्षत्रों और ग्रहों के संयोग की अपेक्षा अपनी बुद्धि और नीति पर अधिक विश्वास रखते थे। वितस्ता नदी को पार कर चार दिन में केकय की सेनाएँ तक्षशिला पहुँच गईं। जिस दिन केकय देश की सेनाओं का अभियान शुरू हुआ, उसके गूढ़पुरुषों ने भी तक्षशिला में अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। वासन्ती के रूप और यौवन की पहले ही तक्षशिला में धूम थी। उस दिन उसके क्रीड़ागृह में राग-रंग का समुद्र-सा उमड़ पड़ा। हजारों पुष्पमालाओं से सजे हुए इस क्रीड़ागृह में सुगन्धित तैलों से परिपूर्ण अनगिनत दीपक जलाए गए। उनके मादक प्रकाश से सारा क्रीड़ागृह जगमगा उठा। वासन्ती ने घोषित किया था कि आज उसका बीसवाँ जन्म-दिन है, और अपने जन्मोत्सव के उपलक्ष में वह ऐसा नृत्य करेगी, जैसा कि गान्धारवासियों ने पहले कभी भी न देखा होगा। साँझ होने से पहले ही सारा क्रीड़ागृह तक्षशिला के सम्पन्न नागरिकों से खचाखच भर गया था। कहीं तिल रखने को भी जगह नहीं रही थी। दर्शकों में सब से आगे सेनापति सिंहनाद एक आसन्दी पर बैठा हुआ था, जिस पर बढ़िया वानचित्र (भिन्न-भिन्न रंगों की कोमल ऊन से बना हुआ वस्त्र) बिछा था। ठीक समय पर वासन्ती क्रीड़ागृह में प्रविष्ट हुई। उसके प्रवेश करते ही उस विशाल भवन में बिजली-सी कौंध गई। आज उसका रूप देखते ही बनता था। वह रति की साक्षात् प्रतिमा-सी प्रतीत होती थी। उसका शरीर प्रायः नग्न था। हलके रेशमी वस्त्र से उसकी छाती और अधोभाग अवश्य ढके हुए थे, पर यह परिधान उसके शरीर के अनुपम लावण्य पर आवरण डालने के बजाय उसकी छवि को सहस्रगुण करके प्रदर्शित करने का ही काम कर रहा था। वासन्ती के नूपुरों के साथ-साथ मृदङ्ग, वीणा आदि कितने ही वाद्य एक साथ बज उठे और उसने नृत्य शुरू कर दिया। रूपवती

दासियाँ अतिथियों के सत्कार के लिए मेदक, प्रसन्न, मैरेय आदि सुवासित मदिराओं को लेकर सर्वत्र घूमने लगीं। तक्षशिला के नागरिक इन पेशलरूपा दासियों के हाथ से शराब ले-लेकर अपनी प्यास को शान्त करने लगे। रूप, यौवन, नाच-रंग, शराब और संगीत ने एक ऐसा समा बाँध दिया, जिससे तक्षशिला के नागरिक अपनी सब सुध-बुध खो बैठे। चार घण्टे तक यह क्रम जारी रहा। आधी रात होने से कुछ पहले वासन्ती सेनापति सिंहनाद के पास आई और अपनी नंगी बाँहों को उसके गले में डालती हुई आतुर वाणी से बोली—'आर्य ! कब तक इन साधारण लोगों के साथ बैठे रहोगे ? आओ, मेरे निजी कक्ष्या-विभाग में चलो। आज मेरा जन्म-दिन है, क्या आज भी मुझे रोज की तरह तरसाते ही रहोगे ?' अपनी प्रेयसी के इन स्नेहभरे शब्दों को सुनकर सिंहनाद गद्गद हो गया। वह वासन्ती के साथ चला गया, और रूप-यौवन-सम्पन्न दासियाँ अन्य नागरिकों की सेवा में लगी रहीं।

अगले दिन सुबह जब गान्धारराज आम्भि को केकय के अभियान का समाचार मिला, तो उसने सिंहनाद को बुलाने के लिए आदमी भेजा। पर सिंहनाद अभी वासन्ती के क्रीड़ागृह से वापस नहीं लौटा था। वासन्ती के अपने कक्ष्या विभाग (कमरे) के नीचे एक गुप्तगृह था। फर्श के ठीक बीच में लकड़ी का एक द्वार था, जिस पर बहुमूल्य गलीचा बिछा हुआ था। प्रेम और मदिरा से मस्त सिंहनाद को वासन्ती के सेवकों ने इस गुप्तद्वार से तहखाने में पहुंचा दिया था।

गान्धार देश का चाणाक्ष प्रधानमन्त्री वररुचि बन्दीगृह में कैद था। आम्भि अब भी यही समझता था कि वररुचि अपने स्वामी के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र नहीं कर सकता। पर राजमहिषी इससे सहमत नहीं थी। वह कहती थी, वररुचि गान्धार के राजकुल का शत्रु है और केकय देश ने तक्षशिला पर जो आक्रमण किया है, वह उसीकी दुरभिसन्धि का परिणाम है। सिंहनाद के इस प्रकार अकस्मात् लुप्त हो जाने पर महाराज आम्भि को बहुत आश्चर्य हुआ। उसकी आन्तवंशिक सेना के विश्वस्त सैनिक सिंहनाद का पता करने के लिए वासन्ती के क्रीड़ागृह में गए। उन्होंने क्रीड़ागृह के एक-एक कोने को छान डाला, पर सिंहनाद का कहीं पता नहीं चला। पूछने पर वासन्ती ने कहा—'सेनापति सुबह के चार बजे तक मेरे कक्ष्या-विभाग में विराजमान थे। उन्हें अपने कर्तव्य का इतना ध्यान था, कि ब्राह्ममुहूर्त होते ही वे उठकर चले गए। मैंने उन्हें बहुत रोका, बहुत अनुनय-विनय की, कहा कि इस समय तक्षशिला में शत्रु के बहुत-से गूढ़-

पुरुष फिर रहे हैं। जब प्रधानमन्त्री वररुचि तक शत्रु से मिले हुए हैं, तो किसी और पर क्या भरोसा किया जा सकता है! पर सेनापति ने मेरी एक नहीं सुनी। वे उठकर अकेले बाहर चले गए।' यह कहकर वासन्ती ने करुण स्वर से विलाप करना शुरू कर दिया—'हाय, मेरे स्वामी, तुम कहाँ चले गए। सेनापति सुरक्षित रहें और फिर मेरे घर पर पधारें। उनका पुनः दर्शन होते ही मैं भगवती मदिरा के गृह (मन्दिर) का मृद्वीका (शराब) के एक सहस्र कुम्भों से अभिषेचन करूँगी।'

जब केकय देश की सेनाएँ तक्षशिला के महाद्वार के समीप तक पहुँच गईं, तो गान्धार जनपद के तूर्यकरों ने उच्च स्वर से तुरही का घोष किया। इस घोष को सुनते ही तक्षशिला की सेनाएँ अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित होकर नगर की रक्षा के लिए प्राचीर पर आ गईं। पर इसी समय तक्षशिला में सर्वत्र उत्पात शुरू हो गए। श्रेष्ठी लक्ष्मीपति उस दिन सुबह से ही आम्भि के अन्तःपुर में विराजमान था, बहुत-सा कीमती माल लेकर। राजमहिषी की प्रेष्या की सहायता से उसने पहले से ही यह प्रबन्ध कर रखा था कि आज वह राजमहिषी को ऐसे-ऐसे रत्न, मणि, हीरे, रेशमी वस्त्र, चीनांशुक और चर्म दिखाएगा, जो अत्यन्त दुर्लभ हैं। राजमहिषी जिस चीज को पसन्द करें, ले लें। जो कीमत चाहें, दे दें। वह कह रहा था, गान्धार के राजकुल की कृपा से मैंने लाखों कार्षापण कमाए हैं। जब राजमहिषी की प्रेष्या मुझपर कृपालु है, तो मुझे और क्या चाहिए। अपनी प्रेयसी के लिए धन तो क्या, मैं अपनी जान तक निछावर कर सकता हूँ। केवल राजमहिषी अपनी प्रेष्या को राजसेवा से मुक्त कर मुझसे विवाह करने की अनुमति दे दें। इसके लिए मैं अपना सर्वस्व राजमहिषी को अर्पित कर सकता हूँ। राजमहिषी श्रेष्ठी लक्ष्मीपति के माल को देखने में व्यग्र थीं। अन्तःपुर की रक्षा करनेवाली आन्तर्वंशिक सेना के सैनिक इधर-उधर टहल रहे थे। बीच-बीच में वे लक्ष्मीपति के माल पर भी लालच-भरी निगाहें डाल देते थे। ज्यों ही तुरही की आवाज सुनाई पड़ी, श्रेष्ठी लक्ष्मीपति और उसके साथियों ने अन्तःपुर में उत्पात शुरू कर दिया। आन्तर्वंशिक सेना के अध्यक्ष पर असावधान दशा में हमला किया गया और उसे तलवार के घाट उतार दिया गया। अन्तःपुर की रक्षा के लिए नियुक्त अन्य भी अनेक सैनिक केकय देश के इन गूढ़पुरुषों के अकस्मात् आक्रमण के शिकार बने। सारे अन्तःपुर में हाहाकार मच गया।

केकय देश के जो बहुत से गूढ़पुरुष नट, नर्तक, गायक, वादक, कुशीलव आदि के रूप में महीनों से तक्षशिला में तमाशे दिखाते फिरते थे,

उन्होंने भी तुरही की आवाज सुनकर लोगों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। ये सब उद्भट योद्धा थे, और व्याडि के आदेश से नट आदि का भेस बनाकर तक्षशिला आए हुए थे। इनके अचानक आक्रमण से तक्षशिला में भगदड़ मच गई। दूकानें बन्द होने लगीं और लोग इधर-उधर छिपने लग गए। नागरिकों ने समझा कि शत्रुसेना नगर में प्रवेश कर गई है, और अब उसका मुकाबिला करना व्यर्थ है।

महाराज आम्भि के लिए यह सम्भव नहीं था कि केकय की शक्तिशाली सेना के मुकाबिले में वे युद्ध को जारी रख सकते। मन्त्रयुद्ध और सैन्ययुद्ध—दोनों में उनकी पराजय हो गई थी। उन्होंने निश्चय किया कि केकय के सम्मुख सिर झुका देने में ही उनका हित है। उन्होंने केकय के सेनापति व्याघ्रपाद के पास सन्धि का सन्देश भेज दिया।

कोई एक सप्ताह बाद केकयराज पोरु ने विजेता के रूप में तक्षशिला में प्रवेश किया। उस दिन तक्षशिला को खूब सजाया गया था। जगह-जगह पर पत्र-पुष्पों की बन्दनवारें लटक रही थीं। पण्यवीक्षियों और राजपथों पर अनेक ऊँचे-ऊँचे द्वार बनाए गए थे, जिन पर महाराज पोरु के स्वागत और अभिनन्दन के लिए विविध वाक्य लिखे हुए थे। केकय के सैनिक सब जगह पहरे पर तैनात थे। गान्धार के नागरिक उदास मुँह से अपने देश के इस अपकर्ष को देख रहे थे, पर अपने राष्ट्रीय अपमान को चुपचाप सह लेने के अतिरिक्त उनके सम्मुख अन्य कोई मार्ग नहीं था। महाराज पोरु का जुलूस बड़ी धूमधाम के साथ निकला। वे एक सजे हुए रथ पर आरूढ़ थे, और घोड़ों की जगह मनुष्य इस रथ को खींच रहे थे। इनमें कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनसे तक्षशिला के निवासी भलीभाँति परिचित थे। श्रेष्ठी लक्ष्मीपति बड़े उत्साह के साथ महाराज पोरु के रथ को खींच रहा था। इस समय वह सेठ के वेश में न होकर सैनिक के वेश में था। अनेक नट, कुशीलव, गायक आदि जो कुछ दिन पहले तक तमाशे दिखाकर भीख माँगते फिरते थे, अब विकट योद्धाओं के भेस में महाराज पोरु के जुलूस में शामिल थे। नगर के राजमार्गों और पण्यहट्टों का चक्कर लगाकर पोरु का यह जुलूस भगवान् अपराजित के मन्दिर के सम्मुख पहुँचा। वहाँ पोरु रथ से नीचे उतर गया, और नंगे पैर उसने मन्दिर में प्रवेश किया। भगवान् अपराजित तक्षशिला के नगर-देवता थे। गान्धार के सब निवासी इस देश-देवता की पूजा करते थे। पोरु ने गान्धार जनपद की विधि से देव अपराजित की पूजा की।

पूजा समाप्त कर महाराज पोरु ने उस सभामण्डप में प्रवेश किया, जो

गान्धारराज आम्भि के राजप्रासाद के सामने के सुविस्तृत मैदान में इस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया था। एक ऊँचे सिंहासन पर पोरु विराजमान हुए, और उनके बैठ जाने पर केकय के अमात्य, राजपुरुष और सेनापति अपने-अपने आसनों पर बैठ गए। उनके बाद गान्धार के राजकुल के व्यक्ति, अमात्य, नगरमुख्य आदि ने भी अपने-अपने आसन ग्रहण किए। सभामण्डप में जिन व्यक्तियों को विशिष्ट स्थान दिया गया था, उनमें वासन्ती भी थी, जो एक भद्रमहिला के वेश में वहाँ उपस्थित थी।

केकय देश के सैनिकों से घिरे हुए महाराज आम्भि ने जब सभामण्डप में प्रवेश किया, तब केकयराज पोरु उनके स्वागत के लिए उठ खड़े हुए। उनके साथ ही सभा में उपस्थित अन्य सब लोग भी अपने-अपने आसनों से उठकर खड़े हो गए। पोरु ने दो कदम चलकर आम्भि का अभिवादन किया और बाँह पकड़कर उन्हें अपने साथ बिठाया। जयघोष के बीच में पोरु ने घोषणा की—'महाराज आम्भि ! आपका यह राज्य मैं आपको ही वापस लौटाता हूँ। भारत के आर्य राजाओं की परम्परा के अनुसार विजित राजाओं का मूलोच्छेद करना धर्म के विरुद्ध है। शक्तिशाली आर्य राजा सदा से यह प्रयत्न करते रहे हैं, कि अन्य राजाओं को जीतकर उन्हें अपना वशवर्ती बनाएँ और चक्रवर्ती पद प्राप्त करें। केकय का राजकुल भी इसी परम्परा का अनुसरण कर रहा है। मेरे स्वर्गवासी पिता ने अभिसार का विजय किया था, पर आज अभिसार देश केकय का दायाँ हाथ है। मेरी इच्छा है, कि आप भी अभिसार का अनुसरण करें। केकय के राजा को अपना सम्राट् समझें और धर्मानुसार गान्धार जनपद का शासन करें।'

गान्धारराज आम्भि ने सिर झुका दिया। एक भी शब्द उन्होंने मुख से नहीं कहा। उस समय उनके हृदय में विद्वेष की जो अग्नि धधक रही थी, उसे केवल एक व्यक्ति ने लक्ष्य किया। यह व्यक्ति था, आचार्य इन्द्रदत्त। आम्भि के सिर झुका देने पर जय-जयकार से सम्पूर्ण सभामण्डप गूँज उठा। उल्लास में भरकर महाराज पोरु ने घोषित किया कि कल भगवान् अपराजित के कोष्ठक और भगवती मदिरा के गृह में उत्सव मनाया जाएगा। यह उत्सव केकय और गान्धार में चिरमैत्री के स्थापित होने के उपलक्ष में होगा, और देवी वासन्ती इसका सब प्रबन्ध करेंगी।

उत्सव की घोषणा कर महाराज पोरु सभामण्डप से उठकर चले गए। उनके साथ ही केकय देश के राजपुरुष, सेनापति और गूढ़पुरुष भी वहाँ से उठ गए। पर गान्धारराज आम्भि और उनके कर्मचारी

सभामण्डप में ही आसीन रहे। कुछ देर बाद आम्भि ने आचार्य वररुचि को बुलाया। केकय की विजय के उपलक्ष में पोरु की आज्ञा से उन्हें बन्दीगृह से मुक्त कर दिया गया था। आम्भि ने उनसे कहा—'आचार्य ! सब राजकाज को आपके हाथों में छोड़कर अब तक मैं सर्वथा निश्चिन्त था। उसका फल कितना भयानक हुआ ! महीनों से केकय के गूढ़पुरुष तक्षशिला में मन्त्रयुद्ध में तत्पर थे, पर आप उनका पता नहीं लगा सके। आप राजनीति में मानव सम्प्रदाय के अनुयायी हैं, त्रयी (वेदविद्या) का आपकी दृष्टि में बहुत महत्त्व है। धर्मविरुद्ध राजनीति का प्रयोग आप समुचित नहीं मानते। पर आज इन्द्रदत्त की औशनस नीति ने आपकी मानव नीति को परास्त कर दिया है। अब तक मैं गान्धार जनपद के योगक्षेम के लिए आप पर निर्भर करता था। पर आज से अपना मन्त्री मैं स्वयं बनूँगा। यदि केकयराज का आदेश न होता, तो आपका शेष जीवन तक्षशिला के बन्दीगृह में ही व्यतीत होता। पर अब आप स्वतन्त्र हैं। आप दो दिन में गान्धार जनपद को छोड़ दीजिए।' 'तथास्तु' कहकर आचार्य वररुचि ने महाराज आम्भि के सम्मुख सिर झुका दिया।

अब सेनापति सिंहनाद को बुलाया गया। एक सप्ताह तक अपने गुप्तगृह (तहखाने) में रखकर वासन्ती ने अब उन्हें मुक्त कर दिया था। वह स्वयं उन्हें उस गृह से मुक्त करने के लिए गई थी। सिंहनाद के रोष प्रकट करने पर उसने कहा था—'सेनापति, मुझे क्षमा करना। तुमसे प्रेम का अभिनय करते-करते मैं सचमुच ही तुम्हें प्यार करने लग गई थी। पर मुझ सदृश स्त्रियों के भाग्य में प्रेम करना बदा ही कहाँ है ! आचार्य इन्द्रदत्त राजनीति की जो शतरंज खेलते हैं, हम तो उसमें मुहरों के समान हैं। जहाँ आचार्य की आज्ञा होगी, वहाँ हमें जाना होगा। वे जिसे प्यार करने को कहेंगे, उसे हमें प्यार करना होगा। पर आओ, उन प्रेमपूर्ण दिनों की स्मृति में एक बार फिर तुम से गले तो मिल लूँ।' पर सिंहनाद ने घृणा और रोष से भरकर वासन्ती की तरफ से मुँह फेर लिया था, और वह अपनी हँसी से सारे गुप्तगृह को गुँजाती हुई वहाँ से विदा हो गई थी।

आम्भि ने सेनापति सिंहनाद से कहा—'सिंहनाद ! गान्धार की रक्षा का भार तुमको सौंपकर मैं कितना निश्चिन्त था। पर तुम तो एक रूपाजीवा से परास्त हो गए, शत्रुसेना का तुम क्या मुकाबिला कर सकते थे। आज से मैं स्वयं ही गान्धार का सेनापतित्व करूँगा। तुम राजसेवा से मुक्त किए जाते हो, और दो दिन के अन्दर-अन्दर तुम्हें भी गान्धार जनपद की सीमा से बाहर चले जाना होगा।'

बिना एक भी शब्द बोले सिंहनाद ने सिर झुका दिया।

तीन दिन तक तक्षशिला में खूब धूमधाम रही। केकय और गान्धार की 'चिरमैत्री' के उपलक्ष्य में जो उत्सव भगवान् अपराजित और भगवती मदिरा के मन्दिरों में मनाया गया, वह बड़ा शानदार था। गान्धार के नागरिकों ने इस उत्सव में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया। तक्षशिला के ये मन्दिर गान्धार के राष्ट्रीय जीवन के प्रतीक थे। गान्धार के नागरिक इन्हें अपना 'देश-देवता' मानते थे। जब केकयराज पोरु और उनके राज-पुरुषों ने इन देवताओं के प्रति अर्घ्य अर्पित किया, तो गान्धार के लोगों के उल्लास की कोई सीमा नहीं रही। वे हर्ष के कारण उन्मत्त-से हो गए। वे सोचते थे, यदि युद्ध में गान्धार परास्त हो गया, तो इससे क्या हुआ। आर्य जनपदों के लिए यह कोई नवीन बात नहीं है। आर्यों में कभी कोई जनपद प्रबल हो जाता है, कभी कोई। पर चक्रवर्ती का पद किसी एक राजकुल में सदा स्थिर नहीं रहता। आज यदि केकयराज पोरु चक्रवर्ती है, तो कल गान्धार का राजकुल यह पद प्राप्त कर सकता है। पर क्या यह गर्व और हर्ष की बात नहीं है, कि केकयराज हमारे देवताओं का सम्मान करता है, हमारे मन्दिरों में अर्घ्य अर्पण करता है। गान्धार की पराजय के बाद भी उसका राष्ट्रीय जीवन पहले के समान कायम है। उसकी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण है।

आम्भि भी इस उत्सव में शामिल हुआ। पर उसका मुख म्लान था। पराजय का शोक उसके हृदय को छेदे जा रहा था। वह सोच रहा था, कब वह अवसर आएगा, जब वह पोरु को नीचा दिखाकर अपनी इस पराजय का प्रतिशोध कर सकेगा।

केकयराज पोरु की सेनाएँ आठ-दस दिन तक्षशिला में रहीं। फिर वे केकय लौट गईं। पोरु सन्तुष्ट था, कि अभिसार के समान गान्धार भी उसका वशवर्ती बन गया है। अब वाहीक खण्ड में उसके एकराज और चक्रवर्ती बनने के मार्ग में कोई बाधा नहीं रह गई है। इन्द्रदत्त और व्याडि जैसे कूटनीतिज्ञ अब सुगमता से वहाँ के सब गणराज्यों को अपना वशवर्ती बना लेंगे। क्षुद्रक, मालव, कठ, क्षत्रिय-आदि गणों में इतनी शक्ति नहीं है, कि वे केकय का सामना कर सकें।

(६)

आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट

पराजय के संताप से तप्त महाराज आम्भि ने निश्चय किया कि आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट कर भविष्य की नीति का निर्धारण किया जाए। आम्भि आचार्य विष्णुगुप्त का शिष्य था और दण्डनीति की शिक्षा उसने उन्हीं से प्राप्त की थी। पराजय के कारण उसके सामने जो अन्धकार छा गया था, उसमें आचार्य विष्णुगुप्त उसे एक ऐसे प्रकाशस्तम्भ के समान प्रतीत हुए, जिससे वह अपने मार्ग को आलोकित कर सकता था।

आम्भि आचार्य विष्णुगुप्त के आश्रम में गया और प्रणाम कर चुपचाप एक ओर खड़ा हो गया। आचार्य ने उसे बैठने के लिए कहा, और गुरु-शिष्य में बातचीत आरम्भ हुई।

'आचार्य ! गान्धार जनपद की इस पराजय का क्या कारण है ?'

'गान्धार के नागरिकों को नाच-रंग और तमाशों का बहुत शौक हो गया है। वे अपने कर्तव्यों का ध्यान नहीं रखते। जितने क्रीड़ागृह तक्षशिला में हैं, उतने शायद ही किसी अन्य नगरी में हों। वंग, काशी, कपिश और केरल तक की रूपाजीवाओं ने तक्षशिला में आकर आश्रय लिया हुआ है। गान्धार के हजारों युवक अपनी रात्रि-वेला इन रूपाजीवाओं के क्रीड़ागृहों में व्यतीत करते हैं। जो लोग क्रीड़ागृहों में जाकर धन को पानी की तरह नहीं बहा सकते, वे राजमार्गों और पण्यहट्टों में तमाशा दिखाने वाले नटों, नर्तकों, वादकों और कुशीलवों आदि की प्रेक्षाओं को देखकर ही नाच-रंग के शौक को पूरा कर लेते हैं। गान्धार देश में धन की कमी नहीं है। भारत-भर के विद्यार्थी यहाँ पढ़ने के लिए आते हैं। वे लाखों कार्षापण यहाँ खर्च करते हैं। इससे तक्षशिला के नागरिकों को विशेष श्रम किए बिना ही धन कमाने का अवसर मिल जाता है। कपिश, काश्मीर, बाल्हीक और कम्बोज आदि के व्यापार का भी यह नगर प्रधान केन्द्र है। भारत-भर के व्यापारियों के सार्थ यहाँ आते हैं। तक्षशिला शिक्षा और व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र है। अतः यहाँ के निवासी सुगमता से धन कमा लेते हैं, और उस धन को वे भोग-विलास और नाच-रंग में स्वाहा करते हैं। जब तक गान्धार के नागरिक नाच-रंग में डूबे रहेंगे, अपने कर्तव्य को वे कदापि नहीं पहचान सकेंगे और इस जनपद का उत्कर्ष सम्भव नहीं होगा।

'तो क्या तक्षशिला के सब क्रीड़ागृहों को बन्द कर देना चाहिए और

नटों, नर्तकों, कुशीलवों आदि पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए ?'

'हाँ, तात ! उचित तो यही है। जब तक किसी जनपद के सब नागरिक अपने-अपने 'स्वधर्म' का पालन नहीं करते, उसका उत्कर्ष सम्भव नहीं होता। ये क्रीड़ागृह और प्रेक्षाएँ लोगों के कर्तव्य-पालन में विघ्न उत्पन्न करती हैं। वासन्ती के रूप और प्रेमजाल में फँसकर ही सेनापति सिंहनाद अपने कर्तव्य से विमुख हो गया था। इन्द्रियों का जय केवल राजा के लिए ही आवश्यक नहीं है, नागरिकों को भी उसकी आवश्यकता है।'

'तो क्या आमोद-प्रमोद का मानव जीवन में कोई स्थान नहीं है ?'

'क्यों नहीं है। यह आवश्यक है, कि प्रत्येक मनुष्य सुखी और सम्पन्न जीवन व्यतीत करे। पर भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में बहुत अन्तर है, तात ! आर्य जनपदों में उत्सवों और समाजों का जो आयोजन सदा से चला आया है, वह क्या आमोद-प्रमोद के लिए पर्याप्त नहीं है ? समाजों में मल्लयुद्ध होते हैं, शस्त्र-संचालन की प्रतिद्वन्द्विता होती है, हिंस्र पशुओं के साथ लड़ाई की जाती है, अनेक प्रकार के खेल होते हैं। इनसे जहाँ जनता का मनोरंजन होता है, वहाँ साथ ही युवकों में वीरता और शारीरिक बल के प्रति अनुराग भी उत्पन्न होता है। देवताओं के उत्सवों, यात्राओं और प्रेक्षाओं से नागरिकों को संगीत, कला और नृत्य के रसास्वादन का अवसर मिलता है। रूपाजीवाओं के क्रीड़ागृह युवकों में कुत्सित कामवासना उत्पन्न करते हैं, और नट, नर्तक, कुशीलव आदि के तमाशे उन्हें अपने कर्तव्य से विमुख करते हैं।'

'क्या आप यह नहीं मानते, आचार्य ! कि केकय देश की मन्त्रयुद्ध में उत्कृष्टता ही गान्धार के पराजय का कारण हुई ? यदि वररुचि भी इन्द्रदत्त के समान कुशल होता, औशनस नीति का प्रयोग कर सकता, तो क्या केकय को गान्धार की विजय करने में सफलता होती ?'

'निःसन्देह, औशनस नीति बड़ी गूढ़ और भयंकर होती है। पर उसे सफलता का अवसर तभी मिलता है, जब किसी जनपद के नागरिक अपने कर्तव्य-पालन में शिथिलता करते हों। औशनस नीति का सार क्या है ? जिस देश को जीतना हो, उसके निर्बल स्थलों पर आघात करो। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष जैसे व्यक्ति के सब से बड़े शत्रु होते हैं, वैसे ही राष्ट्र के भी। जिस जनपद की जनता इन शत्रुओं के वशीभूत हो जाती है, उसी में औशनस नीति सफल हो सकती है। विजिगीषु राजा की ओर से भेजी हुई रूपाजीवा वेश्याएँ तभी अपना कार्य कर सकती हैं, जब जनता में काम के वशीभूत होने की प्रवृत्ति हो। ज्योतिषियों और साधुओं

का भेस बनाकर काम करने वाले गुप्तचर तभी सफल होते हैं, जब लोग लोभ के वशीभूत हों। लोग ज्योतिषियों और साधुओं के पास क्यों जाते हैं? गड़े धन को प्राप्त करने के लिए, लोहे को सोना बना देने वाली पारसमणि को प्राप्त करने के लिए, या अपनी किसी प्रेयसी का प्रेम प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी जड़ी या कवच को पाने के लिए। जनता को यह समझाओ कि वह काम, क्रोध, लोभ आदि के वशीभूत न हो। ऐसा होने पर औशनस नीति कभी भी फलवती नहीं हो सकेगी।'

'पर क्या यह सम्भव है, आचार्य! कि जनता के चरित्र को इतना ऊँचा उठाया जा सके?'

'सर्वांश में तो सम्भव नहीं है। पर राज्य यह प्रयत्न अवश्य कर सकता है, कि जनता के चरित्र का स्तर ऊँचा हो। इस बात को मत भूलो, कि राजा काल का कारण होता है। आचार्य भीष्म के इस सिद्धान्त को सदा अपने सामने रखो। राजा इस प्रकार की नीति का अवलम्बन कर सकता है, जिससे जनता सच्चरित्र बने। तक्षशिला के लोग जिस ढंग से काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वशीभूत हैं, वैसे अन्य किस जनपद के हैं? मैं यह नहीं कहता, कि मनुष्य के जीवन में सुखभोग का कोई स्थान नहीं है। निस्सुख (सुखविहीन) जीवन न केवल नीरस ही होता है, अपितु हानिकारक भी होता है। मनुष्य को काम का सेवन करना चाहिए, पर मर्यादा के साथ। काम-वासना उसी सीमा तक ठीक है, जहाँ तक धर्म और अर्थ से उसका विरोध न हो। पर तक्षशिला के नागरिक तो कामुकता के पीछे मर्यादा का उल्लंघन कर रहे हैं। अपनी इन्द्रियों की संतुष्टि के लिए वे अर्थ (धन) को पानी की तरह बहाते हैं, और धर्म की उपेक्षा करते हैं। साक्षात् आचार्य उशना भी इस प्रकार के लोगों की रक्षा नहीं कर सकते।'

'जनता को मर्यादा में स्थापित करने के लिए मुझे क्या कुछ करना चाहिए, आचार्य!'

'सब से पूर्व तुम स्वयं इन्द्रियजयी बनो। यह बात गाँठ बाँध लो कि सम्पूर्ण शास्त्र-ज्ञान और दण्डनीति का सार यही है, कि इन्द्रियजयी बना जाए। बड़ी-से-बड़ी घटना तुम्हें विचलित न कर सके, इस बात का प्रयत्न करो। अन्य सब राजपुरुष तुम्हारा ही अनुसरण करेंगे, तुम्हें ही अपना आदर्श मानेंगे। कितने ही चातुरन्त राजा इसलिए नष्ट हो गए, क्योंकि वे काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं के वशीभूत थे और इन्द्रियजयी नहीं थे। तुमने स्वयं राजमहिषी के कहने पर क्षणिक आवेश में आकर आचार्य वररुचि को सपरिवार बन्दीगृह में डाल दिया। विनय राजा का सबसे बड़ा

आभूषण है। यह विनय विद्या और ज्ञान से प्राप्त होता है। तुम स्वयं इन्द्रियजयी बनो, मन के क्षणिक आवेश के वशीभूत न होओ, मर्यादा और नियम का पालन करो—राजनीति का यही पहला पाठ है, जो मैंने तुम्हें पढ़ाया था।'

'पर आचार्य ! यदि मेरे अमात्य और सेनापति इन्द्रियजयी न हों, तो मैं अकेला क्या कर सकता हूँ। सिंहनाद ने काम के वशीभूत होकर जो अनर्थ किया, उसे तो आप जानते ही हैं।'

'हाँ, राजकर्मचारियों का भी इन्द्रियजयी होना आवश्यक है। पर कर्मचारी तो तुम्हारा ही अनुसरण करेंगे, तुम उद्यम करोगे, तो वे भी उद्यमी होंगे। तुम प्रमाद करोगे, तो वे भी प्रमाद करेंगे। राजकीय पदों पर नियुक्ति करते हुए यह ध्यान रखो कि जिन व्यक्तियों को तुम अमात्य व सेनापति आदि पदों पर नियत कर रहे हो, वे काम, क्रोध आदि के वशीभूत तो नहीं हैं। राजपुरुषों की परीक्षा के लिए गुप्तचरों से काम लो। जो व्यक्ति धन के लालच में न आएँ, कामवासना को वश में कर सकें, भीरु न हों, धर्म-मर्यादा का पालन करने वाले हों, सब परीक्षाओं में खरे उतरें, 'सर्वोपधाशुद्ध' हों—उन्हीं को मन्त्री पद पर नियत करो। मैं जानता हूं, ऐसे मनुष्य बहुत नहीं होते। पर सब राजपुरुषों के लिए 'सर्वोपधाशुद्ध' होना आवश्यक नहीं है। जिस व्यक्ति को जो काम देना हो, उसके विषय में पहले यह मालूम कर लो कि वह उसके योग्य है या नहीं। यदि तुमने किसी लालची आदमी को अर्थमन्त्री बना दिया, या डरपोक आदमी को सेनापति बना दिया, तो कैसे काम चलेगा ? मन्त्रियों, अमात्यों और राजपुरुषों की समय-समय पर परीक्षा करते रहो। तुम्हारा कोई विश्वस्त गुप्तचर अमात्य के पास जाए और उससे कहे, राजमहिषी तुम्हारे रूप और गुणों पर मोहित है, वह एकान्त में तुमसे मिलना चाहती है। यह सुनकर भी यदि वह अमात्य अपने को वश में रखे, तो समझ लो कि वह 'कामोपधाशुद्ध' है। इसी प्रकार कोई गुप्तचर अमात्य के पास जाए, और उससे कहे—राजा के विरुद्ध बहुत बड़ी साजिश तैयार हो गई है। दो दिन में उसकी हत्या कर दी जाएगी। राजकोष पर षड्यन्त्रकारियों का अधिकार हो जाएगा। तुम भी इस साजिश में शामिल हो जाओ। तुम्हें एक लक्ष सुवर्ण-मुद्राएँ दी जाएँगी। यदि अमात्य एक लक्ष मुद्रा के लालच में न आए और राजा के प्रति अनुरक्त रहे, तो समझ लो कि वह 'अर्थोपधाशुद्ध' है। इसी प्रकार की उपधाओं से समय-समय पर राजकर्मचारियों की परीक्षा करते रहो। यदि तुम इस नीति का

अवलम्बन करते, तो केकयराज का मन्त्रयुद्ध इतनी सुगमता से सफल न होने पाता।

'यह सब तो ठीक है, आचार्य! पर राज्य के संचालन के लिए केवल राजा और उसके कर्मचारियों के वैयक्तिक गुणों पर ही तो निर्भर नहीं रहा जा सकता ?'

'इसीलिए तो मैंने शुरू में ही कहा था कि अपने जनपद में निवास करने वाली जनता के चरित्र को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करो। राज्य को 'सप्ताङ्ग' कहा गया है। राजा, अमात्य, दुर्ग, राष्ट्र, कोश, बल और मित्र—ये राज्य के सात अंग हैं। पर वस्तुतः राज्य के दो ही अंग हैं—राजा और जनता। यदि शासकवर्ग और प्रजा दोनों के चरित्र का स्तर ऊँचा हो, तो राज्य की उन्नति और समृद्धि में कोई सन्देह नहीं रह जाता।'

'पर यह कार्य तो बहुत कठिन है, आचार्य! क्या मैं किसी ऐसी नीति का अनुसरण नहीं कर सकता, जिससे गान्धार जनपद अपने लुप्त गौरव को फिर से प्राप्त कर सके ?'

'राजनीति तभी फलवती होती है, तात! जब उसके प्रयोक्ता शक्तिशाली हों। इसीलिए मैं राजा, राजपुरुष और प्रजा के वैयक्तिक चरित्र को इतना अधिक महत्व देता हूँ। एक बार तुम गान्धार की जनता को मर्यादा में ले आओ, उसके राजपुरुषों को 'स्वधर्म' में दृढ़ कर दो और स्वयं इन्द्रियों को पूर्णतया वश में कर लो। फिर देखो, राजनीति कितना फल लाएगी। तब तुम चाहे मानव सम्प्रदाय की नीति का अनुसरण करो और चाहे औशनस नीति का, गान्धार जनपद निरन्तर उन्नति ही करता जाएगा। उसका अपकर्ष नहीं होगा।'

'पर मुझे शीघ्र-से-शीघ्र अपनी पराजय का प्रतिशोध करना है, आचार्य! केकयराज पोरु द्वारा मेरा जो घोर अपमान हुआ है, वह शूल के समान मेरे हृदय को विद्ध कर रहा है। मुझे तब तक शान्ति नहीं मिलेगी, जब तक कि मैं पोरु से बदला नहीं ले लूँगा।'

'इसके लिए पहले गान्धार की जनता को 'स्वधर्म' में स्थापित करो और ऐसी व्यवस्था करो, जिससे कोई व्यक्ति मर्यादा का अतिक्रमण न कर सके। केकय देश गान्धार की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। उसका मुकाबिला करने का एक उपाय यह है, कि तुम किसी ऐसे राजा का आश्रय लो, जो केकयराज की तुलना में अधिक सशक्त हो। ऐसे राजा से मित्रता स्थापित करके ही तुम केकयराज को नीचा दिखा सकते हो।'

'पर वाहीक खण्ड में ऐसा राजा है ही कौन, जो केकयराज के विरुद्ध

मेरी सहायता कर सके ?'

'यदि कोई एक राजा ऐसा नहीं है, तो तुम छोटे-बड़े अनेक जनपदों को साथ मिलाकर उनकी सहायता प्राप्त कर सकते हो। संसार की सबसे बड़ी ताकत संघशक्ति है। कमजोर तिनके भी जब एक साथ मिलकर रस्से के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं, तो हाथी भी उनके सम्मुख असहाय हो जाता है।'

'आप मुझे अधिक स्पष्टता के साथ मार्ग प्रदर्शन कीजिए, आचार्य ! मैं आपका शिष्य हूँ, आपकी मुझ पर सदा कृपादृष्टि रही है।'

'तात ! इसके लिए मुझसे न कहो। तुम भलीभाँति जानते हो कि हम लोग क्रियात्मक राजनीति में भाग नहीं लिया करते। तक्षशिला विद्या, ज्ञान और शिक्षा का सबसे बड़ा केन्द्र है। भारत-भर के राजकुलों के कुमार और अन्य विद्यार्थी यहाँ शिक्षा के लिए आते हैं। तक्षशिला के इन विद्यापीठों का गौरव नष्ट हो जाएगा, यदि इनके शिक्षक जनपदों और उनके राजकुलों के आपसी झगड़ो में हाथ बटाने लगेंगे। हम लोग ज्ञान देते हैं, शिक्षा देते हैं, उसका प्रयोग करना हमारे शिष्यों का अपना कार्य है।'

आचार्य विष्णुगुप्त को प्रणाम कर महाराज आम्भि अपने राजप्रासाद को वापस लौट आए। रास्ते-भर उनके कानों में आचार्य के ये शब्द गूँजते रहे—तुम किसी ऐसे राजा का आश्रय लो, जो केकयराज की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो। उनके मन में यही प्रश्न बार-बार उठ रहा था, ऐसा राजा कौन-सा है ? क्या मुझे मगधराज महापद्म नन्द की सहायता लेनी चाहिए, जिसका राज्य पूर्वी समुद्र से यमुना तक विस्तीर्ण है।

(७)

तक्षशिला में हलचल

केकयराज पोरु द्वारा गान्धार को पराजित हुए अभी अधिक दिन नहीं हुए थे, कि तक्षशिला पर एक नये ढंग का आक्रमण प्रारम्भ हो गया। यह आक्रमण उन लोगों का था, जो पश्चिम की ओर से बड़ी संख्या में इस समय पश्चिमी भारत की नगरियों में शरण के लिए आ रहे थे। यह नया आक्रमण किसी राजा या सेनापति की ओर से नहीं हुआ था। परिस्थितियों से विवश होकर हजारों स्त्री-पुरुष और बाल-वृद्ध प्रतिदिन तक्षशिला पहुँच रहे थे, और गान्धार देश की इस राजधानी के सम्मुख सबसे बड़ी

समस्या यह थी कि इन शरणार्थियों के विषय में क्या व्यवस्था की जाए। न इनके पास अभिज्ञानमुद्राएँ थीं, और न ये शिक्षा या व्यापार के लिए ही तक्षशिला आ रहे थे। इन्हें कहीं रहने के लिए जगह चाहिए थी, और क्षुधा को शान्त करने के लिए इन्हें भोजन की आवश्यकता थी। गान्धार देश के अन्तपाल, विवीताध्यक्ष आदि सब राजपुरुष इन से परेशान थे।

ये शरणार्थी अजीब-अजीब बातें सुनाते थे। कहते थे, हजारों योजन दूर यवन देश में एक नई शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है, जिसका नाम सिकन्दर है। उसने समुद्र पार के मिस्र देश को बात-की-बात में विजय कर लिया। नील नदी का तटवर्ती वह शक्तिशाली राज्य क्षणभर भी उसके सम्मुख नहीं टिक सका। विशाल पार्स साम्राज्य उसके सम्मुख खोखले वृक्ष के समान ढह गया। पार्स देश की राजधानी पार्सपुरी को उसने केवल एक दिन में विजय कर लिया। पार्सपुरी कितनी अद्भुत और वैभवशाली नगरी थी। उसमें लाखों नर-नारी निवास करते थे। सारे साम्राज्य का धन वहाँ संचित था। लोग विशाल राजाप्रसादों में निवास करते थे। संगीत और नृत्य से वह नगरी सदा परिपूर्ण रहती थी। उसके निवासी इन्द्रपुरी का-सा सुख भोगते थे और सदा नाच-रंग में मस्त रहते थे। उन्हें किसी शत्रु के आक्रमण का भय ही नहीं था; क्योंकि पश्चिम में यवन सागर से लगाकर पूर्व में हिन्दूकुश पर्वत तक पार्सराज दारयवहु का अखण्ड शासन था। लाखों वीर योद्धा इस विशाल साम्राज्य की रक्षा में तत्पर रहते थे। पार्सपुरी के चारों ओर एक सुदृढ़ प्राचीर थी, जो साठ फुट ऊँची थी। हजारों सैनिक रात-दिन इस पर पहरा देते रहते थे। पर सिकन्दर के समाने वे एक दिन भी नहीं टिक सके। सिकन्दर ने पार्सपुरी के साथ बड़ा भयंकर बरताव किया। उसने सारी नगरी को अग्नि के समर्पित कर दिया, देवमन्दिरों तक की रक्षा की उसने परवाह नहीं की। पार्स लोग अग्नि के पूजक हैं, उनके मन्दिरों एवं गृहों में अग्निदेव सदा विराजमान रहते हैं। पर वे भी पार्सपुरी की रक्षा में असफल रहे। अग्नि ने ही उसे ध्वंस कर दिया। सिकन्दर की शक्ति अमानुषिक है, वह लोकोत्तर वीर है।

अब सिकन्दर पार्स साम्राज्य से आगे बढ़ रहा है। शकस्थान को उसने जीत लिया है। हरउवती पर उसने अधिकार कर लिया है। बाख्त्री देश के वीर सैनिक उसका मुकाबिला करने में असमर्थ रहे। वह आँधी की तरह पूर्व की ओर बढ़ रहा है, और कोई भी राजशक्ति उसके सम्मुख नहीं टिक पाती। वह जहाँ जाता है, नगरों और ग्रामों को ध्वंस कर देता है। जो कोई उसके सामने सिर झुका दे, उसकी अधीनता स्वीकार कर ले, अपनी

सेना को उसकी सेना में सम्मिलित कर दे, उसे वह कुछ नहीं कहता। उसके प्रति वह मित्रता का व्यवहार करता है। पर जो कोई उसका मुकाबिला करने का साहस करे, उससे वह बड़ी क्रूरता से पेश आता है। हँसते-खेलते नगरों को ध्वंस कर देना, लहलहाते खेतों को उजाड़ देना और नर-नारियों को मौत के घाट उतार देना उसके लिए बाएँ हाथ का खेल है। उसकी सेना में अदम्य बल है, उसकी रणनीति अलौकिक है।

ये शरणार्थी कहते थे, हमारे घर-बार सिकन्दर ने नष्ट कर दिए हैं। हमारे लिए कहीं भी सिर ढकने तक को जगह नहीं रही है। हिन्दुकुश पर्वत को लाँघकर और सिन्धु नदी को पार कर हम वाहीक खण्ड में आए हैं, शरण प्राप्त करने के लिए। हमारे घर-बार लुट गए हैं, सब सम्पत्ति स्वाहा हो गई है। यवनों ने हमें उजाड़ दिया है। हमारे पास अभिज्ञान-मुद्राएँ नहीं हैं। जब हमारा राज्य ही नहीं रहा, तो अभिज्ञानमुद्राएँ हमें कौन देता। भारत ने कभी शरणार्थियों को निराश नहीं किया। वह सदा विदेशियों को शरण देता रहा है। हम केवल यह चाहते हैं, कि तक्षशिला हमें आश्रय प्रदान करे।

शरणार्थियों की समस्या पर विचार करने के लिए तक्षशिला की पौर-सभा का अधिवेशन बुलाया गया। यद्यपि गान्धार जानपद में वंशक्रमानुगत राजाओं का शासन था, पर वहाँ पौर-जानपद-सभाएँ भी विद्यमान थीं। इनमें पुर और जनपद के प्रमुख कुलवृद्ध (कुलों के मुखिया) एकत्र होते थे, और शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी विषयों पर विचार करते थे। राजा उनके परामर्श को ध्यानपूर्वक सुनता था, और मन्त्री उनके निर्णयों को बहुत महत्व देते थे। इस युग में तक्षशिला की जनसंख्या एक लाख के लगभग थी। इनमें से दस हजार के लगभग शिक्षक और विद्यार्थी थे, जो दूर-दूर के जनपदों से वहाँ आए हुए थे। आबादी का अन्य बड़ा भाग शिल्पियों, वैदेहकों (व्यापारियों) और कर्मकरों का था। तन्तुवाय, गान्धिक, कुम्भकार, रथकार आदि शिल्पियों की अपनी-अपनी 'श्रेणियाँ' थीं और वैदेहक लोग 'निगमों' में संगठित थे। कर्मकरों का कोई पृथक् संगठन नहीं था। वे शिल्पियों और वैदेहकों के पास काम करते थे और उनसे भृति प्राप्त करते थे। तक्षशिला की पौर-सभा में शिल्पी-श्रेणियों और वैदेहक-निगमों के प्रमुख पुरुष भी सम्मिलित होते थे, और कुलमुख्यों के साथ बैठकर नगर के प्रबन्ध की व्यवस्था करते थे। पौर-सभा का अपना सन्थागार (सभा-भवन) था, जो नगर के मध्य में राजप्रासाद के पश्चिम की ओर बना हुआ था। जिस दिन तक्षशिला की पौर-सभा में शरणार्थियों की

समस्या पर विचार होना था, सन्थागार में तिल रखने की भी जगह नहीं रह गई थी। ठीक समय पर पौर (सभा के अध्यक्ष) ने सभा-भवन में प्रवेश किया। उसके आसन ग्रहण कर लेने पर अन्य सब लोग भी अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। तक्षशिला के पौर का नाम चारुदत्त था। वह वैदेहक-निगम का ज्येष्ठक था, और एक समृद्ध व्यापारी था।

चारुदत्त ने पौर जनों को सम्बोधन कर गम्भीरतापूर्वक कहा—'आज जिस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिए हम यहाँ एकत्र हुए हैं, उसे आप सब भलीभाँति जानते हैं। पार्स, हरउवती, बाख्त्री आदि देशों से भागे हुए जो हजारों शरणार्थी इस समय प्रतिदिन तक्षशिला पहुँच रहे हैं, उनके सम्बन्ध में हमें किस नीति का अनुसरण करना चाहिए, इस विषय पर आप अपने-अपने विचार प्रकट करें।'

तन्तुवाय श्रेणी का ज्येष्ठक भानुवर्मा सबसे पहले खड़ा हुआ। उसने कहा—'विदेशियों को आश्रय देने में वाहीक खण्ड के जनपदों ने कभी संकोच नहीं किया। हमें इन शरणार्थियों का हृदय से स्वागत करना चाहिए। इससे हमारा अपना ही लाभ है। ये हजारों नर-नारी जो हमारे यहाँ आकर आश्रय ले रहे हैं, तक्षशिला का बना कपड़ा खरीदेंगे, यहाँ के बने भाण्ड प्रयोग में लाएँगे, गान्धार देश के अन्न से अपने पेट भरेंगे। इससे हमारे पण्य की खपत बहुत बढ़ जाएगी। कर्मकरों को काम मिलेगा, और शिल्पियों को मुनाफा कमाने का अवसर मिलेगा। जब ये लोग अपने देशों को वापस लौटेंगे, तो गान्धार-निवास की सुखद स्मृति अपने साथ ले जाएँगे। इससे गान्धार के विदेशी व्यापार की उन्नति में भी बहुत सहायता मिलेगी।'

भृगुकुल के कुलवृद्ध विश्वश्रवा ने भानुवर्मा का विरोध करते हुए कहा—'केकय देश के आक्रमण को हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ। महाराज पोरु, जो तक्षशिला को इतनी सुगमता से जीत सके, उसका मुख्य कारण इन्द्रदत्त और व्याडि का मन्त्रयुद्ध ही था। हम लोगों ने तब यह खयाल नहीं किया कि जो ये इतने नट, नर्तक, वादक, रूपाजीवा, कुशीलव आदि तक्षशिला में चले आ रहे हैं, ये केकय के गूढ़पुरुष हैं। तक्षशिला के द्वार अब तक सदा विदेशियों के लिए खुले रहे हैं, पर इसका जो परिणाम हुआ, वह आपको बताने की आवश्कता नहीं। कौन जानता है, कि इन शरणार्थियों में कितने ही व्यक्ति सिकन्दर के गूढ़पुरुष होंगे। आश्रय लेने के नाम पर ये तक्षशिला में प्रवेश कर जाएँगे और यहाँ के सब भेद सिकन्दर तक पहुँचा देंगे। अब तक जो विदेशी तक्षशिला आते

थे, उनके पास अभिज्ञानमुद्राएँ भी होती थीं। पर इनके पास तो वे भी नहीं हैं। इन्हें आश्रय देना आशंका और खतरे से खाली नहीं है। तक्षशिला में इन्हें प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।'

वत्स कुल के कुलवृद्ध श्रुतसोम ने विश्वश्रवा का समर्थन किया। उसने कहा—'पीड़ितों की सहायता करना और अनाश्रितों को आश्रय देना धर्म अवश्य है, पर उसके लिए देश और काल का विचार भी करना चाहिए। पार्स और वाख्त्री के ये लोग क्या सुग्ध, बाल्हीक और कपिश में शरण नहीं पा सकते थे। ये जो हिन्दुकुश की दुर्गम पर्वतमाला को लाँघकर और सिन्धु महानद को पार कर वाहीक देश में आए हैं, इसका अवश्य कोई गूढ़ प्रयोजन है। सिकन्दर पार्स के समान वाहीक को भी अपनी अधीनता में लाना चाहता है। इसीलिए उसके हजारों गूढ़पुरुष शरणार्थियों के रूप में यहाँ प्रवेश कर रहे हैं।'

तक्षशिला के समृद्ध वैदेहक श्रेष्ठी श्रीपति ने विश्वश्रवा और श्रुतसोम का विरोध करते हुए कहा—'ये जो हजारों नर-नारी, बाल-वृद्ध और अपंग भूखे-प्यासे तक्षशिला आ रहे हैं, क्या किसी राजा के गूढ़पुरुष हो सकते हैं। इनकी व्यथा की करुण कहानियाँ सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल जाएगा। कल ही मेरे पास एक नारी मिलने के लिए आई थी। बीस साल की वह शक युवती अकाल में ही वृद्ध हो गई है। उसका पति शकस्थान की रक्षा करते-करते लड़ाई में मारा गया। उसके दुधमुंहे बच्चे को नृशंस यवन सैनिकों ने तलवार के घाट उतार दिया। उसका घर सिकन्दर की सेनाओं ने भस्म कर दिया। आज यह शक युवती भिखारिणी है, न उसके पास पहनने को कपड़ा है, न खाने को अन्न। जब रोते-रोते उसने मुझसे आश्रय की भीख माँगी, तो मेरी आँखों में आँसू आ गए।'

विश्वश्रवा ने बीच में टोकते हुए चिल्लाकर कहा—'श्रेष्ठी श्रीपति पर इस स्त्री ने जादू कर दिया है। भिक्षुणी के रूप में यह अवश्य ही शत्रु की गुप्तचर है।'

श्रीपति ने अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए कहा—'अपने हृदय को इतना कठोर न बनाइए, कुलमुख्य! कभी हम सब पर भी ऐसी ही विपत्ति आ सकती है। यवन देश से जो भयंकर तूफान उठा है, उसने कितने ही ग्रामों और नगरों को भूमिसात् कर दिया है, कितने ही सम्पन्न और सुखी घरों का सत्यानाश कर दिया है। हमारा कर्त्तव्य है, कि हम इन विस्थापितों की सहायता करें, इनको आश्रय दें।'

इसी ढंग के अन्य अनेक भाषण हुए। अन्त में पौर चारुदत्त ने खड़े

होकर कहा—'क्या यह उचित न होगा कि तक्षशिला से बाहर खुले मैदान में इन शरणार्थियों के लिए एक शिविर की रचना कर दी जाए? ये तक्षशिला की प्राचीर के भीतर स्वच्छन्द रूप से न आ-जा सकें, पर गान्धार जनपद की ओर से इनके निवास और निर्वाह की व्यवस्था हो। जो लोग कार्यवश तक्षशिला आना चाहें, वे अभिज्ञानमुद्रा लेकर ही उसके महाद्वार में प्रवेश कर सकें। यह आवश्यक हो कि रात होने से पहले ही वे नगर से बाहर अपने शिविर में वापस लौट जाएँ। शिविर की रक्षा के लिए दुर्गपाल एक पृथक् सेना नियुक्त कर दें, जो इन शरणार्थियों की गतिविधि पर नजर रखें। जो आशंका कुलमुख्य विश्वश्रवा और श्रुतसोम ने प्रकट की है, उसमें भी सचाई है। पर साथ ही निराश्रितों को आश्रय देना भी हमारा कर्त्तव्य है।'

चारुदत्त के प्रस्ताव को पौरों ने पसन्द किया। उसके समर्थन में सब ने हर्षध्वनि की, और जनकोलाहल द्वारा वह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। तक्षशिला के दुर्गपाल चण्डसेन को शिविर की समुचित व्यवस्था का आदेश देकर पौर-सभा का अधिवेशन समाप्त हो गया।

(८)

महाराज आम्भि की गूढ़ मन्त्रणा

जिस समय तक्षशिला के पौर जन अपने सन्थागार में एकत्र होकर शरणार्थियों की समस्या पर विचार कर रहे थे, गान्धारराज आम्भि गूढ़ मन्त्रणा में तत्पर थे। आचार्य वररुचि को मन्त्रिपद से पृथक् कर उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति को उनके स्थान पर नियुक्त नहीं किया था। पर वे भागुरायण से बहुधा मन्त्रणा करते रहते थे। आचार्य भागुरि के पुत्र भागुरायण औशनस सम्प्रदाय के अनुयायी थे और तक्षशिला के विश्व-विख्यात आचार्यों में उनकी गिनती थी। आचार्य विष्णुगुप्त के समान भागुरायण भी दण्डनीति के पण्डित थे, और केकय देश के कूटनीतिज्ञ इन्द्रदत्त और व्याडि ने उनके साथ ही आचार्य भागुरि से कूटनीति की शिक्षा पाई थी।

महाराज आम्भि भागुरायण के साथ अपने मन्त्रणागृह में बैठे हुए थे। द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि दो व्यक्ति महाराज से भेंट करना चाहते हैं।

'मालूम करो कि वे कौन हैं ?'

'मैंने पहले ही सब कुछ पूछ लिया है, महाराज ! हरउवती के दण्ड-धर दन्तनख और बाख्त्री के सार्थवाह कुशास्प महाराज के दर्शन के प्रार्थी हैं ।'

'उन्हें तुरन्त उपस्थित करो।

भागुरायण ने बीच में ही टोककर कहा—'सुनो द्वारपाल ! पहले यह जाँच लो कि उनके पास कोई अस्त्र तो नहीं है। उनके एक-एक वस्त्र की परीक्षा करके देखो; उनके केश, श्मश्रु, सबको छू-छूकर देख लो। इसके बाद ही उन्हें यहाँ पेश करना।'

'जो आज्ञा, आचार्य !' कहकर द्वारपाल बाहर चला गया और कोई एक घड़ी बाद दन्तनख और कुशास्प को साथ लेकर मन्त्रणागृह में आया।

सात बार दाएँ हाथ को मस्तक से छूकर दोनों विदेशियों ने महाराज आम्भि को प्रणाम किया। फिर अनुमति पाकर वे सामने के आसनों पर बैठ गए।

'कहो, तुम्हें क्या काम है ?' आचार्य भागुरायण ने प्रश्न किया।

'हम तक्षशिला में शरण पाने की अनुमति लेने के लिए महाराज की सेवा में उपस्थित हुए हैं।'

'पर इस प्रश्न पर तो तक्षशिला की पौर-सभा विचार कर रही है।'

'यह हमें मालूम है, आचार्य ! हमारे देश में भी इसी प्रकार की पौर-सभाएँ थीं। पर इन सभाओं में कोई निर्णय नहीं हो सकता, आचार्य ! जब सिकन्दर की यवन सेनाएँ हमारे पुरों और नगरों पर आक्रमण कर रही थीं, इन सभाओं में पौरजन लच्छेदार व्याख्यान झाड़ रहे थे। पौर लोग आपस में बहस ही करते रहे, जब कि सिकन्दर की सेनाओं ने विद्युत्गति से आकर उन पर कब्जा कर लिया। भाषण-कुशल कुलमुख्य और श्रेणिज्येष्ठक तलवार के घाट उतार दिए गए। सिकन्दर के राज्य में न कोई सभा है, न कोई मन्त्रिपरिषद्। क्या महाराज स्वयं हमारी करुण कथा को सुनकर कोई निर्णय नहीं कर सकते ?'

'क्या तुमने सिकन्दर को देखा है ?' महाराज आम्भि ने प्रश्न किया।

'हाँ, महाराज ! जब हरउवती पर यवन सेनाओं ने कब्जा किया, तो मैं वहीं उपस्थित था।' दण्डधर नखदन्त ने उत्तर दिया।

'सिकन्दर के विषय में तुम क्या-कुछ जानते हो ?'

'वह अलौकिक वीर है, महाराज ! जब वह घोड़े पर चढ़कर अपनी सेना का संचालन करता है, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो युद्ध के देवता

स्वयं मानव आकार धारण कर रणक्षेत्र में उतर आए हों। उसके मुख पर अदम्य तेज है, उसकी बाहुओं में प्रचण्ड बल है! सारी पृथिवी पर अपना चक्रवर्ती शासन स्थापित करने के उद्देश्य से वह सेना लेकर निकला है। वह जिधर भी निकल जाता है, त्राहि-त्राहि मच जाती है। मिस्र और पार्स देशों के बलशाली राजा क्षण-भर में उसने परास्त कर दिए। शकस्थान और बाख्त्री के उद्भट योद्धा एक दिन भी उसके सम्मुख नहीं ठहर सके। उसके आक्रमणों के कारण हिन्दुकुश पर्वत के पार का कोई भी जनपद अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम नहीं रख सका है। सिकन्दर में पता नहीं कैसा जादू है, जो उसने अपनी सेना में एक अद्भुत साहस और वीरता का संचार कर दिया है। ये यवन सैनिक जब युद्ध के मैदान में उतरते हैं, तो भैरव के अवतार-से प्रतीत होने लगते हैं।'

'क्या सिकन्दर हिन्दुकुश पर्वतमाला को पार कर भारत पर भी आक्रमण करेगा?'

'सिकन्दर की आकांक्षाएँ महान् हैं, महाराज! दुर्गम पर्वत और अगाध नद उसके मार्ग को नहीं रोक सकते। वह सारी पृथिवी पर अपना अबाधित शासन स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील है। वह जिस देश को जीतता है, वहाँ अपने नाम से 'सिकन्दरिया' नामक नगरी की स्थापना कर देता है। वहाँ वह यवन लोगों को बड़ी संख्या में बसा देता है, ताकि उनका शासन स्थायी रहे। वह यह भी यत्न करता है कि यवन लोग उस देश की स्त्रियों से विवाह कर लें, जिससे वहाँ एक ऐसी नई नसल पैदा हो जाए, जो अपने यवन रक्त को गौरव की बात समझे। पार्सपुरी, हरउवती आदि में उसने हजारों यवन सैनिकों के उन देशों की युवतियों के साथ सामूहिक विवाह कराए हैं। सिकन्दर चाहता है कि सब देश उसे अपना अधिपति स्वीकार करें, सर्वत्र यवन सभ्यता, यवन भाषा और यवन संस्कृति का प्रचार हो, और सम्पूर्ण मानव-समाज एक सूत्र में संगठित हो जाए।'

'यवनों के धर्म और संस्कृति का क्या स्वरूप है?'

'यवन लोग देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं, मन्दिरों में उनकी प्रतिमाएं स्थापित करते हैं, और उनको सन्तुष्ट करने के लिए बलि प्रदान करते हैं। यवन लोग भारत के आर्यों से बहुत भिन्न नहीं हैं। वे आर्यों की ही एक शाखा हैं। उनकी भाषा भी आर्यों की भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। यही कारण है कि सिकन्दर जिन देशों की विजय करता है, उनके देवी-देवताओं का संम्मान करता है, उनको अर्घ्य अर्पित करता है।'

'क्या हिन्दुकुश पर्वतमाला के परे के सब जनपदों ने सिकन्दर से युद्ध

किया ?'

'नहीं, महाराज ! अनेक जनपदों ने स्वेच्छापूर्वक उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। आँधी से लड़ने से क्या लाभ है, महाराज ! मैंने तो बाख्त्री के राजतन्त्र से भी यही प्रार्थना की थी कि वे स्वयं इस विश्वविजेता के सम्मुख बिना युद्ध के ही सिर झुका दें। पर वहाँ के शासकों ने इसे अपना राष्ट्रीय अपमान समझा। लड़ने से उन्हें क्या मिला ? आज जो मेरे सदृश सैकड़ों सम्पन्न व्यक्ति दर-दर के भिखारी बन गए हैं, यह इसी का तो परिणाम है, महाराज !' सार्थवाह कुशास्प ने उत्तर दिया।

'जो राजा सिकन्दर से मैत्री की अभ्यर्थना करते हैं, उनके साथ वह कैसा व्यवहार करता है ?'

'उन्हें वह अपना मित्र मानता है। उनके राजवंश का वह उच्छेद नहीं करता। उन्हें वह अपनी सेना में उच्च पद प्रदान करता है; उनका वह यथोचित आदर करता है।'

'अच्छा, इस समय सिकन्दर कहाँ पर है ?'

'जिस समय मैंने पंजशीर नदी के साथ-साथ चलते हुए भारत की ओर प्रस्थान किया था, तब सिकन्दर बाख्त्री में ही था। अब वह शायद बाख्त्री के परे सीर नदी के तट पर सुग्ध देश में होगा।'

'तक्षशिला से सुग्ध तक पहुँचने में कितना समय लगेगा ?'

'तेज घोड़ों पर यात्रा करने से दो सप्ताह से अधिक समय सुग्ध पहुँचने में नहीं लगेगा, महाराज !'

'अच्छा, अब तुम जाओ। तुम्हारी प्रार्थना पर मैं विचार करूँगा। तक्षशिला की पौर-सभा तुम लोगों की समस्या के सम्बन्ध में जो निर्णय करती है, उसे भी मुझे दृष्टि में रखना है।'

दण्डधर नखदन्त और सार्थवाह कुशास्प ने फिर सात बार अपने दाएँ हाथों को मस्तक से छुआकर महाराज आम्भि को प्रणाम किया और वे मन्त्रणागृह से बाहर चले गए।

'कहो, भागुरायण ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?' आम्भि ने भागुरायण से प्रश्न किया।

'क्या इन शरणार्थियों के विषय में ?'

'नहीं, इनकी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। इनके सम्बन्ध में पौर-सभा जो कुछ भी निर्णय करे, मैं उसमें हस्तक्षेप नहीं करूँगा। पोरु ने मेरा जो अपमान किया है, मुझे उसका प्रतिशोध करना है ! मैं आचार्य विष्णुगुप्त से मिला था। उनके ये शब्द हर समय मेरे कानों में गूंजते रहते हैं—"तुम

किसी ऐसे राजा का आश्रय लो, जो केकयराज की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हो।" इस यवनराज सिकन्दर की अपेक्षा कौन अधिक शक्तिशाली होगा? क्यों न मैं सुग्ध जाकर इससे मिलूँ और इसे वाहीक देश पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करूँ? पोरु क्या इसका मुकाबिला कर सकेगा? जब यवन सेनाएँ राजगृह पर आक्रमण कर उसे ध्वंस कर देंगी, तभी मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। पार्स साम्राज्य का अधिपति दारयवहु तक जिसके सामने खड़ा नहीं रह सका, उस सिकन्दर का केकयराज क्या मुकाबिला करेगा?'

'पर यह तो बड़ी भयानक बात होगी, महाराज! जब एक विदेशी और विधर्मी सेना वाहीक देश को आक्रान्त करेगी, तो कितना भयंकर नरसंहार होगा, महाराज! ये फलते-फूलते नगर उसके आक्रमणों से भूमिसात् हो जाएंगे, ये लहलहाते खेत उजड़ जाएँगे। आर्यजाति का जो घोर विनाश इससे होगा, वह क्या आपको सह्य होगा, महाराज!'

'भागुरायण! क्या यही तुम्हारी औशनस नीति है? मैं कैसे भूल जाऊँ उस दिन को, जब कि पोरु ने विजेता के रूप में मेरी इस नगरी में प्रवेश किया था। उसके स्वागत में यह नगरी किस ढंग से सजाई गई थी, लोग कैसे केकयराज का जय-जयकार कर रहे थे। जब मैंने पोरु को सभामण्डप में उच्च सिंहासन पर बैठे हुए देखा, तो जानते हो, भागुरायण! मेरे हृदय पर कैसी बरछियाँ चल रही थीं? मैं उस घोर अपमान को सह गया, इसी आशा से कि कभी मैं भी पोरु को नीचा दिखाऊँगा। जिस दिन राजगृह का ध्वंस हो जाएगा, पोरु को बन्दी बनाकर सिकन्दर के सम्मुख पेश किया जाएगा, और मैं यवनराज के दाँए हाथ बैठकर जंजीरों में बँधे हुए पोरु से दो-दो बातें करूँगा, तभी मेरी यह हृदय-ज्वाला शान्त होगी।'

'पर इस आर्यजाति का क्या होगा, महाराज! क्या आप यह सह सकेंगे कि आर्यों की यह वाहीक-भूमि यवनों द्वारा पदाक्रान्त हो?'

'क्यों नहीं, भागुरायण! क्या आज भी गान्धार स्वतन्त्र है? पोरु ने मुझे मन्त्रयुद्ध और शस्त्रयुद्ध दोनों में परास्त कर दिया है। आज जो मैं गान्धार के राजसिंहासन पर बैठा हूँ, वह केवल पोरु की कृपा के कारण हीं तो। पोरु चाहे, तो आज मुझे रास्ते का भिखारी बना सकता है। मेरे दिल में पोरु के प्रति जो घृणा हैं, क्या वह इन्द्रदत्त और व्याडि से छिपी रह सकती है? कौन जानता है कि ये नखदन्त और कुशास्प व्याडि के ही गूढ़पुरुष हों। उसकी कूटनीति ने तो मुझे पागल-सा बना दिया है। अनेक बार तो मैं अपने पर ही सन्देह करने लगता हूँ। सिकन्दर को मैं अपना

मित्र बनाऊँगा। विजेता के अधीन रहने की अपेक्षा तो मित्र के अधीन रहना कहीं अधिक सम्मानास्पद है।'

'तो फिर आपका क्या विचार है?'

'मैं यही चाहता हूँ कि कल सुबह ही सुग्ध के लिए प्रस्थान कर दूँ।'

'पर इस समय आपका तक्षशिला से बाहर जाना उचित नहीं होगा, महाराज! व्याडि के गूढ़पुरुष तुरन्त ही आपकी योजना का पता लगा लेंगे। कोई आश्चर्य नहीं कि वे आपके मार्ग को रोकने का प्रयत्न करें।'

'तो फिर क्या करना चाहिए?'

'आप अपने दूत सिकन्दर से भेंट करने के लिए भेजें।'

'इस कार्य के लिए कौन-से व्यक्ति उपयुक्त होंगे?'

'सेनापति सिंहनाद इसके लिए सर्वथा योग्य है। आप उसे सेनापति-पद से पृथक् कर चुके हैं। आपकी आज्ञा से वह गान्धार जनपद से बाहर चला गया है। पर अभी वह अधिक दूर नहीं गया है। अभिसार जनपद की सीमा पर वह अपने एक मित्र के घर पर रह रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि रूपाजीवा वासन्ती के प्रेमजाल में फँसकर उसने बहुत भूल की। पर वह वीर योद्धा है, और महाराज के प्रति उसके हृदय में सच्चा अनुराग है। उसे सुग्ध भेज दीजिए। उस पर कोई सन्देह नहीं करेगा। लोग समझेंगे कि अभिसार में आश्रय न मिलने के कारण ही वह पश्चिम की ओर गया है।'

'तो उसे यह काम सुपुर्द करने का कार्य तुम ही करो, भागुरायण! तुम आज रात ही तक्षशिला से चले जाओ, और जल्दी-से जल्दी सिंहनाद को सुग्ध भेज दो।'

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, महाराज!' कहकर भागुरायण ने आम्भि से विदा ली।

(९)

आचार्य विष्णुगुप्त का चिन्तन

सुबह का समय था। नित्यकर्मों से निवृत्त होकर आचार्य विष्णुगुप्त अपनी कुटी में विराजमान थे। सामने कुशासन पर शिष्यगण बैठे थे, आचार्य का प्रवचन सुनने के लिए। अंग देश का राजकुमार अरिन्दम, इन्द्रप्रस्थ का राजकुमार धनञ्जय, काशी का राजकुमार ब्रह्मदत्त, मिथिला

का कुमार सुरुचि, मोरियगण का कुमार चन्द्रगुप्त और कुरुदेश का कुमार सुतसोम आचार्य विष्णुगुप्त के प्रमुख शिष्यों में थे। इन राजकुमारों के अतिरिक्त अनेक श्रोत्रियपुत्र, वैदेहकपुत्र आदि भी उनकी शिष्यमण्डली में सम्मिलित थे। उनके विद्यापीठ में विद्यार्थियों की संख्या ५०० के लगभग थी। पर वे स्वयं केवल उन विद्यार्थियों को पढ़ाते थे, जो अनेक वर्ष उनके विद्यापीठ में रह चुके हों, या जो विशेष रूप से प्रतिभा-सम्पन्न हों। अन्य विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए अनेक उपाध्याय नियुक्त थे, जो विविध विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे।

उस दिन आचार्य विष्णुगुप्त की भावभंगी अत्यन्त गम्भीर थी। कुछ देर चुपचाप बैठे रहने के बाद उन्होंने धीरे-धीरे कहा—'शायद कुछ समय के लिए मुझे तक्षशिला से बाहर जाना होगा।'

'तो हम लोगों की शिक्षा का क्या होगा, आचार्य ?' एक साथ ही अनेक शिष्य बोल उठे।

'अपनी शिक्षा की तुम चिन्ता न करो। मेरा सहयोगी विष्णुशर्मा आन्वीक्षकी और दण्डनीति में पारंगत है। मेरी अनुपस्थिति में वही तुम्हारे आचार्य होंगे।'

'पर आपके इस निर्णय का क्या कारण है, आचार्य ?'

'क्या तुम देखते नहीं हो कि सुदूर यवन देश से जो एक नया तूफान उठा था, उसने सारे पाश्चात्य खण्ड को व्याप्त कर लिया है। हिन्दूकुश पर्वतमाला तक यह आँधी पहुँच गई है। प्रभंजन के वेग से उड़ते हुए तिनकों के समान हजारों-लाखों नर-नारी अपने घर-बार छोड़कर वाहीक खण्ड में आ रहे हैं। मुझे साफ-साफ नजर आ रहा है कि यह तूफान हिन्दूकुश पर्वत को लाँघकर भारतवर्ष में प्रवेश करेगा और यहाँ के जनपद इस नई शक्ति के सम्मुख अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकेंगे। आर्य धर्म और आर्य मर्यादा के विनाश को सह सकना मेरी शक्ति में नहीं है। यवन देश के म्लेच्छ लोग परास्त जनपदों की नगरियों को भस्मसात् कर देते हैं, स्त्रियों और बच्चों को गृहहीन बना देते हैं। मैं उस दिन की कल्पना करके उद्विग्न हो जाता हूँ, जब पुष्करावती, तक्षशिला, राजगृह, सांकल आदि आर्य नगरियाँ भी इन म्लेच्छ सेनाओं द्वारा आक्रान्त होंगी और आर्य नारियाँ आश्रयहीन होकर इधर-उधर भटकती फिरेंगी। अनाथ बच्चों का वह करुण क्रन्दन मुझे अपने कानों से सुनाई दे रहा है, जिसमें आर्य भूमि का सम्पूर्ण क्षितिज परिपूर्ण हो जाएगा।'

'आप तो क्रियात्मक राजनीति में भाग लेने के विरुद्ध थे, आचार्य !

आप तो हमें सदा यह शिक्षा दिया करते थे कि प्रत्येक मनुष्य को स्वधर्म में स्थिर रहना चाहिए।'

'मेरी अब भी यही सम्मति है। इसी कारण केकय और गान्धार के युद्ध में मैं उदासीन रहा, और तक्षशिला के सब आचार्यों और उपाध्यायों को मैंने यही परामर्श दिया कि वे भी दो जनपदों के इस संघर्ष में तटस्थ नीति का अनुसरण करें।'

'तो अब ऐसी कौन-सी नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, जिससे आप अपनी नीति में परिवर्तन कर रहे हैं?'

'अब एक ऐसा समय आ रहा है, जिसमें आर्य-मर्यादा की सत्ता ही संकट में पड़ जाएगी। भारत के विविध आर्य जनपद अनादि काल से आपस में संघर्ष करते रहे हैं। प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी आर्य राजा की यह आकांक्षा रही है कि वह अन्य राज्यों को जीतकर सार्वभौम और चक्रवर्ती पद प्राप्त करे। पर आर्य राजाओं के इन अभियानों में न आर्य नगरियों का ध्वंस होता था, और न अन्य राजकुलों का उच्छेद। न स्त्रियाँ और बच्चे आश्रयहीन होते थे, और न लहलहाते खेत उजड़ते थे। सैनिक लोग एक ओर युद्ध करते होते थे, और पड़ोस में ही कृषकगण खेतों में हल चलाते रहते थे, मानो युद्ध के साथ उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आर्य लोग भूमि को पवित्र मानते हैं, प्रकृति की पूजा करते हैं, सबके देवी-देवताओं का सम्मान करते हैं। नगरों का ध्वंस, खेती का विनाश, और स्त्रियों तथा बच्चों को आश्रयविहीन करना वे सर्वथा धर्म-विरुद्ध मानते हैं। क्षत्रिय लोग युद्ध करते हैं, क्योंकि यह उनका स्वधर्म है। वे युद्ध करते हैं, अपने देश की रक्षा के लिए और वीरत्व के गौरव के लिए। पर यवन देश से जो यह सिकन्दर विश्वविजय के लिए चला है, वह आर्य-मर्यादा का विरोधी है। क्या जब केकयराज पोरु ने तक्षशिला पर आक्रमण किया, तो उसने इस नगरी का ध्वंस किया? योद्धा लोग तक्षशिला की प्राचीर पर लड़ रहे थे, और हमारे विद्यापीठों में अध्ययन-अध्यापन जारी था। हमें दोनों ओर की किसी भी सेना से किसी भी प्रकार का भय नहीं था। आर्य-मर्यादा यही है। पर सिकन्दर के आक्रमण में यह दशा नहीं रह सकेगी। उसका प्रतीकार तो हमें करना ही होगा। संकट के समय तो साक्षात् भगवान् का आसन भी डोल जाता है। वे भी शेषशय्या को त्यागकर अवतार धारण करते हैं, दैत्यों और असुरों का संहार करने के लिए, आर्य-मर्यादा की स्थापना करने के लिए। भारतवर्ष में एक घोर संकट का काल उपस्थित हो रहा है, और इस समय हमें भी अपने आश्रमों से बाहर निकलकर

राजनीति में प्रवेश करना होगा। जब धर्म पर संकट आता है, तो तापस और मुनि लोग भी तपस्या और मनन छोड़कर अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए संसार में चले जाते हैं।'

'तो अब आप क्या करना चाहते हैं, आचार्य ?'

'विदेशी यवनों से भारतवर्ष की रक्षा करने के लिए हमें सम्पूर्ण देश को एक राजनीतिक संगठन में संगठित करना होगा। छोटे-छोटे जनपदों का युग अब समाप्त हो गया है। शक्तिशाली सम्राटों के मुकाबिले में वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा अब नहीं कर सकते। यवन देश में कितने ही छोटे-छोटे गणराज्य थे। उन्हें अपनी स्वतन्त्रता और शासन-व्यवस्था का अभिमान था। हमारे देश के कठ, मालव, क्षत्रिय, क्षुद्रक, आग्रेय आदि गणराज्यों के समान इन यवन राज्यों में भी जनता अपना शासन स्वयं किया करती थी। पर मैसिडोन के राजा फिलिप और उसके पुत्र सिकन्दर के सम्मुख ये यवन-राज्य अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम नहीं रख सके। यवन देश में जो अनेक छोटे-छोटे राजतन्त्र जनपद थे, वे भी सिकन्दर की अधीनता में चले गए। वाहीक देश में जो ये बहुत-से जनपद हैं, वे भी सिकन्दर के सामने खड़े नहीं रह सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि इन सब राज्यों के निवासी वीर हैं, विकट योद्धा हैं। वे अन्त समय तक डटकर शत्रु का मुकाबिला करेंगे। पर इससे उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा तो नहीं हो सकेगी। भारत में यदि आर्य जाति के धर्म और मर्यादा को कायम रखना है, तो उसका एकमात्र उपाय यह है कि इस सम्पूर्ण देश में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की जाए। हिमालय से लेकर समुद्रपर्यन्त जो यह सहस्र योजन विस्तीर्ण विशाल भूखण्ड है, वह एक चक्रवर्ती साम्राज्य का क्षेत्र है। इस क्षेत्र में एक शक्तिशाली सुसंगठित राज्य की स्थापना करनी होगी। तभी यह देश यवन आक्रमणों से अपनी रक्षा कर सकेगा। मैं अपना शेष जीवन इसी कार्य में व्यतीत करूँगा।'

'वाहीक देश में इस समय सब से अधिक शक्तिशाली केकय जनपद है। क्या उसके नेतृत्व में यह कार्य सम्पन्न किया जा सकता है, आचार्य ?'

'नहीं, मुझे इसकी आशा नहीं है। केकय की सेना में केवल 'मौल' सैनिक हैं। जो लोग केकय जाति के हैं, जो केकय के प्राचीन कुलों में उत्पन्न हुए हैं, जो केकय के मूल-निवासी हैं, वे ही उसकी सेना में सम्मिलित हैं। केवल मौल सैनिकों से विशाल साम्राज्य नहीं स्थापित हुआ करते। सिकन्दर जो यह दिग्विजय कर रहा है, उसके लिए वह केवल मैसिडोन के सैनिकों पर निर्भर नहीं करता। मैसिडोन जो सारे यवन जनपदों को जीत

सका, उसका कारण यह था कि उसकी सेना में आटविक सैनिक बहुत बड़ी संख्या में थे। मैसिडोन यवन देश के उत्तर में है, उसकी उत्तरी सीमा पर बहुत-सी जंगली जातियाँ निवास करती हैं, जो विकट योद्धा हैं। वे आरामदेह मकानों में नहीं रहतीं, शहरों के सुख उन्हें प्राप्त नहीं हैं। वे अटवियों में स्वच्छन्द रूप से परिभ्रमण करती हैं, और शिकार द्वारा अपना निर्वाह करती हैं। आटविक योद्धाओं का मुकाबिला वे सैनिक नहीं कर सकते, जो शहरों में सुख-भोग करते हैं, जो क्रीड़ागृहों और प्रेक्षाओं में शामिल होते हैं। मैसिडोन के राजाओं ने इन आटविक सैनिकों की सहायता से यवन देश के सभ्य जनपदों को विजय किया, और फिर विजित देशों के योद्धाओं को अपना भृत बनाकर एक ऐसी शक्तिशाली सेना का निर्माण किया, जिसका पेशा ही युद्ध करना है। यही कारण है कि सिकन्दर की सेना में लाखों सैनिक हैं। वे अपने जीवन निर्वाह से निश्चिन्त हैं, क्योंकि राजा द्वारा उन्हें भृति दी जाती है। केकय देश के पास न आटविक सेना है, और न भृत सेना। उसके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह वाहीक देश को एक शासन में ला सके। कठ, क्षुद्रक, मालव आदि गणराज्यों को जीत सकना भी उसके लिए सुगम नहीं होगा।'

'तो फिर इस महत्वपूर्ण कार्य को कौन सम्पन्न कर सकेगा, आचार्य ?'

'यह कार्य मगध द्वारा सम्पन्न होगा। सम्पूर्ण भारतवर्ष में केवल मगध का राज्य ही ऐसा है, जो हिमालय से लेकर समुद्र-पर्यन्त विस्तीर्ण इस विशाल देश में एक सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना कर सकता है। पूर्वी समुद्र से यमुना तक मगध का एकच्छत्र साम्राज्य कायम हो चुका है। पश्चिम में हिन्दूकुश पर्वतमाला तक और दक्षिण में सिंहलद्वीप तक मगध को अपना साम्राज्य स्थापित करना होगा। तभी आर्य जाति अपने गौरव को कायम रख सकेगी। मगध के पास आटविक सेना भी है, और भृत सेना भी। मगध के दक्षिण में सैकड़ों योजनों तक महाकान्तार फैला हुआ है, जिसमें बहुत-सी आटविक जातियाँ निवास करती हैं। वे सब विकट योद्धा हैं। मगध ने इन आटविक सैनिकों को बहुत बड़ी संख्या में अपनी सेना में शामिल किया है। आर्यकुलों के साथ-साथ मगध में बहुत-से ऐसे लोगों का भी निवास है, जो अनार्य हैं। वहाँ के निवासी प्रायः वर्णसंकर हैं, जो आर्यों और शूद्रों के संयोग से उत्पन्न हुए हैं। इनमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता की वह परम्परा नहीं है, जो वाहीक, कुरु, पञ्चाल, कोशल आदि के जनपदों में है। यही कारण है कि मैसिडोन के समान मगध के राजा भी बहुत-से भृत सैनिकों को अपनी सेना में भरती कर सकने में समर्थ हुए। मगध

जो अपना विशाल साम्राज्य बना सका, उसमें उसकी ये आटविक और भृत सेनाएँ ही प्रधान हेतु थीं। इन्हीं की सहायता से वह सम्पूर्ण भारत को एक शासन में ला सकेगा और यवनों को भारत में प्रविष्ट नहीं होने देगा।'

'पर, आचार्य! मगध के राजा तो शूद्र हैं, उनसे आर्य-मर्यादा की रक्षा कैसे सम्भव होगी?'

'यह सच है कि मगध का वर्तमान राजकुल विशुद्ध क्षत्रिय नहीं है। उसमें शूद्र रक्त का मिश्रण है। पर यह स्मरण रखो कि राज्य में राजा तो 'ध्वजमात्र' होता है। ध्वजा जिस प्रकार एक भावना का प्रतीक होती है, वैसे ही राजा राजशक्ति का प्रतीक मात्र ही होता है।'

'मगध के राजा न केवल शूद्र हैं, पर साथ ही अधार्मिक भी हैं। वे भोग-विलास में मस्त रहते हैं, और प्रजा का पीड़न करते हैं। ऐसे राजाओं से क्या आपका स्वप्न पूर्ण हो सकेगा, आचार्य?'

'मैं भलीभाँति समझता हूँ कि प्रजापीड़क और अधार्मिक राजा के शासन में राज्य उन्नति के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। पार्स देश के वीर राजाओं ने हिन्दूकुश से यवन सागर तक एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। पर बाद के पार्स सम्राट् भोग-विलास में मस्त रहने लगे। दारयवहु रात-दिन अपने अन्तःपुर में पड़ा हुआ नाच-रंग में डूबा रहता था। इसी लिए वह सिकन्दर द्वारा परास्त हो गया। पर मगध के राजकुल का अभी इतना अधःपतन नहीं हुआ है। वहाँ का प्रधानमन्त्री आचार्य शकटार मेरा सहपाठी है। वह चाणाक्ष राजनीतिज्ञ है। उसके नेतृत्व में मगध की राजशक्ति का ह्रास सम्भव नहीं है। पर मुझे मगध के राजकुल से कोई मोह नहीं है। हिमालय से समुद्र तक विस्तीर्ण इस भूमि में एक साम्राज्य की स्थापना होनी ही चाहिए। यदि मगध का वर्तमान राजकुल उसके लिए सहायक सिद्ध नहीं होता, तो उसे नष्ट कर दूसरा राजकुल उसकी जगह ले सकता है। मेरा उद्देश्य सर्वथा स्पष्ट है। जो कोई उसकी पूर्ति में बाधक होगा, उसे उखाड़ फेंकने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होगा।'

आचार्य विष्णुगुप्त के प्रवचन को कुमार चन्द्रगुप्त बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह अब शान्त नहीं रह सका। उसने आवेश में आकर कहा—'पर आचार्य! मैं तो मोरियगण की स्वतन्त्रता का पुनरुद्धार करना चाहता हूँ। आपकी योजना में तो गणराज्यों का कोई स्थान ही नहीं है।'

'नहीं, चन्द्रगुप्त! तुम मेरे अभिप्राय को ठीक तरह से नहीं समझ सके। गणों और जनपदों की आन्तरिक स्वतन्त्रता का मैं पक्षपाती हूँ। किसी भी राजकुल का मूलोच्छेद आर्य-मर्यादा के प्रतिकूल है। पर अब वह

युग नहीं रहा, जब कि भारत में सैकड़ों-हजारों छोटे-छोटे राज्य स्वतन्त्र रूप से कायम रहें। अब उन सबको एक सूत्र में संगठित होना होगा, एक केन्द्रीय शासन की अधीनता स्वीकृत करनी होगी; अन्यथा वे सब विदेशी यवनों द्वारा आक्रान्त हो जाएँगे। मैं एक ऐसे विशाल साम्राज्य की कल्पना करता हूँ, जिसके अन्तर्गत सब गणों और जनपदों की स्वाधीन सत्ता कायम रहे। उनके अपने कानून हों, अपने चरित्र और व्यवहार हों। सम्राट् उनमें हस्तक्षेप न करे। विविध राज्यों की पौर जानपद-सभाएँ पूर्ववत् स्थापित रहें, और अपने-अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करती रहें। इससे जहाँ विविध जनपदों की स्वतन्त्र सत्ता कायम रहेगी, वहाँ सारा भारत एक सूत्र में संगठित भी हो जाएगा।'

'पर मुझे तो नन्दराज द्वारा किए गए मोरियगण के अपमान का प्रतिशोध करना है, आचार्य !

'राजनीति में किसी एक व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता, तात ! मैं तुम्हारे हृदय की ज्वाला को अनुभव करता हूँ। मुझे मालूम है कि अपनी माता का दासी-जीवन तुम्हारे हृदय में सदा शूल के समान चुभता रहता है। पर तुम्हें इस भावना पर विजय पानी होगी। बहुजनों के हित और कल्याण के लिए वैयक्तिक स्वार्थ और भावना को बलि देना पड़ता है, तात !'

चन्द्रगुप्त ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुप हो गया। कुछ देर बाद आचार्य विष्णुगुप्त ने फिर कहा—'अब तुम सब जाओ। कल से विष्णुशर्मा तुम सबके आचार्य होंगे। तुम उनको उसी तरह अपना गुरु मानना, जैसे कि आज तक तुम मुझे अपना गुरु मानते रहे हो। चन्द्रगुप्त ! तुम ठहर जाओ, मुझे तुमसे एकान्त में कुछ बातें करनी हैं।'

अन्य सब शिष्यों के चले जाने पर आचार्य विष्णुगुप्त ने चन्द्रगुप्त से कहा—'तात ! तुम क्या मेरे साथ मगध चल सकोगे? तुम पाटलिपुत्र को भलीभाँति जानते हो, शायद तुम मेरे लिए उपयोगी सिद्ध हो सको।'

'मुझे क्षमा करें, आचार्य ! मैं तक्षशिला में ही रहूँगा। सिकन्दर जब वाहीक देश पर आक्रमण करता हुआ तक्षशिला आएगा, तब मैं उससे भेंट करूँगा। शायद मैं उसे मगध पर आक्रमण करने के लिए निमन्त्रण दे सकूँ। नन्द सिकन्दर का मुकाबिला नहीं कर सकेगा। जब यवनराज द्वारा नन्द परास्त हो जाएगा, तब शायद मेरी आत्मा को शान्ति मिल सके। नन्द से बदला लेने का मुझे यही उपाय सबसे अधिक क्रियात्मक और सुगम प्रतीत होता है।'

'पर क्या तुम्हें यह समझ में नहीं आता कि यवनराज सिकन्दर का सम्पूर्ण भारत को विजय कर लेना इस देश के नर-नारियों के लिए कितना भयंकर होगा ? तुम्हें अपनी माता के दासी-जीवन से कितना उद्वेग होता है। पर उस दिन की तो कल्पना करो, जब इस देश के लाखों नर-नारी विदेशी यवनराज की अधीनता में दास्य-जीवन व्यतीत करेंगे।'

'मैं सब समझता हूँ, आचार्य ! पर नन्द के प्रति विद्वेष-भाव ने मेरी आँखों को अन्धा कर दिया है।'

'अच्छा, तात ! तुम यहीं रहो। तुम्हारे उद्दण्ड साहस और महत्वाकांक्षा का मैं आदर करता हूँ। शायद भविष्य में तुम मेरे उद्देश्य को पूर्ण करने में सहायक हो सको।'

आचार्य विष्णुगुप्त ने मगध-यात्रा के लिए अभिज्ञानमुद्रा प्राप्त कर ली। श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ चार मास तक्षशिला में रहकर अपना कार्य समाप्त कर चुका था। अपने सब पण्य को तक्षशिला के हट्ट में बेचकर उसने उस माल को खरीद लिया था, जो कपिश, बाल्हीक, बाख्त्री आदि पश्चिमी देशों से भारत में बिकने के लिए आया करता था। श्रेष्ठी धनदत्त को जब ज्ञात हुआ कि विष्णुगुप्त जैसा विश्वविख्यात आचार्य उसके सार्थ के साथ पाटलिपुत्र जाना चाहता है, तो उसने अपने को धन्य माना। उसने आचार्य विष्णुगुप्त की यात्रा का सब प्रबन्ध कर दिया। आचार्य ने अपने दो शिष्यों को भी मगध-यात्रा के लिए साथ ले लिया। इनके नाम थे निपुणक और शिवदत्त। दो दिन बाद श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ तक्षशिला से पूर्व की ओर चल पड़ा।

(१०)

उद्यानपुरी का पान्थागार

भारतवर्ष की पश्चिमी सीमा पर सुलेमान पर्वतमाला में एक मार्ग है, जिसे आजकल खैबर का दर्रा कहते हैं। इस दर्रे के पार कुभा (काबुल) नदी के दक्षिण में प्राचीन समय में एक नगरी थी, जिसका नाम उद्यानपुरी था। यह नगरहार जनपद की राजधानी थी, और कम्बोज, बाल्हीक आदि के यात्री भारत आते हुए यहाँ विश्राम किया करते थे। उद्यानपुरी की समृद्धि और वैभव उन सार्थों और यात्री-समूहों पर निर्भर करते थे, जो पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व की ओर निरन्तर आते-जाते रहते थे।

यही कारण है कि उद्यानपुरी में बहुत-से छोटे-बड़े पान्थागार बने हुए थे, जिनमें पथिकों के विश्राम, निवास और मनोरंजन की समुचित व्यवस्था थी।

उद्यानपुरी के पूर्वी महाद्वार के समीप एक बड़ा-सा पान्थागार था, जिसमें पचास के लगभग कमरे थे। एक दिन साँझ के समय तीन घुड़सवार इस पान्थागार के द्वार पर आए और उन्होंने उसके स्वामी को आवाज दी। भगरूप नाम का एक वृद्ध पुरुष हाथ जोड़कर उनके सम्मुख आ खड़ा हुआ, और विनीत स्वर में बोला—'क्या आज्ञा है, आर्य!'

'हमें तीन कमरे चाहिएँ, एकदम एकान्त और अन्य सब कमरों से पृथक्!'

'इस समय तो कोई भी कमरा खाली नहीं है, आर्य!'

'ये दस निष्क (सुवर्णमुद्रा) हाथ में लो और तुरन्त कमरों का प्रबन्ध करो। देखो, हमारे घोड़ों के लिए भी एक अच्छा-सा अस्तबल चाहिए।'

'अच्छा, आर्य! मैं प्रयत्न करता हूँ। आपके पधारने से मैं कृतार्थ हुआ।'

भगरूप अभी वापस नहीं लौटा था कि दो जटिल तापस भी उसी पान्थागार के द्वार पर आ पहुँचे। 'भगवान् भूतनाथ की जय हो, भगवान् अप्रतिहत तुम्हारा कल्याण करें' का नारा लगाकर वे पान्थागार के द्वार पर बैठ गए।

कुछ समय बाद भगरूप वापस आया और उन तीन घुड़सवारों को अपने साथ ले गया। कमरे दिखाकर उसने कहा—'मेरे पान्थागार के सबसे अच्छे कमरे ये ही हैं, आर्य! अन्य सब कमरों से अलग। रात-भर यहाँ निश्चिन्तता से विश्राम कीजिए। आपकी शय्याएँ तैयार हैं। शय्याओं के पास ही उत्तम मृद्वीका के घट भरे रखे हैं। नगरहार की मृद्वीका जगत्प्रसिद्ध है, आर्य! आपके देश में तो इस प्रकार की मृद्वीका सुलभ नहीं है। यहाँ के लोग तो पानी की जगह इसी को पीते हैं। कुछ समय बाद भोजन भी तैयार हो जाएगा। आप क्या पसन्द करेंगे, आर्य! शूकरमार्दव या अजा-मेघ का बलिशेष? यहाँ से थोड़ी दूर पर ही भगवती चण्डिका का मन्दिर है, जहाँ प्रतिदिन अजा की बलि दी जाती है। उसका ताजा माँस मैं प्रतिदिन पुरोहितजी से सस्ते मूल्य पर खरीद लाता हूँ।'

'तुम जाओ, हमें जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, स्वयं कहलवा देंगे।' कहकर उन घुड़सवारों ने अपने कमरों के द्वार बन्द कर दिए।

एक रात के लिए दस निष्क दे देनेवाले प्रतिष्ठित अतिथियों की ओर

से निश्चिन्त होकर भगरूप अपने पान्थागार के द्वार पर लौट आया। उसे देखकर उन जटिल तापसों ने कहा—'बच्चा! हमें भी रात को पड़ रहने के लिए कहीं जगह दे दो। हमें न कमरा चाहिए, न मृद्वीका। यहीं कहीं पड़े रहकर रात गुजार देंगे, भाई!'

'जाओ, जाओ, यह पान्थागार मुण्डों और जटिलों के लिए नहीं है।'

'भाई, हम न निष्क दे सकते हैं, न कार्षापण। पर तुम्हें ऐसा उपाय बता सकते हैं, जिससे तुम एक दिन में ही लक्षाधीश बन जाओ। हम लोग रमते जोगी हैं। सुदूर चम्पापुरी से चले आ रहे हैं, चारों धामों का दर्शन करते हुए। काशी, अयोध्या, गया, मथुरा सबके दर्शन कर आए हैं, भाई! मन में आया, अब नगरहार और कपिश भी घूम लें। वंक्षु नदी के पार भगवती ज्वाला का जो मन्दिर है, वहाँ तक जाना है। इस देश की सरदी असह्य है। नहीं तो यहीं कहीं वृक्ष के नीचे पड़कर रात गुजार देते। कहीं कोने में पड़ने की जगह दे दो, तो यह रात आराम से कट जाए! इसके बदले में तुम्हें ऐसी युक्ति बता देंगे, जिससे जमीन में गड़ा हुआ धन तुम्हें साफ-साफ दिखाई देने लगेगा।'

'तुम ऐसे नहीं मानते, कहो तो उद्यानपुरी के दुर्गपाल को सूचना दूँ। अभी उसके दण्डधर आएँगे, और तुम्हें पकड़कर बन्दीगृह में बन्द कर देंगे।'

'नाराज क्यों होते हो, भाई! तुम्हें विश्वास नहीं होता। मध्यदेश के जटिल तापसों के चमत्कारों को तुम क्या जानो।'

भगरूप की गृहिणी माया द्वार के पीछे खड़ी हुई यह सब सुन रही थी। वह तेजी से बाहर निकलकर आई और अपने पति को पीछे धकेलकर जटिल तापसों से बोली—'आप अन्दर पधारिए, महाराज! हमारा अहोभाग्य है, जो आप जैसे महापुरुषों ने हमारे पान्थागार को पवित्र किया है।'

'नहीं, नहीं, हम पहले तुम्हें अपना चमत्कार दिखाएँगे, माँ! सामने जो शमी का वृक्ष है, उसे देखती हो, माँ। उसके पास जाओ, और उस वृक्ष के उत्तर में दस कदम चलकर जमीन को खोद डालो। एक हाथ खोदने पर तुम्हें गड़ा धन दिखाई देगा। पूरे एक सौ निष्क तुम वहाँ पा जाओगी। यह रात का समय है, अधिक मत खोदना। किसी उपयुक्त अवसर पर एकान्त में उसी जगह पाँच हाथ और खोदना, तुम्हें एक ताम्र-कुम्भ मिलेगा, जो सुवर्ण-मुद्राओं से परिपूर्ण होगा। जाओ, भगरूप को साथ ले जाओ। सौ निष्क इसी समय खोद लाओ। समझ लेना, कि दो

जटिलों को पान्थागार के किसी कोने में पड़े रहने देने का शुल्क है।'

सौ निष्कों के प्रलोभन को भगरूप नहीं रोक सका। उसने एक कुदाल हाथ में लिया, और शमी वृक्ष के समीप की जमीन को खोदने लगा। जैसा जटिल तापस ने कहा था, पूरे एक सौ निष्क वहाँ गड़े हुए थे, मिट्टी और धूल में सने हुए। भगरूप चुपचाप उन्हें उठा लाया और माया देवी ने झपटकर उन्हें उसके हाथ से छीन लिया।

सुवर्ण-मुद्राएँ हाथ में आते ही माया जटिल तापसों की भक्ति और अभ्यर्थना में लग गई। सुन्दर आसन बिछाकर उसने कहा—'यहाँ विराजिए, महाराज! मैं अभी आपके लिए शय्या और भोजन की व्यवस्था करती हूँ।'

'हमें न शय्या चाहिए और न भोजन। हम रमते योगी हैं, तृण ही हमारी शय्या है, और कन्द-मूल ही हमारे भोजन हैं। वे हमारे पास हैं। हम यहीं द्वार के भीतर तृण बिछाकर पड़ रहेंगे। हाँ, यह लो भगवती गंगा का प्रसाद। यहाँ से सैकड़ों योजन दूर जब हम गंगा के तट पर विचर रहे थे, तो मायापुरी के समीप दक्ष के मन्दिर में एक बड़ा उत्सव हुआ था। उस मन्दिर में साक्षात् भगवान् प्रजापति विराजमान हैं। कौन सौभाग्यशाली है, जो उनका प्रसाद पा सके। लो, यह प्रसाद तुम खाओ।'

माया ने बड़ी श्रद्धा के साथ एक छोटे-से मोदक-खण्ड को हाथ में लिया, और उसे मुँह में रख लिया। इस पर जटिल तापस ने कहा—'देखो, भगवान् के प्रसाद को कभी अकेले नहीं खाया करते। उसे बाँटकर खाया जाता है। यह थोड़ा-सा प्रसाद और लो और इसे अपने उन अतिथियों को दे देना, जो तुम्हारे पान्थागार में सबसे दूर से चलकर आए हों। इसे न स्वयं खाना और न भगरूप को देना। यह प्रसाद तुम्हारे अतिथियों के लिए है, उन्हें न देकर स्वयं खाने से भारी पाप होगा।'

'जो आज्ञा, महाराज!' कहकर माया ने सिर झुका दिया।

अँधेरा होने पर जब भोजन का समय हुआ, तो माया की कन्या घुड़सवार अतिथियों के लिए भोजन लेकर गई। भगरूप ने अपने प्रतिष्ठित अतिथियों के लिए बड़े शौक से भोजन तैयार कराया था। उसके महानस में अनेक रसोइये काम करते थे। अनेक पक्वान्नपण्य, पक्वमाँसिक, औदनिक और आपूपिक विविध प्रकार के भोजन बनाने के लिए उसकी सेवा में नियुक्त थे। अनेक प्रकार के पक्वान्न, माँस, चावल और अपूप उन्होंने तैयार किए थे। अतिथियों को भोजन परोसने के लिए अनेक शीलरूपा दासियाँ थीं। पर एक रात के निवास के लिए दस सुवर्ण-निष्क फेंक

देनेवाले इन सम्पन्न अतिथियों को भोजन परोसने का काम भगरूप ने अपनी युवती कन्या के सुपुर्द किया था, जिसका चेहरा पके हुए सेव के समान लाल था, और जिसके सुनहरे बाल कटि के अधोभाग तक बिखरे हुए थे। अवसर पाकर माया ने जटिल तापस के दिए हुए मोदक-खण्ड को चूर-चूर कर इन अतिथियों के पक्वान्न में मिला दिया, ताकि जटिल तापसों के आदेश का पालन हो सके।

भगरूप की युवती कन्या जब भोजन लेकर अपने पान्थागार के प्रतिष्ठित अतिथियों की सेवा में उपस्थित हुई, तो वे किसी गम्भीर विचार में निमग्न थे। मृद्वीका के कुम्भ से चषक भर-भरकर दे अपनी थकान को मिटा रहे थे, और धीरे-धीरे किसी विषय पर परामर्श कर रहे थे। भोजन को एक ओर रख देने का आदेश देकर वे फिर बात-चीत में लग गए और भगरूप की कन्या तुरन्त वहाँ से वापस लौट आई।

सुबह होने पर भगरूप के पान्थागार में बड़ा कोलाहल मचा। उन तीन घुड़सवार अतिथियों में एक की मृत्यु हो गई थी और एक मूर्छित दशा में पड़ा था। उनके घोड़ों का कहीं पता न था। अश्वशाला का द्वार खुला हुआ था और उसमें से तीन घोड़े गायब थे। उसी समय उद्यानपुरी के दुर्गपाल को इस दुर्घटना की सूचना दी गई। दुर्गपाल के दण्डधरों ने आकर भगरूप के पान्थागार को घेर लिया। मृत अतिथि के शव को आशुमृतक परीक्षा के लिए चिकित्सक के पास भेज दिया गया। उसने शव की परीक्षा करके बताया, कि मृत व्यक्ति को विष दिया गया है। विष बहुत तीव्र था और उसके खाते ही आधे मुहूर्त में इस आदमी की मृत्यु हो गई थी। जो व्यक्ति अभी मूर्छित था, उसके इलाज के लिए विष-चिकित्सक को बुलाया गया। बड़े यत्न से उसने उसकी मूर्छा दूर की। तीन घुड़सवार अतिथियों में जो पूर्णतया स्वस्थ था, उसने रात भोजन नहीं किया था। उसका भोजन अभी वैसा ही रखा था। परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि उसके पक्वान्न में विष मिला हुआ है।

अपने योग-बल से जिन जटिल तापसों ने भगरूप और माया को शमी वृक्ष के समीप गड़े हुए सुवर्ण का पता बताया था, उनका अब कहीं पता न था। वे कब पान्थागार से उठकर चले गए, इस सम्बन्ध में किसी को कुछ भी जानकारी नहीं थी।

शायद पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं होगी, कि जो तीन अश्वारोही भगरूप के पान्थागार में ठहरे थे, उनमें से एक सेनापति सिंहनाद था जो गान्धारराज आम्भि की ओर से यवनराज सिकन्दर से भेंट

करने के लिए सुग्ध जा रहा था। उसके दोनों साथी भी गान्धार के राज-पुरुष थे, जिन्हें भागुरायण ने सिंहनाद के साथ जाने के लिए नियुक्त किया था। किसी गहन चिन्ता में निमग्न होने के कारण सिंहनाद ने भगरूप के महानस से आए हुए भोजन को छुआ तक भी नहीं था, और यही कारण है, जिससे कि वह केकय के गूढ़पुरुषों के आचार्य व्याडि की गहरी चाल से बच सकने में समर्थ रहा था। जटिल तापस का भेस रचकर जो दो व्यक्ति पान्थागार में आए थे, वे व्याडि के भेजे हुए सत्री (गुप्तचर) थे। वे शुरू से ही सिंहनाद का पीछा कर रहे थे। उन्हें यह आदेश था कि जिस तरह भी सम्भव हो, आम्भि के इन दूतों को सुग्ध न पहुँचने दिया जाए। आचार्य इन्द्रदत्त ने गुप्तचरों द्वारा मालूम कर लिया था, कि आम्भि केकयराज के विरुद्ध सिकन्दर की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। इसी लिए व्याडि ने अपने सत्रियों को उनके पीछे लगा दिया था। भगरूप के पान्थागार में जो काण्ड हुआ, उसके कारण सिंहनाद को तीन दिन उद्यानपुरी में रुकना पड़ गया। उसके एक साथी की मृत्यु हो गई थी, और दूसरे को स्वस्थ होने में तीन दिन लग गए थे। सिंहनाद के इस दूसरे साथी का नाम संजय था, जो गान्धार के राजकुल का था। उसे सिंहनाद के साथ इस उद्देश्य से भेजा गया था, क्योंकि यवनराज से भेंट करने के लिए राजकुल के किसी व्यक्ति को भी साथ में होना चाहिए।

(११)

सिंहनाद का विद्रोह

जब तक सिंहनाद और संजय सुग्ध पहुँचे, सिकन्दर वहाँ से आगे बढ़ चुका था। अश्वक (अस्सप) जनपद को जीतकर उसकी सेनाएँ गौरी नदी को पार कर अश्वाटक (अस्सकेन) जनपद पहुँच गई थीं। गान्धारराज आम्भि के राजदूत उसी मार्ग पर आगे बढ़ते गए, जिससे सिकन्दर की सेनाएँ गई थीं। मार्ग में उन्होंने देखा, भूमिसात् हुई अट्टालिकाओं को, ध्वंस हुई नगरियों को, उजड़े हुए खेतों को और करुण रुदन करती हुई नारियों को। अनेक स्थानों पर उन्होंने ऐसे मन्दिरों को देखा, जिनकी मूर्तियाँ टूटी पड़ी थीं और जिनकी ध्वजाएँ फाड़कर फेंक दी गई थीं। ध्वंस के इस भयंकर दृश्य को देखकर सिंहनाद विचलित हो गया। उसने सोचा, यवनराज का यह आक्रमण कितना वीभत्स है! वाहीक देश के आर्य राजा जब दिग्विजय

के लिए निकलते हैं, तो अन्य जनपदों और राजकुलों के साथ वे ऐसा बरताव नहीं करते। क्या सिकन्दर वाहीक देश को भी इसी प्रकार से ध्वंस करेगा? यह ठीक है कि जो राजा स्वयं उसके सम्मुख सिर झुका देता है, उसे वह अभयदान दे देता है। पर उसकी सेना को सिकन्दर की ओर से लड़ना पड़ता है। क्या जब सिकन्दर पुष्करावती, अभिसार और केकय पर आक्रमण करेगा, तो इन आर्य जनपदों का भी इसी प्रकार विनाश होगा? गान्धारराज आम्भि की सेनाएँ भी तब सिकन्दर के साथ होंगी। क्या वे भी इस रक्तपात और ध्वंस में भाग लेंगी। आर्य आर्य का घात करेगा, आर्य सैनिक आर्य नगरियों को भूमिसात् करेंगे। क्या यह उचित होगा?

इसी प्रकार विचार करता हुआ सिंहनाद गौरी नदी के पार मस्सग के समीप पहुँच गया। मस्सग अश्वाटक जनपद की राजधानी था और सिकन्दर की सेनाओं ने उसका घेरा डाल रखा था। दुर्ग के बाहर कोई सात मील की दूरी पर एक विशाल शिविर को देखकर सिंहनाद और संजय वहाँ रुक गए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस शिविर के सब सैनिक वाहीक देश के निवासी हैं। उनकी भाषा को सिंहनाद भलीभाँति समझता था। प्रहरी के रोकने पर उसने कहा, "मैं शिविर के सेनाध्यक्ष से भेंट करना चाहता हूँ।" गौरी नदी के तट पर स्थित इस वाहीक शिविर का सेनाध्यक्ष चण्डकर्मा था, जो एक विकट योद्धा था। इस विदेश में अपने देश के दो नागरिकों के आगमन का समाचार सुनकर उसने प्रसन्नता प्रकट की। सिंहनाद और संजय को प्रहरी अपने साथ ले गया और चण्डकर्मा ने उनका स्वागत किया। नवागन्तुकों का परिचय प्राप्त कर चण्डकर्मा ने उनसे पूछा—

'कहिए सेनापति! आप किस लिए यहाँ पधारे हैं?'

'यवनराज सिकन्दर से भेंट करने के लिए। गान्धारराज आम्भि ने अधीनता स्वीकार करने का सन्देश देकर हमें यवनराज की सेवा में भेजा है।'

'क्या महाराज आम्भि बिना लड़े ही यवनराज के सामने हथियार डाल देंगे?'

'हाँ, उनका यही निर्णय है।'

'यह बात तो बहुत अनुचित होगी, सेनापति! क्या आर्य क्षत्रियों के लिए यह गौरवास्पद होगा कि वे इस प्रकार शत्रु के सम्मुख घुटने टेक दें। भारत के क्षत्रिय तो सदा यह आदर्श अपने सम्मुख रखते रहे हैं कि यदि युद्ध में विजयी हुए तो राजसुख का उपभोग करेंगे और यदि लड़ते-लड़ते प्राण चले गए, तो स्वर्ग का सुख पाएँगे। क्या महाराज आम्भि क्षत्रियों के

इस आदर्श को भूल गए हैं ?'

'आपके ये वाहीक सैनिक यहाँ किस प्रकार आए, सेनापति !'

'सुग्ध के उत्तर-पूर्व का यह देश भी आर्यों की ही भूमि है। यहाँ के अश्वक और अश्वाटक जनपदों में आर्यों का ही निवास है। जब हमने देखा कि वाहीक में सब जगह शान्ति है और अपनी वीरता को प्रदर्शित करने का हमें वहाँ उपयुक्त अवसर नहीं मिलता, तो मैंने सैनिकों की एक 'श्रेणि' संगठित की, और नौकरी की तलाश में हम विदेश के लिए चल पड़े। अश्वाटक जनपद के उत्तर में अनेक आटविक जातियों का निवास है, जो सदा इस देश पर आक्रमण करती रहती हैं। यहाँ के राजा ने बड़े उत्साह के साथ हमारा स्वागत किया। उसने हमें भरपूर वेतन दिया और हमें अश्वाटक की उत्तरी सीमा की रक्षा करने के लिए नियत कर दिया। मेरी सैनिक श्रेणि के सैनिकों की संख्या पूरी दस हजार थी। मेरे तीन हजार सैनिक आटविकों से युद्ध करते हुए काम आए। अब हम सात हजार सैनिक बच रहे हैं, जो यहाँ शिविर डाले पड़े हैं।'

'मस्सग की रक्षा के लिए आप दुर्ग में क्यों नहीं रहे ?'

'मैं आचार्य भागुरि का शिष्य हूँ, सेनापति ! तक्षशिला में मैंने आचार्य भागुरि के चरणों में बैठकर औशनस नीति की शिक्षा पाई है। शस्त्रयुद्ध की अपेक्षा कई बार मन्त्रयुद्ध अधिक सफल होता है, सेनापति !'

'तो क्या यहाँ रहकर आप मन्त्रयुद्ध में व्यापृत हैं ?'

'मैं आप पर अविश्वास नहीं करूँगा। आप वाहीक देश के निवासी हैं, जाति से आर्य हैं। इस सुदूर विदेश में आर्य आर्य के साथ विश्वासघात करेगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।'

'हाँ, आप हम पर पूरा विश्वास कर सकते हैं।'

'तो फिर सुनिए। हमारा विचार है कि हम बाहर की ओर से यवन सेना पर आक्रमण कर दें। जब सिकन्दर ने मस्सग को घेर लिया, तो मैंने सिकन्दर के पास सन्देश भेजा कि हम वाहीक देश के सैनिक यवनराज और अश्वाटक के युद्ध में तटस्थ रहना चाहते हैं। यदि हमें अनुमति मिल जाए, तो हम शान्तिपूर्वक दुर्ग से बाहर चले जाएँगे और गौरी के तट पर शिविर डालकर पड़े रहेंगे। सिकन्दर ने हमारी इस अभ्यर्थना को स्वीकार कर लिया।'

'मैं भी आपके साथ सिकन्दर की सेना पर आक्रमण करूँगा। मैं गान्धार का सेनापति रह चुका हूँ, और मुझे युद्ध का अच्छा अनुभव है।' सिंहनाद ने कहा।

'मुझे आपसे यही आशा थी, सेनापति ! आप जैसे कुशल सेनापति की अधीनता में युद्ध कर मैं सचमुच गौरवान्वित हूँगा।'

'यह मत भूलो, सिंहनाद ! कि तुम इस समय महाराज आम्भि के राजदूत हो।' संजय ने क्रोध से कहा।

'अब तक मैं आम्भि का राजदूत था, पर इस क्षण से मैं चण्डकर्मा की सैनिक-श्रेणि का सेनापति हूँ।'

'तो क्या तुम महाराज आम्भि के आदेश का उल्लंघन करोगे ? तुम विद्रोही हो।'

'विद्रोही मैं नहीं हूँ। विद्रोही है आम्भि, जो सम्पूर्ण आर्य जाति के विरुद्ध विद्रोह कर रहा है।'

'याद रखो कि मैं इस समय महाराज आम्भि का प्रतिनिधि हूँ। मैं उनकी ओर से तुम्हें राजद्रोह के लिए दण्ड दूँगा।'

'तुम मुझे दण्ड दोगे, संजय ! कैसी मजाक की बात है। राजकुल की प्रतिष्ठा उसके राज्य में ही होती है। गान्धार देश से सैकड़ों योजन दूर गौरी नदी के तट पर मैं केवल इसलिए तुम्हारा आदर नहीं कर सकता, क्योंकि तुम राजकुल में उत्पन्न हुए हो। यहाँ उसकी प्रतिष्ठा होगी, जिसकी बाहुओं में बल है। आओ, मैं तुम्हें द्वन्द्व-युद्ध के लिए निमन्त्रित करता हूँ।'

'अच्छा, तो फिर द्वन्द्व-युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।'

सिंहनाद और संजय दोनों ने अपनी-अपनी तलवारें खींच लीं। वाहीक सैनिक उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए। चण्डकर्मा से इशारा पाते ही सिंहनाद और संजय ने द्वन्द्व-युद्ध शुरू कर दिया। तलवार से तलवार टकराने लगी और उनकी झनखनाहट से गौरी नदी की वह घाटी गूँज उठी। कुछ क्षणों के युद्ध के बाद संजय घायल होकर नीचे गिर पड़ा और सिंहनाद ने अपना पैर उसकी छाती पर रख दिया। द्वन्द्व-युद्ध समाप्त हो गया। सिंहनाद की विजय हुई।

'द्वन्द्व-युद्ध ने इस बात का फैसला कर दिया है, संजय ! कि असल में विद्रोही कौन है, तुम या मैं ? कहो, अब तुम्हारा क्या विचार है ?' सिंहनाद ने प्रश्न किया।

'मैं उस कार्य को पूर्ण करूँगा, जिसके लिए महाराज आम्भि ने हमें भेजा था। मैं अपने राजा के प्रति कभी विद्रोह नहीं कर सकता।'

'यदि तुम राजा के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकते, तो मैं वाहीक देश और आर्य-जाति के प्रति विद्रोही नहीं बन सकता। क्या इसे सिकन्दर के पास जाने देना उचित होगा, चण्डकर्मा ?'

'संजय ने हमारी बातचीत सुन ली है। वह सिकन्दर को सूचित कर देगा कि हम पीछे की ओर से उसकी सेना पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे हैं।' चण्डकर्मा ने कहा।

'तो क्या इसे यहीं समाप्त कर दिया जाए?'

'वध्य पशु के समान इसकी हत्या करने से क्या लाभ होगा, सेनापति! हमारे संकल्प की बात सिकन्दर से छिपी नहीं रहेगी। उसके गूढ़पुरुष सब जगह विद्यमान हैं। सिकन्दर शायद अब तक जान भी गया होगा कि हम लोगों का क्या इरादा है। यदि हमने उस पर पीछे की ओर से आक्रमण कर भी दिया, तो भी हम उसे परास्त नहीं कर सकेंगे। उसकी सेना विशाल है, और युद्धनीति में भी वह प्रवीण है। हम क्षत्रियों का तो पेशा ही युद्ध करना है। शत्रु से लड़ते हुए अपने प्राणों की आहुति दे देने की अपेक्षा अधिक गौरव की कोई बात हमारे लिए नहीं है। हमें आज इस गौरव को प्राप्त करना है। उससे पूर्व इसकी हत्या करके पाप के भागी क्यों बनें?'

'पर तुम्हारे साथ तो स्त्रियाँ भी हैं। युद्ध के समय इनका क्या होगा?'

'वाहीक देश के आर्यों की स्त्रियाँ भी युद्ध में पुरुषों की अपेक्षा कम वीरता प्रदर्शित नहीं करतीं। जब मेरे सब सैनिक यवनों से लड़ते-लड़ते वीर गति प्राप्त कर लेंगे, तो ये स्त्रियाँ भी शस्त्र हाथ में लेकर युद्ध के मैदान में उतर आएँगी। जब तक वाहीक देश की एक महिला भी जीवित रहेगी, यवन लोग हमारे इस शिविर पर अधिकार नहीं कर सकेंगे।'

'तो रणचण्डी के इस नृत्य में आज मैं भी भाग लूँगा। तुम शायद नहीं जानते, चण्डकर्मा! तक्षशिला में एक रूपाजीवा के प्रेम में फँसकर मैं अपने कर्तव्य से विमुख हो गया था। अपनी उस निर्बलता की याद मेरे हृदय में निरन्तर ग्लानि उत्पन्न करती रहती है। मैं आज यवनों के रक्त से अपने हृदय को निर्मल करूँगा।'

'तो इस देशद्रोही का क्या किया जाए, सेनापति!'

'इसे सिकन्दर के पास जाने दो। आम्भि के मन में यह बात न रह जाए कि उसका सन्देश यवनराज के पास तक न पहुँच सका। हमारा आज का यह बलिदान व्यर्थ नहीं जाएगा। यवनों ने पार्स साम्राज्य का ध्वंस कर दिया है। पर आर्यभूमि पर वे अपना अधिकार कायम नहीं रख सकेंगे। धर्म, जाति और मातृभूमि का जो प्रेम मेरे जैसे कामुक के हृदय में बलिदान की भावना को जागृत कर सकता है, वह भारत के आर्यों में नवजीवन का संचार किए बिना नहीं रहेगा।'

घायल संजय उठकर चण्डकर्मा के शिविर से चल पड़ा और मस्सग जा

पहुँचा। मस्सग नगरी के चारों ओर सिकन्दर की यवन सेना ने घेरा डाल रखा था। सैनिक लोग सब ओर दूर-दूर तक फैले हुए थे। वाहीक देश के एक अश्वारोही को अपनी ओर आते हुए देखकर एक यवन प्रहरी ने चिल्लाकर कहा—

'घोड़ा रोक दो। नीचे उतरकर तुरन्त वहीं खड़े हो जाओ, जहाँ अब हो। एक पग भी आगे न बढ़ो।'

संजय ने प्रहरी के आदेश का पालन किया। प्रहरी उसे पकड़कर दण्डधर के पास ले गया। 'तुम कौन हो, और यहाँ किस लिए आए हो?' दण्डधर ने प्रश्न किया।

'मेरा नाम संजय है, और मैं वाहीक देश के गान्धार जनपद के महाराज आम्भि का पितृव्य-पुत्र हूँ। महाराज का एक सन्देश लेकर यवनराज की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।'

'वह सन्देश क्या है?'

'मुझे आदेश है, कि उस सन्देश को केवल यवनराज से निवेदन करूँ।'

संजय को चार प्रहरियों के सुपुर्द कर दण्डधर वहाँ से चला गया। कुछ देर बाद वापस लौटकर उसने संजय से कहा—'तुम्हें मालूम है, यवनराज से किस प्रकार मिला जाता है?'

'गान्धार का लोकाचार मुझे ज्ञात है, पर यवन देश की प्रथा का मुझे कोई ज्ञान नहीं है।'

'तो फिर देखो, ध्यान से सुनो। यवनराज के सम्मुख तुम्हें घुटने के बल बैठना होगा (बैठकर दिखाकर) समझे, इस ढंग से। फिर सात बार अपने दाएँ हाथ से भूमि को स्पर्श करना होगा। तब तुम यवनराज से बात कर सकोगे, सिर झुकाकर और हाथ को मस्तक से छूते हुए।'

'यवन देश के लोकाचार को मैंने भलीभाँति समझ लिया है, सेनापति!'

'तो अब तुम आओ और मेरे साथ-साथ चलो।'

विशाल शिविर को पार करता हुआ संजय उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ यवनराज सिकन्दर एक रत्नजटित आसन पर विराजमान था। दण्डधर द्वारा निर्दिष्ट रीति से उसने सिकन्दर की अभ्यर्थना की।

'कहो दूत! तुम क्या सन्देश लेकर आए हो?'

'महाराज! गान्धारराज आम्भि ने मुझे आदेश दिया है कि मैं यवनराज की अभ्यर्थना करके, नतमस्तक हो, प्रणाम निवेदन कर और हाथ जोड़कर उनसे यह प्रार्थना करूँ कि वे गान्धार को अपनी प्रजारूप में

स्वीकार करें। सिन्ध से वितस्ता तक फैला हुआ यह गान्धार जनपद यवनराज की अधीनता को स्वीकार करता है।'

'इस सन्देश की सत्यता का प्रमाण ?'

'गान्धारराज ने अपनी मुद्रा से अंकित यह मुकुटमणि यवनराज के चरणों में अर्पित करने के लिए मेरे साथ भेजी है। यवनराज इसे अपने चरणों में स्थान दें।'

आम्भि की मुकुटमणि को अपने पैरों से उलटते-पुलटते हुए सिकन्दर ने कहा—'क्या अकेले तुमको ही आम्भि ने दूत बनाकर भेजा है ?'

'नहीं, महाराज ! गान्धार के दो और राजपुरुष मेरे साथ थे। एक उद्यानपुरी में मारा गया। केकयराज पोरु के गूढ़पुरुषों ने विष द्वारा उसका घात कर दिया। दूसरा राजपुरुष गौरी नदी के तट तक मेरे साथ आया था। चण्डकर्मा से मिलकर वह विद्रोही हो गया, महाराज !'

'मैं सब कुछ सुन चुका हूँ, तुम उसकी चिन्ता न करो।'

'तो यवनराज की क्या आज्ञा है ? आम्भि उनके आदेश की प्रतीक्षा करते होंगे।'

'यवनराज का आदेश आम्भि के पास पहुँच जाएगा। पर तुम्हें यवन सेना के साथ रहना होगा। क्या तुम शस्त्र-विद्या में निपुण हो ?'

'यह आप परीक्षा कर देख सकते हैं, महाराज !'

सिकन्दर का इशारा पाकर दण्डधर संजय को अपने साथ ले गया।

जिस समय संजय सिकन्दर के सामने जमीन पर बैठकर दाएं हाथ से भूमि को स्पर्श कर रहा था, यवन सेनाओं ने चण्डकर्मा के शिविर पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था। बीस हजार से भी अधिक यवन सैनिक एक साथ वाहीक सैनिकों पर टूट पड़े। चण्डकर्मा ने डटकर उनका मुकाबिला किया। वाहीक सैनिक भलीभाँति समझते थे कि वे यवनों को परास्त नहीं कर सकेंगे। पर उनके हृदयों में उग्र देशभक्ति थी और साथ ही था प्रचण्ड साहस। वे उन्मत्त होकर, सिर पर कफन बाँधकर अपने जीवन की आहुति देने के लिए यवन सेना के बीच में घुस पड़े। सिंहनाद की काल-भैरव-सी मूर्ति इस युद्ध में देखने योग्य थी। वह दोनों हाथों से तलवार चलाता हुआ गाजर-मूली की तरह यवन सैनिकों को काट रहा था। साँझ तक यह लड़ाई जारी रही। जब तक एक भी वाहीक वीर जीवित रहा, यवन सेना गौरी नदी के तट पर स्थित उस भारतीय शिविर में प्रविष्ट नहीं हो सकी। जब सब वाहीक सैनिक वीरगति को प्राप्त हो गए, तो यवन सेना शिविर की ओर बढ़ी। पर उन्हें रोकने के लिए वाहीक वीराङ्गनाएँ शस्त्र

लेकर तैयार थीं, साक्षात् चण्डी और दुर्गा के समान। उनकी वीरता और युद्ध-कुशलता को देखकर यवन लोग आश्चर्यचकित रह गए। पर अन्त में उनकी विजय हुई। टिड्डी दल की तरह से आगे बढ़ती हुई यवन सेनाओं के सम्मुख देर तक टिक सकना इन वीराङ्गनाओं के लिए सम्भव नहीं था। जब सब वाहीक महिलाएँ युद्ध करते-करते स्वर्ग को सिधार गईं, तब यवनों ने चण्डकर्मा के शिविर पर कब्जा कर लिया। वहाँ अब श्मशान की-सी शान्ति छाई हुई थी।

अगले दिन प्रात: सिकन्दर गौरी नदी के तट पर उस स्थान पर आया, जहाँ वाहीक वीरों ने अपना शिविर स्थापित किया था। वहाँ आकर उसने देवताओं को बलि अर्पित की, और साथ ही यह आदेश दिया कि वाहीक वीरों की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए एक स्मृति-स्तम्भ का निर्माण किया जाए। कहते हैं, कि यह स्तम्भ आठ सौ वर्ष तक कायम रहा। लोग दूर-दूर से आकर इसका दर्शन करते थे और इस पर पत्र-पुष्प चढ़ाया करते थे। अश्वक और अश्वाटक लोगों के लिए वह एक तीर्थ बन गया था। कपिश, बाल्हीक और कम्बोज के यात्री जब उसके समीप से गुजरते थे, तो वहाँ अवश्य रुका करते थे। कितने ही भाट और चारण जब उमंग में भरकर सिंहनाद, चण्डकर्मा और वाहीक देश के वीर सैनिकों और वीराङ्गनाओं की गाथा का गान शुरू करते थे, तो श्रोताओं की आँखों से अश्रुओं की धारा बह निकलती थी।

(१२)

विष्णुगुप्त और इन्द्रदत्त

आचार्य विष्णुगुप्त श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ तक्षशिला से चले। जिस युग की कथा हम लिख रहे हैं, दूर देश के यात्री प्राय: सार्थ के साथ रहकर ही यात्रा किया करते थे। धनदत्त के सार्थ में आचार्य विष्णुगुप्त को सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थीं। प्रतिदिन पाँच-सात योजन की यात्रा कर साँझ के समय सार्थवाह लोग डेरा डाल देते थे। जहाँ यह सार्थ रात को विश्राम करने के लिए रुकता था, एक शहर-सा बस जाता था। सुबह होने से पहले ही सामान से भरी हुई बैलगाड़ियाँ आगे चल पड़ती थीं। तीसरे पहर तक ये मंजिल पर जा पहुंचती थीं, और वहाँ सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्रों से बने हुए बड़े-बड़े खेमे खड़े कर दिए जाते थे। पाचक

लोग भोजन तैयार करने में जुट जाते थे। सब प्रकार की भोजन सामग्री बैलगाड़ियों पर रहती थी। श्रेष्ठी धनदत्त और उसके साथी व्यापारियों के लिए शय्या आदि भी साथ-साथ चलती थीं। जो भोजन सामग्री समाप्त हो जाती, उसे मार्ग के नगरों, पत्तनों व ग्रामों से खरीद लिया जाता। पण्य से भरी हुई गाड़ियाँ सुबह होने के बाद प्रस्थान करतीं, और सशस्त्र सैनिक उनके साथ-साथ चला करते। सार्थवाह व्यापारी घोड़ों और हाथियों पर यात्रा करते। आचार्य विष्णुगुप्त जैसे प्रतिष्ठित यात्री के लिए एक हाथी का प्रबन्ध कर दिया गया था, जिस पर वे अपने दोनों शिष्यों के साथ बैठकर यात्रा कर रहे थे।

कुछ दिन की यात्रा के बाद धनदत्त का सार्थ केकय देश की राजधानी राजगृह पहुँच गया। अमात्य इन्द्रदत्त को आचार्य विष्णुगुप्त के आने की सूचना पहले ही मिल चुकी थी। ये विष्णुगुप्त के सहपाठियों में से थे और तक्षशिला के विश्वविख्यात आचार्यों के पास कई वर्ष तक रहकर शिक्षा पा चुके थे। राजगृह से बाहर दो योजन जाकर इन्द्रदत्त ने विष्णुगुप्त का स्वागत किया। वे उन्हें अपने साथ अपने घर ले गए। आतिथ्य और विश्राम के बाद दोनों सहपाठियों में बातचीत शुरू हुई।

'आपकी यात्रा के प्रयोज़न के विषय में मैं सुन चुका हूँ, आचार्य !' इन्द्रदत्त ने कहा।

'तुम्हारे गूढ़पुरुषों से क्या छिपा रह सकता है, इन्द्रदत्त ! औशनस नीति के अनुसरण में तुमने कमाल कर दिया है। शुक और सारिकाएँ जो बातें करती हैं, वे भी तुमसे छिपी नहीं रहतीं। फिर मैंने तो अपने उद्देश्य का अपनी शिष्यमण्डली के सम्मुख प्रवचन भी किया था। वह भला तुमसे कभी छिपा रह सकता था ?'

'आपका उद्देश्य सचमुच महान् है, आचार्य ! सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में संगठित किए बिना यवनराज के आक्रमण से इस आर्यभूमि की रक्षा सचमुच नहीं की जा सकती। पर क्या वाहीक देश की वर्तमान परिस्थिति में यह सम्भव है ? आपको ज्ञात ही होगा कि आम्भि के दूत सिकन्दर से भेंट करने के लिए सुग्ध गए हैं, उसे वाहीक पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित करने के उद्देश्य से। जब यवनराज इस आर्यभूमि में प्रवेश करेगा, तो आम्भि की सेनाएँ उसके साथ होंगी। आर्य आर्य के साथ युद्ध करेगा, चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के लिए नहीं, अपितु आर्यभूमि पर यवनराज का आधिपत्य स्थापित करने के लिए। यह कितनी भयंकर बात होगी, आचार्य ! आपस के कलह से यह आर्यभूमि नष्ट हो जाएगी।'

'आम्भि वज्रमूर्ख है। उसके हृदय में केकयराज से बदला लेने की तीव्र अग्नि धधक रही है। वह विदेशी और विधर्मी यवनराज की अधीनता स्वीकृत करने के लिए तैयार है, पर अपने बन्धु केकयराज का चक्रवर्ती पद प्राप्त करना उसे सह्य नहीं है। जिस प्रकार एक ही कुल के कौरव और पाण्डव आपस में लड़कर नष्ट हो गए, वैसे ही महाराज भरत के कुल की ये दोनों शाखाएँ आपस में लड़कर नष्ट हो जाएँगी, और सारे वाहीक देश पर यवनों का शासन स्थापित हो जाएगा।'

'तो फिर इसका क्या उपाय है, आचार्य !'

'हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस आर्यभूमि में एक सार्वभौम शासन की स्थापना। इसके बिना यवनों को परास्त कर सकना सम्भव नहीं होगा, इन्द्रदत्त !'

'पर क्या यह सम्भव है ?'

'सर्वथा सम्भव है। मगध की जो राजशक्ति पूर्वी समुद्र से यमुना तक के विशाल देश को अपनी अधीनता में ला चुकी है, वह वाहीक देश को भी अपनी अधीनता में लाने में समर्थ होगी।'

'पर इससे तो वाहीक देश के राजकुलों का अन्त हो जाएगा। इस देश के निवासी अनादि काल से जिस स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे हैं, वह नष्ट हो जाएगी। मगधराज नन्द ने मध्यदेश के कितने ही राजकुलों को जड़ से उखाड़ दिया है। वह 'सर्वक्षत्रान्तकृत्' है। पञ्चाल, काशी, कुरु आदि के सब राजकुल उसने नष्ट कर दिए हैं। वह वाहीक देश में भी यही सब करेगा। क्या आप इसे उचित समझते हैं, आचार्य ?'

'मगधराज नन्द ने आर्य मर्यादा का उल्लंघन किया है। उसकी राजनीति धर्मविरुद्ध है। पर उसे मर्यादा में स्थापित कर सकना असम्भव नहीं है। मगध का प्रधानमन्त्री शकटार मेरा सहपाठी है। मैं उसका बहुत आदर करता हूँ। पाटलिपुत्र जाकर मैं उससे मिलूँगा। यदि शकटार की प्रेरणा से मगधराज अपनी नीति में परिवर्तन कर सके, तो यह बहुत उत्तम होगा। मगध के अतिरिक्त इस आर्यभूमि में अन्य कोई जनपद अब ऐसा नहीं है, जो भारत को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित कर सके; और यदि भारत में एक शासन स्थापित न हुआ तो यवन लोग इसे अवश्य पदाक्रान्त कर लेंगे। उस समय की कल्पना करके देखो, इन्द्रदत्त ! जब यह पवित्र भूमि म्लेच्छों द्वारा आक्रान्त होगी। हमारी नगरियाँ ध्वंस कर दी जाएँगी, और हमारी देवमूर्तियों का अपमान किया जाएगा। तुम्हीं बताओ, इन्द्रदत्त ! इस घोर संकट के निवारण का अन्य क्या उपाय है ?'

'वाहीक देश के लोग वीर हैं, अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वे जान पर खेल सकते हैं। सिकन्दर के लिए यह सुगम नहीं होगा कि वह इन जनपदों को जीत सके। केवल राजतन्त्र जनपद ही नहीं; यहाँ के गणराज्य भी शत्रु का मुकाबिला करने में कोई कसर नहीं उठा रखेंगे।

'यवन देश के जनपद भी ऐसे ही वीर थे, इन्द्रदत्त! स्पार्टा, एथन्स आदि यवन जनपदों ने कई बार पार्स सम्राट् के छक्के छुड़ाए; पर अन्त में वे सिकन्दर के पिता फिलिप के हाथों परास्त हो गए। वाहीक देश की भी यही गति होगी। इस युग में छोटे-छोटे जनपदों के लिए अपनी स्वतन्त्र सत्ता को कायम रख सकना सम्भव नहीं रह गया है, इन्द्रदत्त!'

'पर विशाल पार्स साम्राज्य भी तो सिकन्दर के मुकाबले में नहीं खड़ा रह सका, आचार्य!'

'क्योंकि वह अन्दर से बिलकुल खोखला हो गया था। आमोद-प्रमोद, धन-वैभव और नाच-रंग ने पार्स साम्राज्य को सर्वथा निःशक्त कर दिया था। जब किसी राज्य में धन-वैभव बहुत बढ़ जाता है, और उसके राजकुल, राजपुरुष और नागरिक भोग-विलास में फँस जाते हैं, तो उसकी यही दशा होती है।'

'पर मागध साम्राज्य की भी तो अब यही दशा हो गई है, आचार्य!'

'नहीं, जो मागध सम्राट् महापद्म नन्द राजकुलों और क्षत्रियों को नष्ट करता हुआ अपनी सेनाओं को सुदूर कर्नाटक और सौराष्ट्र तक ले जा सकता है, उसे मैं निर्वीर्य नहीं कहूँगा।'

'पर मगधराज नन्द शूद्र है, अधार्मिक है, आर्य-मर्यादा का उल्लंघन करने वाला है।'

'वह शूद्र है, इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। शुद्ध आर्य रक्त वाहीक देश के अतिरिक्त अन्यत्र रह ही कहाँ गया है? प्राच्य देशों के सभी क्षत्रिय व्रात्य और वर्णसंकर हैं, उनमें शूद्र रक्त का सम्मिश्रण हो गया है। जब जातियाँ अपना विस्तार करती हैं, नए-नए देशों को विजय करती हैं, उनमें जाकर आबाद होती हैं, तो यही होता है। पर हाँ, नन्द को आर्य-मर्यादा में स्थापित करना होगा। आर्य लोग राजकुलों और क्षत्रियवर्ग का उच्छेद नहीं किया करते। वे उन्हें कायम रखते हैं, और उनका सहयोग प्राप्त करते हैं। पर मगध की राजशक्ति का प्रयोग किए बिना इस देश को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित कर सकना सम्भव नहीं है।'

'क्या यह कार्य केकय को केन्द्र बनाकर सम्पन्न नहीं किया जा सकता, आचार्य!'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! केकय के पास केवल 'मौल' सेना ही है। आटविक और भृत सेनाओं का उसके पास सर्वथा अभाव है। मगध की सैन्य शक्ति का मुकाबिला केकय नहीं कर सकता।'

'पर आचार्य ! एक शूद्र राजा की अधीनता स्वीकार करना क्या वाहीक के आर्य राजकुलों के लिए गौरव की बात होगी ?'

'एक महान् आदर्श तक पहुँचने के लिए और इस आर्यभूमि को यवनों द्वारा पदाक्रान्त होने से बचाने के लिए हमें व्यक्तियों के गर्व की बलि देनी होगी। देखो, इन्द्रदत्त ! आम्भि यही भूल कर रहा है। वह अपने झूठे गौरव की रक्षा के लिए आर्यों की सत्ता को ही खतरे में डाल रहा है।'

'पर आचार्य ! नन्द को केन्द्र बनाकर आप अपने उद्देश्य में सफल होंगे, मुझे इसमें सन्देह है।'

'मोरियगण के कुमार चन्द्रगुप्त ने भी यही बात कही थी। वह युवक बड़ा प्रतिभाशाली है। उसमें उद्दण्ड साहस है। नन्द के अन्तःपुर के जीवन से भी उसे अच्छा परिचय है। पर अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं किसी एक व्यक्ति को कोई महत्व नहीं देता। उन्नति का मूल बलिदान है, इस बात को मत भूलो, इन्द्रदत्त ! यदि मगध की राज-शक्ति द्वारा भारत को एक सूत्र में संगठित करने के कार्य में नन्द सहायक न हुआ, तो उसकी बलि दे देने में मुझे जरा भी संकोच नहीं होगा।'

'यदि नन्द ने आपका साथ न दिया, तो क्या आप केकयराज पोरु को मगध के राजसिंहासन पर बिठाकर सम्पूर्ण आर्यभूमि को एकच्छत्र शासन में लाने की बात पर विचार करेंगे, आचार्य ! पोरु में शुद्ध आर्य रक्त है, वह अनुपम वीर है, और आर्य-मर्यादा का पालन करता है। यदि वह सम्पूर्ण भारत का एकच्छत्र सम्राट् बने, तो कितना उत्तम होगा, आचार्य ! तब मैं पूर्ण रूप से आपके कार्य में सहयोग दे सकूँगा।'

'मैं तुम्हारे सहयोग को महत्त्व देता हूँ, इन्द्रदत्त ! तुम्हारी बुद्धि और प्रतिभा को मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ। यदि तुम्हारी सहायता मुझे प्राप्त हो सके, तो मैं अपने को धन्य समझूँगा।'

'तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करते हुए मैं सदा आपका अनुगामी रहा हूँ, आचार्य ! भारत के किस जनपद में कौन ऐसा अमात्य इस समय है, जो आपकी अद्भुत प्रतिभा का लोहा न मानता हो ? आप पाटलिपुत्र हो आइए, एक बार नन्द से मिल लीजिए। तब शायद आप स्वयं ही मेरी बात को सच मानने लगेंगे। आपका उद्देश्य पूर्ण हो, यही मेरी हार्दिक इच्छा है।'

श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ तीन दिन राजगृह में रहा। इस समय में कुछ पण्य केकय देश में बेचकर उसके स्थान पर बहुत-सा नमक वहाँ से क्रय कर लिया गया। केकय के नमक की पूर्वी भारत में नहुत माँग थी। इस समय का उपयोग आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने पुराने मित्रों और सहपाठियों से भेंट करने में किया। इन्द्रदत्त के अतिरिक्त दे व्याडि से भी मिले, जो अपनी कूटनीति और मन्त्रयुद्ध के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुका था। केकय में अपना कार्य समाप्त कर धनदत्त ने पूर्व की ओर प्रस्थान किया और विष्णुगुप्त ने भी इन्द्रदत्त से बिदा ली। चलते समय आचार्य ने हँसते हुए इन्द्रदत्त से कहा—'तुम्हारा कोई सत्री तो छाया की तरह मेरे साथ-साथ नहीं रहेगा?' उसी तरह हँसते हुए इन्द्रदत्त ने उत्तर दिया—'आपके पाटलिपुत्र पहुँचने से पहले ही मेरे गूढ़पुरुष वहाँ पहुँच जाएँगे और आपकी गतिविधि की सूचना मुझे देते रहेंगे।'

(१३)

सांकल में स्वागत

वितस्ता (जेलहम) नदी के तट पर स्थित राजगृह से चलकर धनदत्त का सार्थ ग्लुचुकायन गण और मद्रक जनपद होता हुआ इरावती (रावी) नदी के पार सांकल नगरी में जा पहुँचा। यह कठ जनपद की राजधानी थी और अपने सौन्दर्य के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। कठ जनपद के निवासी शारीरिक सौन्दर्य को बहुत महत्त्व देते थे। स्त्री और पुरुष—सब का यही प्रयत्न रहता था कि वे अधिक-से-अधिक सुन्दर हों। सौन्दर्य के लिए वे व्यायाम करते, स्वच्छ और खुली वायु में जंगली हिरणों के समान दौड़ते फिरते और मछलियों की तरह इरावती में तैरा करते। उनमें यह भी प्रथा थी कि जब कोई बच्चा एक मास की आयु का होता, तो राज्य की ओर से उसका निरीक्षण किया जाता था। जो बच्चा निर्बल या कुरूप पाया जाता, उसे मरवा दिया जाता था। सब बच्चे राज्य के माने जाते थे। माता-पिता उन्हें केवल बचपन में पालते थे और जब वे छः या सात साल के होते, तो उन्हें राज्य के सुपुर्द कर देते थे। इसके बाद माँ-बाप का अपनी सन्तान से कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। सब बच्चे एक साथ आश्रमों में निवास करते, एक साथ खेलते-कूदते और एक साथ भोजन करते थे। उन्हें जो शिक्षा दी जाती, उसमें शारीरिक व्यायाम, नृत्य, संगीत और

शस्त्र-संचालन का प्रमुख स्थान होता था। यही कारण है कि कठ युवक और युवतियाँ अपने सौन्दर्य, साहस और वीरता के लिए वाहीक देश में सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। कठ जनपद में कोई वंशक्रमानुगत राजा नहीं होता था। वहाँ कुलतन्त्र शासन था, और विविध कठकुलों के मुखिया (कुलमुख्य) सभा में एकत्र होकर अपने गणराज्य के लिए कानून बनाते थे, राज-कर्मचारियों को चुनते थे और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध की व्यवस्था करते थे। प्रत्येक कठ युवक जन्मजात योद्धा होता था और युद्ध के समय हथियार बाँधकर लड़ाई के मैदान में उतर पड़ता था।

कठ लोग केवल शारीरिक सौन्दर्य और वीरता के लिए ही प्रसिद्ध नहीं थे, ज्ञान-विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में भी उन्होंने अच्छी उन्नति की थी। कठ की गणसभा में बहुधा दार्शनिक और आध्यात्मिक विषयों की चर्चा हुआ करती थी। प्राचीन दस उपनिषदों में जो कठ उपनिषद् है, उसका विकास कठ जनपद की गणसभा में ही हुआ था। सांकल नगरी के लोग विद्वानों का बड़ा आदर करते थे और जब कोई विद्वान् वहाँ पधारता, तो उसके सम्मान में कोई कसर उठा नहीं रखते थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि तक्षशिला के विश्वविख्यात आचार्य विष्णुगुप्त श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ सांकल पधार रहे हैं, तो उन्होंने उनके स्वागत की धूमधाम के साथ तैयारी की। इरावती के पूर्वी तट पर हजारों कठ नर-नारी एकत्र हुए और बड़े समारोह के साथ आचार्य विष्णुगुप्त को अपनी गणसभा में ले गए।

उस दिन सांकल की गणसभा के भवन में तिल रखने की भी जगह नहीं थी। सब कठ कुलमुख्य अपने-अपने आसनों पर विराजमान थे, और हजारों नागरिक दर्शक और श्रोता के रूप में वहाँ उपस्थित थे। कठों के गणमुख्य वीरधर्मा ने आचार्य विष्णुगुप्त की अभ्यर्थना की। उसने अपने भाषण में कहा—आज हमारा अहोभाग्य है जो तक्षशिला के एक विश्व-विख्यात आचार्य ने हमारी भूमि को पवित्र किया है। आचार्य विष्णुगुप्त त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं, और इन विद्याओं का इतना बड़ा विद्वान् आज आर्यभूमि में दूसरा कोई नहीं है। कठों का यह प्राचीन गण वैदिक युग की उस परम्परा को कायम रखे हुए है, जब कि सब लोग एक साथ भोजन करते थे, एक साथ मिलकर विचार करते थे। हमारी प्रपा एक है, हमारा अन्नभाग एक है, और हम लोगों ने बहुजन के हित के लिए वैयक्तिक अहंभाव को सर्वथा मिटा दिया है। बहुतों के सुख और कल्याण के लिए एक व्यक्ति के गौरव, अहंकार और

ममत्व को होम कर देना ही आर्यों की प्राचीन परम्परा है। हमने इस परम्परा को हजारों वर्ष से कायम रखा हुआ है। हम अपने इस गण में उस आचार्य का स्वागत करते हैं, जिसकी शस्त्र और शास्त्र में समान-रूप से गति है, जो आथर्वण विद्या के साथ-साथ औशनस नीति पर भी अधिकार रखता है, और जो आर्य ब्राह्मणों के त्याग और तपस्या के आदर्शों का मूर्तरूप है।

गणमुख्य वीरधर्मा के इस स्वागत-भाषण को सुनकर कठ लोगों ने हर्षध्वनि की, और आचार्य विष्णुगुप्त ने इसका समुचित शब्दों में उत्तर देते हुए कहा—प्राचीन वैदिक मर्यादा को हजारों वर्षों तक जीवित रखने-वाले कठ लोगों के बीच में उपस्थित होकर जो हर्ष और गौरव मैं आज अनुभव कर रहा हूँ, उसे शब्दों द्वारा प्रकट कर सकना सम्भव नहीं है। व्यक्ति को समाज के लिए होम कर देना ही सदा से आर्यों का आदर्श रहा है। इसी का नाम यज्ञीय भावना है। आपका कठ जनपद बहुत छोटा है, पर उसमें अपार शक्ति है। इस शक्ति का आधार जनता है। आप लोगों में न कोई राजा है, न कोई प्रजा। प्रत्येक नागरिक राजशक्ति का उपभोग करता है, और राज्य का अंग है। इसी कारण बड़े-से-बड़ा सम्राट् भी आप लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सका है। सम्पूर्ण आर्य जनता आप लोगों को आदर की दृष्टि से देखती है। पर अब वह समय आ रहा है, जब आपकी शक्ति की वास्तविक परीक्षा होगी। यवन देश का राजा सिकन्दर विश्व-विजय करता हुआ आंधी की तरह पूर्व की ओर बढ़ रहा है। वह वाहीक देश पर भी आक्रमण करेगा। उसकी सेना में लाखों सैनिक हैं। यवन, पार्स, बाख्त्री, बाल्हीक आदि कितने ही देशों के वीर सैनिक उसकी सेना में शामिल हैं। ये जब टिड्डी-दल के समान वाहीक देश को आक्रान्त कर लेंगे, तब आप लोगों की परीक्षा का समय आएगा। मुझे विश्वास है कि उस समय कठ वीर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। आर्य-भूमि को इस संकट से बचाने के लिए ही मैंने तक्षशिला से विदा ली है। समष्टि के लिए व्यक्ति को बलि दे देने का जो आदर्श आप लोग सदा अपने सम्मुख रखते आए हैं, अब उसे अधिक विशाल क्षेत्र में अभिव्यक्त करने का समय उपस्थित हुआ है। क्या आप लोग यवनों से आर्यभूमि की रक्षा करने के निमित्त अपने सर्वस्व को बलिदान कर देने के लिए उद्यत हैं? अपने सर्वस्व को, अपनी सांकल नगरी को, अपने युवकों को अपनी युवतियों को?

सांकल का वह विशाल सभा-भवन स्वीकृति के महान् कोलाहल से

गूंज उठा, जिससे आचार्य विष्णुगुप्त का हृदय हर्ष और गौरव से पुलकित हो गया।

इसके बाद आचार्य विष्णुगुप्त के स्वागत में कठ लोगों ने उत्सव मनाया। संगीत हुआ, नृत्य हुए, कला का प्रदर्शन हुआ और अन्त में एक भारी भोज हुआ, जिसमें कठ जनपद के प्रायः सभी नर-नारी सम्मिलित हुए।

सांकल से विदा होने के बाद मार्ग में निपुणक ने अपने गुरु से प्रश्न किया—

'आचार्य ! जब हिमालय से समुद्र पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण आर्य-भूमि में एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित हो जाएगा, तो कठ जैसे गणराज्यों का क्या होगा ?'

'ये आज के सदृश ही अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करेंगे, तात ! भारत का चक्रवर्ती सम्राट् इनके धर्म, चरित्र और व्यवहार में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेगा। जिस प्रकार व्यक्तियों के अपने-अपने गुण और कर्म होते हैं, वैसे ही जनसमूहों और जनपदों की भी अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। उन्हें स्थिर रखने में ही मानव समाज का कल्याण है। वह सामने देखो, उस शस्य-श्यामल खेत में वह किसान रमणी कैसी मत्त-मयूरी के समान नृत्य कर रही है, प्रकृति की मादकता से उन्मत्त-सी हुई। यह स्वतन्त्रता, यह उल्लास, यह मद उस जातीय गुण के कारण है, जो कठ जनपद की विशेषता है। चरवाहों के उस झुण्ड को देखो, जो हाथों से दोनों कानों को बन्द किए हुए गोलाकार वृत्त में नाचता हुआ अपनी संगीत-लहरी से सारे क्षितिज को गुञ्जायमान कर रहा है। कितना हर्ष है इन सब में, कैसी मस्ती है इनमें। इस सब की हमें रक्षा करनी होगी, यवनराज से भी और भारत के एकच्छत्र शासनतन्त्र से भी। यदि वाहीक देश की इन विशेषताओं का नाश हो गया, तो आर्य जाति के सुखमय जीवन का ही अन्त हो जाएगा।'

'पर क्या अकेले कठ लोग यवनों के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सकेंगे, आचार्य !'

'कठ लोग अकेले नहीं हैं। वाहीक देश में कितने ही और गणराज्य हैं, जो कठों के समान ही स्वतन्त्र हैं। सौभूत, क्षुद्रक, क्षत्रिय, मालव, आग्रेय, रोहितक आदि बीसियों गणों से यह वाहीक भूमि परिपूर्ण है। इन सब के निवासी कठों के समान ही वीर और स्वतन्त्रताप्रिय हैं। ये पग-पग पर सिकन्दर का मुकाबिला करेंगे और आर्य जाति के गौरव की रक्षा

करेंगे। मैं केवल यह चाहता हूँ कि ये एक सूत्र में संगठित हो जाएँ। इनकी स्वतन्त्रता, पृथक् सत्ता और व्यक्तित्व कायम रहे, पर ये सब एक ऐसे महान् संगठन के अंग बन जाएँ, जिसके सम्मुख पृथिवी की कोई भी शक्ति सिर उठाने का साहस न कर सके।'

श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ निरन्तर पूर्व की ओर चलता गया। विपाशा (व्यास), शतद्रु (सतलज), सरस्वती और यमुना को पार करके वह मागध साम्राज्य में प्रविष्ट हो गया। आचार्य विष्णुगुप्त मार्ग में कहाँ-कहाँ ठहरे, किन-किन लोगों से मिले, इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं लिखेंगे। धनदत्त जहाँ अपने पण्य के क्रय-विक्रय में तत्पर रहा, वहाँ आचार्य विष्णुगुप्त अपने पुराने शिष्यों और सहपाठियों से मिलकर मगध-राज नन्द और उसके शासन के विषय में जानकारी प्राप्त करने में अपने समय का उपयोग करते रहे।

(१४)

श्रावस्ती में

वाहीक देश से पाटलिपुत्र जाने वाला राजमार्ग श्रावस्ती होकर जाता था। कोशल देश की यह राजधानी किसी समय अपने धन-वैभव के लिए भारत-भर में प्रसिद्ध थी। मागध साम्राज्य द्वारा कोशल की विजय कर लेने के बाद श्रावस्ती का महत्त्व कुछ कम हो गया था, पर अब भी वह मध्यदेश के व्यापार का महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी। श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ वहाँ पाँच दिन ठहरा। श्रावस्ती में धनदत्त की पण्यशाला भी थी। सार्थ का बहुत-सा पण्य विक्रय के लिए वहाँ रख दिया गया और वहाँ से नया पण्य ले लिया गया।

एक दिन आचार्य विष्णुगुप्त श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला के सम्मुख खड़े थे। उन्होंने देखा, पाँच सौ नवयुवक पंक्ति बाँधे सामने से चले आ रहे हैं। उनके सिर मुंडे हुए थे, शरीर पर पीले रंग के चीवर थे और हाथों में भिक्षा-पात्र। वे चुपचाप शान्त मुद्रा में आँखे नीचे किए चले आ रहे थे। जब वे पण्यशाला के सम्मुख आए, तो धनदत्त ने उन्हें झुककर प्रणाम किया। वह उन्हें अपनी पण्यशाला के अतिथि-भवन में ले गया और आदरपूर्वक आसन दे उन्हें भोजन के लिए बिठाया। तरह-तरह के सुस्वादु भोजनों द्वारा उनको तृप्त कर धनदत्त उनके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

एक भिक्षु ने अपना दायाँ हाथ ऊँचा उठाकर धनदत्त से कहा—'प्रमाद-रहित होकर धर्म का सेवन करते रहो। बुद्ध, धर्म और संघ में तुम्हारी श्रद्धा सदा बनी रहे।' धनदत्त ने अपना सिर और नीचे झुका दिया। भोजन करके और धनदत्त को उपदेश देकर भिक्षु लोग जिस मार्ग से आए थे, उसी से वापस लौट गए।

आचार्य विष्णुगुप्त यह सब दृश्य कौतूहलपूर्वक देख रहे थे। भिक्षुओं के चले जाने पर उन्होंने श्रेष्ठी धनदत्त से प्रश्न किया—'क्या तुम भी उपासक हो?'

'नहीं, आचार्य! मैं बौद्ध उपासक नहीं हूँ। पर हम गृहस्थ लोग सब सम्प्रदायों का आदर करते हैं। सब भिक्षुओं, साधुओं और संन्यासियों को भोजन, धन आदि से सन्तुष्ट रखते हैं। यहाँ श्रावस्ती में छह हजार के लगभग बौद्ध भिक्षुओं का निवास है। भिक्षुणियों की संख्या भी दो हजार से कम नहीं है। जैन मुनि और आजीवक साधु भी यहाँ हजारों की संख्या में हैं। ये सब दोपहर के समय भिक्षापात्र हाथों में ले नगर में आते हैं, और श्रद्धालु गृहस्थों के घरों से भिक्षा ले अपने-अपने मठों, विहारों और आश्रमों को वापस लौट जाते हैं।'

'ये इतने भिक्षु यहाँ करते क्या हैं?'

'निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न।'

'निर्वाण किसे कहते हैं?'

'यह तो मैं नहीं बता सकूँगा, आचार्य! मैं तो इतना ही जानता हूँ, कि ये सब भिक्षु हम गृहस्थों के सुख और विलास से पूर्ण जीवन को त्यागकर, पुत्र-कलत्र का मोह छोड़कर, संयम और नियम का जीवन व्यतीत करते हैं। ये सब धन्य हैं, जो संसार का सुख-भोग त्यागकर उच्च जीवन बिता रहे हैं।

'वाहीक देश में अभी बौद्ध, जैन और आजीवक सम्प्रदायों का प्रवेश नहीं हुआ। मैंने इनके सम्बन्ध में पढ़ा तो बहुत-कुछ है, पर इनके जीवन को समीप से देखने का अवसर अभी मुझे नहीं मिला। क्यों धनदत्त! क्या तुम मुझे इन भिक्षुओं के किसी मठ में ले जा सकोगे?'

'क्यों नहीं, आचार्य! मैं जेतवन विहार के प्रधान स्थविर कस्सपगोत को भलीभाँति जानता हूँ। तक्षशिला जाते हुए मैं पिछली बार जब श्रावस्ती ठहरा था, तो मैंने सपादलक्ष सुवर्ण-मुद्राएँ प्रदान की थीं, अनाथपिण्डक द्वारा निर्मित विहार की मरम्मत के लिए। कल सुबह हम जेतवन चले चलेंगे, वहाँ स्थविर कस्सपगोत से मैं आपकी भेंट करा दूँगा।'

अगले दिन सुबह ही श्रेष्ठी धनदत्त आचार्य विष्णुगुप्त और उनके दोनों शिष्यों (निपुणक और शिवदत्त) के साथ जेतवन की ओर चला। रास्ते में वह आचार्य को जेतवन के इस प्रसिद्ध विहार के सम्बन्ध में बताने लगा—'कोई ढाई सौ साल पहले की बात है। उन दिनों श्रावस्ती मध्यदेश की सबसे समृद्ध नगरी थी। मार्ग में जो ये खण्डहर दिखाई देते हैं, उन दिनों विशाल प्रासाद थे। यहाँ पर तो मनुष्य के लिए पैदल चलना भी कठिन होता था, क्योंकि रथों, गाड़ियों, घोड़ों और हाथियों से यह मार्ग सदा पूर्ण रहता था। यहाँ उन दिनों एक बड़ा समृद्ध श्रेष्ठी रहता था, जिसका नाम सुदत्त अनाथपिण्डक था। उसके धन के विषय में मैं क्या कहूँ, शायद कुबेर भी धन-वैभव में उसका मुकाबिला नहीं कर सकता था। एक बार वह व्यापार के लिए मगध की राजधानी राजगृह गया हुआ था। वहाँ भगवान् बुद्ध से उसकी भेंट हो गई। सौम्य और तेज से प्रदीप्त तथागत के मुखमण्डल को देखकर उसके मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई, और उसने संकल्प किया कि मैं उनके निवास के लिए श्रावस्ती में एक विशाल विहार का निर्माण करवाऊँगा। उसने तथागत को अगली वर्षा ऋतु श्रावस्ती में बिताने के लिए निमन्त्रित किया। श्रावस्ती लौटकर उसने सोचा, कौनसी ऐसी जगह है, जो भगवान् बुद्ध के विहार के लिए उपयुक्त होगी। उसका ध्यान जेतवन की ओर गया, जो शहर से बाहर एक रमणीक उद्यान था। सुदत्त अनाथपिण्डक जेतवन के स्वामी कुमार जेत के पास गया और उससे कहा—"आर्यपुत्र! मुझे यह उद्यान विहार बनवाने के लिए दे दो।" जेत ने उत्तर दिया—"नहीं, गृहपति! करोड़ों सुवर्ण-मुद्राएँ बिछा देने पर भी यह उद्यान नहीं दिया जा सकता।" "आर्यपुत्र! मैंने उद्यान आपकी कीमत पर ले लिया।" "नहीं गृहपति! मैंने उद्यान नहीं बेचा।" उद्यान बिका या नहीं, इस बात का फैसला न्यायाधीश के हाथ में छोड़ दिया गया। न्यायाधीश ने सुदत्त अनाथपिण्डक के पक्ष में निर्णय दिया, क्योंकि कुमार जेत ने जो कीमत कही थी, सुदत्त ने उसे स्वीकार कर लिया था। सुदत्त अनाथपिण्डक ने सारे जेतवन को सुवर्ण-मुद्राओं से ढक दिया और उसे कुमार जेत से खरीदकर उस पर विशाल बौद्ध विहार का निर्माण कराया। अगले वर्ष भगवान् बुद्ध इस विहार में आकर ठहरे और उन्होंने वर्षा ऋतु यहीं पर व्यतीत की। ढाई सदी बीत जाने पर भी अनाथपिण्डक का यह विहार अब तक सुरक्षित है। सम्पूर्ण उत्तरापथ में इतना विशाल और शानदार विहार दूसरा नहीं है। वह जो सामने गगनचुम्बी स्तूप दिखाई दे रहा है, वहीं पर यह विहार स्थित है। इसके बाईं ओर जो छोटा स्तूप

दृष्टिगोचर होता है, उसके समीप भिक्षुणियों के निवास के लिए पृथक् विहार बना हुआ है।'

इस प्रकार बातचीत करते हुए आचार्य विष्णुगुप्त और श्रेष्ठी धनदत्त जेतवन पहुँच गए। वहाँ जाकर उन्होंने स्थविर कस्सपगोत को प्रणाम किया। कस्सपगोत से आदेश पाकर वे एक तरफ नीचे आसनों पर बैठ गए। कस्सपगोत एक स्थूलकाय भिक्षु थे, साठ वर्ष के लगभग आयु के। उनके विशाल मुखमण्डल पर एक विशेष प्रकार का सन्तोष और तेज था, जो सुखी और सम्पन्न जीवन से ही प्राप्त होता है।

कस्सपगोत ने धनदत्त को सम्बोधन करके कहा—'कहो, उपासक! तुम्हारे साथ ये कौन हैं?'

'ये तक्षशिला के विश्वविख्यात आचार्य विष्णुगुप्त हैं। ये त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति के अगाध विद्वान् हैं। इनके साथ ये दो युवक इनके शिष्य हैं।'

'पर उपासक! त्रयी जिन यज्ञों का उपदेश करती है, वे तो एक भग्न नाव के समान हैं, जो मनुष्य को संसार-सागर के पार नहीं उतार सकती। यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्र का आवाहन करता है, वरुण, प्रजापति ब्रह्मा, महेश और यम का आवाहन करता है, पर क्या ये उसके पास चले आते हैं?'

'इन बातों को मैं क्या जानूँ, स्थविर!

'उपासक! तुम त्रयी और आन्वीक्षकी के झगड़े में मत पड़ो। तुम तथागत के उस मार्ग का अवलम्बन करो, जो आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, और अन्त में कल्याणकारी है। तुम दो अन्तों के सेवन से बचो। जानते हो, ये दो अन्त कौनसे हैं? एक तो काम और विषय-सुख में फँसना, जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य, अनार्य और अनर्थकर है, और दूसरा तपस्या या शरीर को व्यर्थ में अति कष्ट देना, जो कि अनार्य और अनर्थक है। इन दोनों अन्तों को त्यागकर तथागत की उस मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को ग्रहण करो, जो आँखें खोलने वाली और ज्ञान देने वाली है। तुम बुद्ध की शरण में आओ, धर्म की शरण में आओ, संघ की शरण में आओ। तभी तुम उस निर्वाण पद को प्राप्त कर सकोगे, जहाँ शोक और सन्ताप का नाम भी नहीं है।'

स्थविर कस्सपगोत इसी प्रकार तथागत बुद्ध की शिक्षाओं का प्रवचन करते रहे। आचार्य विष्णुगुप्त ने उनकी किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया और न उनसे कोई प्रश्न ही किया।

कुछ समय बाद उन्होंने स्थविर कस्सपगोत से कहा—'स्थविर!

श्रापकी अनुमति हो, तो मैं इस विहार को देख लूं। वाहीक देश में अभी तथागत के अष्टाङ्गिक धर्म का प्रवेश नहीं हुआ है, इसीलिए मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक जानने की उत्सुकता है।'

स्थविर ने एक युवक भिक्षु को बुलाकर आदेश दे दिया, और आचार्य विष्णुगुप्त उसके साथ जेतवन के बौद्ध विहार को देखने के लिए चल पड़े। चलते हुए विष्णुगुप्त ने स्थविर कस्सपगोत से कहा—'स्थविर! भिक्षुओं से बात करने का निषेध तो नहीं है?'

'नहीं, उपासक!'

धनदत्त, विष्णुगुप्त, निपुणक और शिवदत्त भिक्षु के साथ-साथ विहार के उस भाग में प्रविष्ट हुए, जहाँ भिक्षुओं के अध्ययन और चिन्तन का स्थान था।

कुछ भिक्षु स्वाध्याय में तत्पर थे। आचार्य विष्णुगुप्त ने उनसे प्रश्न किया—

'आयुष्मान्! आप लोग क्या पढ़ रहे हैं?'

'हम अभिधम्म पिटक का स्वाध्याय कर रहे हैं, उपासक!

'अब तक आपने और क्या-कुछ पढ़ा है?'

'विनय और सुत्त पिटकों का हम लोग अध्ययन कर चुके हैं?'

'क्या आप लोगों ने किसी शिल्प की भी शिक्षा प्राप्त की है?'

'उपासक! हमने तथागत की मध्यमा प्रतिपदा का अनुसरण करने के लिए भिक्षुव्रत ग्रहण किया है। शिल्प सीखकर हम क्या करेंगे। निर्वाण हमारा उद्देश्य है। जो विद्या मनुष्य को सांसारिक सुख और वैभव की ओर ले जाती है, उससे हमारा क्या प्रयोजन है, उपासक?'

'आपकी आयु अब क्या है?'

'चौबीस वर्ष।'

'क्या आपको कामवासना कभी उद्विग्न नहीं करती?'

'हम मार पर विजय पाने के लिए प्रयत्नशील हैं। कामवासना हीन, ग्राम्य और अनर्थकर है।'

'शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आप धन-उपार्जन की आवश्यकता नहीं समझते?'

'यह कार्य गृहस्थों का है। वे हमारी सब आवश्यकताओं को पूर्ण कर देते हैं।'

'पर यदि सभी लोग आपके मार्ग का अनुसरण कर भिक्षु हो जाएँ, तो अनाज कौन पैदा करेगा, वस्त्र कौन बनाएगा और आपके निवासयोग्य ये

विहार कौन तैयार करेगा ?'

'इसकी चिन्ता की हमें क्या आवश्यकता है ? संसार में ऐसे लोग हैं ही कितने, जो संसार के सुखों का त्याग कर भिक्षु व्रत ग्रहण करें और निर्वाण की प्राप्ति का उद्योग करें ?'

'पर आपका प्रयत्न तो यही है कि सभी लोग आपके मार्ग का अनुसरण करें ?'

'हाँ, यह तो सच है।'

एक अन्य स्थान पर कुछ भिक्षु आपस में विचार-विनिमय कर रहे थे। आचार्य विष्णुगुप्त उनकी बातचीत सुनने के लिए रुक गए। वे विवाद कर रहे थे—

'तथागत की शिक्षा के अनुसार हमें चीवर धारण करते हुए यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमारा दायाँ कन्धा नग्न रहे। भिक्षुओं के लिए यह परम आवश्यक है।'

'नहीं, दायाँ कन्धा यदि चीवर से ढक भी जाए, तो कोई हानि नहीं। पर नमक का अधिक सेवन संयम के लिए अत्यन्त हानिकारक है। अतः भोजन में कम-से-कम एक वस्तु ऐसी अवश्य होनी चाहिए, जिसमें नमक न पड़ा हो।'

आचार्य विष्णुगुप्त कुछ देर तक इस विचार-विमर्श को सुनते रहे और मुसकराते हुए आगे बढ़ गए।

अब वे उस स्थान पर पहुँचे, जो भिक्षु लोगों के निवास के लिए था। संगमर्मर का फर्श, ऊँचे विशाल कमरे और गद्देदार शैय्याएँ देखकर आचार्य ने अपने साथी भिक्षु से पूछा—

'क्यों आयुष्मान् ! आपने वे बस्तियाँ देखी हैं, जहाँ श्रावस्ती के कर्मकर और शिल्पी निवास करते हैं ?'

'हाँ उपासक ! भिक्षा ग्रहण करते हुए कभी-कभी हमें उन बस्तियों से होकर भी जाना होता है। पर वहाँ तो दुर्गन्ध और धूल-मिट्टी के कारण हमसे क्षणभर भी खड़ा नहीं हुआ जाता।'

'उन बच्चों को भी कभी देखा है, जो वहाँ धूल में भरे नंग-धड़ंग फिरते रहते हैं ?'

'हाँ, उपासक।'

'कभी उनके घरों से भी भिक्षा ग्रहण की है ?'

'उनके पास तो अपना पेट भरने के लिए भी अन्न नहीं होता। वे हमें क्या भिक्षा देंगे ? श्रावस्ती में धनपतियों की कोई कमी नहीं है। वे हमें

श्रद्धापूर्वक भोजन कराते हैं।'

'क्या कभी आपने इस प्रश्न पर विचार किया है, कि इन लोगों का दुःख दारिद्रय भी दूर होना चाहिए ?'

'संसार के मायाजाल में फंसे हुए, काम-वासना के शिकार ये लोग सन्ताप उठाते हैं। भगवान् बुद्ध की शरण में आकर ये अपने कष्टों से मुक्त हो सकते हैं।'

भिक्षु-संघ को देखकर आचार्य विष्णुगुप्त भिक्षुणिओं के विहार में गए। युवती, प्रौढ़ा और वृद्धा सब प्रकार की भिक्षुणियाँ वहाँ थीं। जेतवन के ये विहार एक नगरी के समान थे, जहाँ हजारों भिक्षुओं और भिक्षुणिओं के निवास, भोजन, पूजा, चिन्तन आदि की व्यवस्था थी। लाखों कार्षापण वहाँ प्रतिमास खर्च होते थे, और यह सब धन गृहस्थ उपासकों द्वारा प्राप्त होता था।

जेतवन से लौटते हुए आचार्य विष्णुगुप्त ने निपुणक से कहा—'देखा, तात ! मानवशक्ति और धन का यह कैसा घोर अपव्यय है। इन युवकों को अपने-अपने कार्य में तत्पर होना चाहिए था, विद्या और शिल्प की शिक्षा प्राप्त कर द्रव्य का उपार्जन करते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए था, और समाज में अपने उस स्थान को ग्रहण करना चाहिए था, जिसके ये योग्य हैं। आर्य-परम्परा के अनुसार चार आश्रमों की व्यवस्था की गई है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। बचपन और किशोरावस्था में प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस काल में विद्या और शिल्प सीखना प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक है। फिर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर धन का उपार्जन करना चाहिए। पितृऋण से उऋण होना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। फिर वानप्रस्थी होकर मनुष्य को अध्यात्म-चिन्तन में प्रवृत्त होना चाहिए, और अन्त में संन्यास आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। भिक्षुव्रत मानव-समाज की सेवा के लिए ही ग्रहण किया जाता है। बालकों और युवकों का यह भिक्षुव्रत कितना उपहासास्पद है। ये किशोरवय लोग क्या निर्वाण-पद की प्राप्ति करेंगे और क्या मानव समाज के कष्टों को दूर करेंगे। वाहीक देश के बाहर मध्य देश में यह कैसी अनार्य परम्परा प्रारम्भ हुई है। यह आवश्यक है कि इस देश में फिर से आर्य-मर्यादा की स्थापना की जाए ! जिन युवकों को गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट होकर कृषि, शिल्प, व्यापार आदि द्वारा सम्पत्ति का उत्पादन करना चाहिए, वे भिक्षु बने हुए किस प्रकार यहाँ आराम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं, और धनपतियों से भिक्षा ग्रहण कर

अपना निर्वाह कर रहे हैं!'

'पर आप इन्हें किस प्रकार आर्य-मर्यादा में ला सकेंगे, आचार्य ?'

'राजशासन द्वारा। हमें यह व्यवस्था करनी होगी कि कोई ऐसा व्यक्ति परिव्राजक या भिक्षु न बन सके, जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रमों में न रह चुका हो। केवल वे ही व्यक्ति भिक्षु बन सकें, जिनकी सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो गई हो और जो अपनी सन्तान तथा पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर चुके हों। जो इसके विपरीत आचरण करे, उसके लिए दण्ड की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार मानव-शक्ति को नष्ट करना घोर अपराध है।'

'पर आचार्य! भगवान् बुद्ध ने तो भिक्षु-संघ की स्थापना इस उद्देश्य से की थी कि कुछ आदर्शवादी लोग संसार के प्रपञ्च से पृथक् रहते हुए मानव समाज के हित और कल्याण में ही अपने जीवन को खपा दें।' धनदत्त ने कहा।

'यह ठीक है। प्राच्य देशों में आर्य धर्म का स्वरूप बहुत विकृत हो गया था। वहाँ अनार्यों और शूद्रों के बहुत बड़ी संख्या में होने के कारण आर्य लोग उनसे घृणा करने लग गए थे। धार्मिक विधि-विधानों और कर्मकाण्ड का स्वरूप भी वहाँ बहुत बिगड़ गया था। बुद्ध ने उनमें सुधार किया। बहुत-से प्रतिभाशाली युवक उनकी शिक्षाओं से आकृष्ट हुए और उन्होंने भिक्षुव्रत लेकर उनका प्रचार किया। पर श्रावस्ती के जेतवन में जो ये हजारों भिक्षु निवास कर रहे हैं, ये क्या मानव समाज के हित और कल्याण में तत्पर हैं ? ये आराम से रहते हैं, बिना कोई काम किए बढ़िया भोजन खाते हैं, और उन्हें वे सब सुख प्राप्त हैं, जो गृहस्थों को भी दुर्लभ होते हैं।'

'पर आचार्य! मोक्ष या निःश्रेयस की प्राप्ति ही तो मानव जीवन का उद्देश्य है। जिसे आर्यशास्त्रों में मोक्ष कहा गया है, उसे ही तो बौद्ध लोग निर्वाण कहते हैं।'

'सुनो, धनदत्त! आर्यशास्त्रों के अनुसार धर्म के दो उद्देश्य हैं—अभ्युदय और निःश्रेयस। अभ्युदय न केवल व्यक्ति का, अपितु मानव-समाज का भी। निःश्रेयस के लिए पहले अभ्युदय आवश्यक है। बिना अभ्युदय के निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं हो सकती और यह अभ्युदय तभी सम्भव है, जब कि सब वर्णों और सब आश्रमों के लोग अपने-अपने 'स्वधर्म' में स्थिर रहें। धनदत्त, तुम श्रेष्ठी हो, व्यापार द्वारा धन का उपार्जन करना तुम्हारा 'स्वधर्म' है। यदि तुम या तुम्हारे जैसे श्रेष्ठी इस

स्वधर्म से विमुख हो जाएँ, तो कहाँ से वह धन आएगा, जिससे इन मठों और विहारों का पालन होता है। तुम्हारी तरह ही प्रत्येक अध्यापक को, प्रत्येक शिल्पी को, प्रत्येक कर्मकर को, और प्रत्येक सैनिक को अपने-अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए। प्रत्येक बात अपनी जगह पर ही शोभा देती है। परिव्राजक या भिक्षु की भी समाज के लिए उपयोगिता है, पर यह मत भूलो कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ के बाद ही संन्यास आश्रम का स्थान है।'

'युवती स्त्रियों का भिक्षुणी बनना कहाँ तक उचित है, आचार्य!' शिवदत्त ने प्रश्न किया।

'यह नितान्त अनुचित है। मैं तो यह व्यवस्था करना चाहूँगा कि जो कोई स्त्रियों को भिक्षुणी बनाए, उसे राज्य की ओर से दण्ड दिया जाए। मेरी सम्मति में तो युवक पुरुषों को भी भिक्षु बनाना उचित नहीं है। स्त्रियों को प्रव्रज्या देने का विधान कर बुद्ध ने अच्छा नहीं किया। इससे भिक्षु-संघ में अनाचार की वृद्धि होगी और विहारों का जीवन पवित्र नहीं रह सकेगा।'

आचार्य विष्णुगुप्त इसी प्रकार बातें करते हुए श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला को वापस लौट आए। जेतवन के विहार का अवलोकन कर उनका हृदय प्रसन्न नहीं था। वे सोच रहे थे, सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक संगठन में संगठित करने के साथ-साथ मध्यदेश और प्राची में आर्य-मर्यादा का भी फिर से स्थापन करना होगा।

अगले दिन सुबह श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ श्रावस्ती से बिदा हो गया। प्रयाग, काशी आदि होता हुआ वह सार्थ कुछ सप्ताह बाद पाटलिपुत्र पहुँच गया।

(१५)

वक्रनास का षड्यन्त्र

पाटलिपुत्र के समीप जहाँ शोण नदी गंगा में आकर मिलती है, मगधराज महापद्म नन्द का विशाल राजप्रासाद था। यह प्रासाद एक दुर्ग के समान बना हुआ था, जिसके चारों ओर ऊँची प्राचीर थी। पूर्वी और उत्तरी प्राचीर के साथ-साथ शोण और गंगा नदियाँ बहती थीं, और बहुत-सी राजकीय नौकाएँ राजप्रासाद के समीपवर्ती नदीतट पर हर समय पहरा देती रहती थीं, ताकि कोई व्यक्ति जलमार्ग द्वारा राजप्रासाद में

प्रवेश न कर सके। राजप्रासाद में प्रवेश करने के लिए एक महाद्वार था, जो दक्षिणी प्राचीर के मध्य में स्थित था। इस पर रात-दिन सशस्त्र सैनिकों का पहरा रहता था, और कोई भी व्यक्ति दौवारिक से प्रवेशपत्र पाए बिना इस महाद्वार में प्रविष्ट नहीं हो सकता था। दौवारिक के अधीन बहुत-से राजकर्मचारी थे, जो महाद्वार के समीप ही बाहर की ओर बने हुए एक बड़े से कार्यालय में हर समय उपस्थित रहते थे।

राजप्रासाद के उत्तरी भाग में महापद्म नन्द का अन्तःपुर स्थित था। उसकी बहुत-सी रानियाँ थीं, और दास-दासियों की संख्या तो एक सहस्र से भी अधिक थी। अन्तःपुर में निवास करनेवाली दासियाँ अनेक प्रकार की थीं। उनमें से कुछ संगीत में प्रवीण थीं, कुछ नृत्य में। रानियों के प्रसाधन और शृंगार के लिए भी बहुत-सी दासियाँ नियुक्त थीं। अन्तःपुर में इन सब के निवास के लिए पृथक्-पृथक् भवन बने हुए थे। ये सब भोग-विलास का जीवन व्यतीत करती थीं, और राजा तथा उसकी रानियों को प्रसन्न रखने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझती थीं। अन्तःपुर की रक्षा का उत्तरदायित्व आन्तर्वंशिक नाम के अमात्य के ऊपर था, जो अपनी सेना के साथ अन्तःपुर की रक्षा के लिए सदा जागरूक रहता था। आन्तर्वंशिक के विश्वस्त सैनिक अन्तःपुर के अन्दर और बाहर रात-दिन पहरा देते रहते थे। अन्तःपुर का कोई भी कमरा ऐसा नहीं था, जिसके बाहर एक-न-एक सैनिक हर समय उपस्थित न रहता हो। कमरों के बरामदों में, अन्तःपुर के मार्गों और गलियों में, उद्यान में, सरोवर के चारों ओर, महानस के अन्दर और बाहर—सब जगह आन्तर्वंशिक सेना के सैनिक घूमते-रहते थे। उनकी नजर से बचकर कोई व्यक्ति अन्तःपुर में प्रवेश नहीं पा सकता था। जब राजा अन्तःपुर में जाता, तो ये सैनिक उसके साथ-साथ रहते थे। जिस समय राजा रानी से मिलता, तभी वह अकेला होता था। पर रानी को एकान्त में राजा से मिलने देने से पहले यह भलीभाँति देख लिया जाता था कि उसके कमरे में कोई अन्य व्यक्ति छिपा हुआ तो नहीं है। इतना ही नहीं, आन्तर्वंशिक की विश्वस्त परिचारिकाएँ रानी की भी अच्छी तरह से परीक्षा ले लेती थीं। अपने वस्त्रों के नीचे उसने कोई शस्त्र तो नहीं छिपा रखा है, कहीं नूपुरों और अन्य आभूषणों को उसने जहर से तो नहीं बुझा लिया है, कहीं अपनी वेणी में तो उसने छुरी या कटार नहीं छिपा रखी है, कहीं अपने दर्पण के नीचे तो उसने विष को छिपाकर नहीं रख लिया है—यह सब भलीभाँति जाँचकर परिचारिकाएँ आन्तर्वंशिक को सूचना देती थीं, और तभी राजा को रानी से अकेले में मिलने दिया जाता था।

अन्तःपुर के पूर्व में राजा के अपने निवास के लिए एक विशाल प्रासाद था। वहाँ भी बहुत-सी दास-दासियाँ नियुक्त थीं और आन्तर्वंशिक सेना के बहुत-से सैनिक उसके अन्दर और बाहर रात-दिन पहरा देते रहते थे। राजभवन के दक्षिण की ओर राजपुत्रों के प्रासाद थे, जिनकी संख्या नौ थी। महापद्म नन्द के नौ पुत्र थे। उन सब के लिए अलग-अलग महल बने हुए थे।

पाटलिपुत्र के इस महाप्रासाद के दौवारिक और आन्तर्वंशिक कभी भी निश्चिन्तता की साँस नहीं ले सकते थे; क्योंकि राजा और राजकुल के शत्रुओं की कोई कमी नहीं थी। मगध के सम्राटों ने जिन विविध जनपदों को जीतकर उनके राजकुलों का मूलोच्छेद कर दिया था, वे प्रायः इस ताक में रहते थे कि मौका पाते ही मगध के सम्राट् और उसके राजकुल के व्यक्तियों पर आक्रमण कर दें और उन्हें मौत के घाट उतार दें। सम्राट् न अपनी साम्राज्ञी का विश्वास कर सकता था और न अपने राजकुमारों का। उसे विश्वास था, तो केवल अपने महामन्त्री शकटार पर, जो मगध के राजकुल के प्रति असीम भक्ति रखता था और जो मागध साम्राज्य का असली कर्णधार था। महाप्रासाद का दौवारिक भानुवर्मा और आन्तर्वंशिक सेना का अध्यक्ष विराधगुप्त आचार्य शकटार के सहपाठी और मित्र थे। उनकी सहायता से ही वह महापद्म नन्द के राजप्रासाद और अन्तःपुर की रक्षा करने में समर्थ था।

पर शकटार भलीभाँति जानता था कि सब से अधिक आवश्यकता इस बात की है कि सम्राट् की अपनी रानियों, राजपुत्रों, दासियों और परिचारिकाओं के षड्यन्त्रों से ही रक्षा की जाए। उसके सामने ये उदाहरण विद्यमान थे कि राजा भद्रसेन को रानी के कमरे में छिपकर उसके अपने भाई ने ही मार दिया था। अपनी माता की शय्या के नीचे छिपकर राजा कारूश की उसके अपने लड़के ने ही हत्या कर दी थी। विष से बुझे हुए नूपुरों से राजा वरन्त्य को उसकी अपनी रानी ने ही मार दिया था। हीरे की मेखला द्वारा राजा सौवीर का उसकी रानी ने ही घात कर दिया था। वेणी में छिपाए हुए शस्त्र से राजा विदूरथ की हत्या उसकी रानी ने ही कर दी थी। राजपुत्रों का वह क्या भरोसा कर सकता था? शकटार जैसा चाणाक्ष राजनीतिज्ञ यह अच्छी तरह जानता था कि राजपुत्र केंकड़े के समान होते हैं, जो अपने जनक को ही मार डालने के यत्न में रहते हैं। राजा मरे और उन्हें राजगद्दी पर बैठने का अवसर प्राप्त हो। मगध के सम्राट् अजातशत्रु का उदाहरण उसके सम्मुख था, जिसने अपने पिता को

बन्दीगृह में डाल दिया था और वहाँ भूख से तड़प-तड़पकर उसने अपना प्राणत्याग किया था। इसी लिए मगध के राजप्रासाद में हजारों गूढ़पुरुष और सत्री महामन्त्री शकटार द्वारा नियुक्त किए गए थे, जो रानियों, दासियों, राजपुत्रों और परिचारिकाओं आदि की प्रत्येक गति-विधि पर निगाह रखते थे। राजप्रासाद और अन्त:पुर की कोई भी बात शकटार से छिपी नहीं रहती थी।

शकटार महापद्म नन्द की रक्षा के लिए इतना जागरूक था, पर फिर भी मागध सम्राट् के विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र होते रहते थे। मोरियगण का राजकुमार चन्द्रगुप्त जो अन्त:पुर से निकलकर बाहर जा सका, वह एक षड्यन्त्र का ही परिणाम था, जिसमें श्रेष्ठी धनदत्त भी शामिल था। चन्द्रगुप्त को गए अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि एक अन्य षड्यन्त्र शुरू हो गया। एक दिन राजप्रासाद में मदनोत्सव मनाया जा रहा था। रानियाँ और परिचारिकाएँ उसमें शामिल हुई थीं। आधी रात तक उत्सव चलता रहा। अनेक दासियों और परिचारिकाओं ने नृत्य किए, और खूब शराब ढली। मदनिका नामक एक युवती दासी के रूप पर महापद्म नन्द मुग्ध हो गया। मदिरा के कारण वह अपने तन-मन की सुध भूल गया, और मदनिका को लेकर एक पृथक् कक्ष्या विभाग में चला गया। उसका एकान्त में जाना था कि मदनिका ने उस पर आक्रमण कर दिया और वह घायल होकर गिर पड़ा। आन्तर्वंशिक सैनिकों ने मदनिका के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, पर महापद्म नन्द घायल हो चुका था। अब उसके लिए राजसभा में उपस्थित हो सकना या नागरिकों को दर्शन देना सम्भव नहीं रहा था।

मागध साम्राज्य के लिए इससे अधिक भयावह बात और क्या हो सकती थी। जिन राज्यों में किसी एक व्यक्ति का शासन होता है, उनमें उसके मरते या बीमार होते ही षड्यन्त्र शुरू हो जाते हैं। मदनिका महापद्म नन्द के ज्येष्ठ पुत्र सुमाल्य नन्द की प्रेयसी थी। सुमाल्य की प्रेरणा से ही उसने महापद्म पर हमला किया था। शकटार जानता था कि सम्राट् के घायल होने के समाचार से मगध में एक तूफान-सा उठ खड़ा होगा। अत: उसने इस बात को कहीं भी प्रकट नहीं होने दिया। आन्तर्वंशिक विराधगुप्त की सहायता से उसने मदनिका के शरीर को इस ढंग से दफनवा दिया कि अन्त:पुर का कोई भी व्यक्ति उसकी हत्या के सम्बन्ध में नहीं जान सका। विराधगुप्त ने प्रसिद्ध कर दिया कि सम्राट् ने मदनिका से प्रसन्न होकर उसे दासी जीवन से मुक्त कर दिया है, और काशी के

दस ग्राम उसे निर्वाह के लिए दे दिए हैं। मदनिका अपनी जागीर में रहने के लिए चली गई है।

अगले दिन जब राजसभा का अधिवेशन हुआ, तो सम्राट् महापद्म नन्द उसमें उपस्थित हुए। असली महापद्म तो अपने राजप्रासाद में घायल पड़े थे। अपने एक विश्वस्त मन्त्री को सम्राट् का वेश पहनाकर शकटार ने उसे राजसभा में उपस्थित कर दिया था। इस प्रकार महामन्त्री शकटार के कौशल से सम्राट् के घायल होने की बात भी जनता तक नहीं पहुँच पाई थी।

पर कुमार सुमाल्य वास्तविकता को जानता था। अपनी प्रेयसी मदनिका की इस प्रकार वीभत्स रूप से हुई हत्या उसके हृदय को उद्विग्न किए हुए थी। उसका परम सहायक और मित्र वक्रनास नाम का एक आचार्य था, जिसे उसकी शिक्षा के लिए शकटार ने नियुक्त किया था। वक्रनास दण्डनीति का पण्डित था और राजनीति के औशनस सम्प्रदाय का अनुयायी था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह हीन-से-हीन उपाय का अवलम्बन करना अनुचित नहीं समझता था। उसके हृदय में यह महत्त्वाकांक्षा थी कि मेरा शिष्य सुमाल्य शीघ्र-से-शीघ्र मागध साम्राज्य के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो और मैं महामन्त्री के पद को प्राप्त करूँ। इसीलिए वह सुमाल्य के साथ मिलकर महापद्म नन्द और शकटार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में तत्पर था। यह उसी की योजना थी कि मदनोत्सव के अवसर पर युवती मदनिका वृद्ध महापद्म नन्द की काम-वासना को उद्दीप्त कर दे और जब महापद्म उसके साथ कक्ष्या विभाग में चला जाए, तब वह उसकी हत्या कर दे। शकटार के आदेश से मदनोत्सव में सम्मिलित सब स्त्री-पुरुषों की सूक्ष्मता के साथ जाँच कर ली गई थी। पर मदनिका ने अपनी वेणी को बाँधते हुए लोहे के ऐसे काँटों का प्रयोग किया था, जो विष में बुझे हुए थे। इन पर विराधगुप्त की विश्वस्त परिचारिकाओं ने सन्देह नहीं किया और मदनिका महापद्म पर आक्रमण करने में सफल हो गई। मदनिका को यह आश्वासन दे दिया गया था कि सुमाल्य के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने पर वह उससे विवाह कर लेगा और मागध साम्राज्य की राजमहिषी का पद उसे प्राप्त हो जाएगा। सुमाल्य के प्रेम में मतवाली मदनिका को अपने भावी उत्कर्ष में कोई भी सन्देह नहीं था।

मदनोत्सव के अगले दिन सुमाल्य ने आचार्य वक्रनास से भेंट की। राजप्रासाद का कोई भी स्थान ऐसा नहीं था, जिसे वे गुप्त समझ सकते।

इसलिए नौका पर बैठकर वे शोण नदी के पार चले गए और वहाँ एकान्त स्थान पाकर उन्होंने गुप्त मन्त्रणा प्रारम्भ की।

'अब मेरा क्या होगा, आचार्य! मदनिका को मैं हृदय से प्यार करता था। वह बेचारी मारी गई और महापद्म नन्द का बाल तक भी बांका नहीं हुआ। आज सुबह वह बूढ़ा सम्राट् कितनी शान के साथ राज-सभा में उपस्थित हुआ था।

'जिसे तुम सम्राट् कहते हो, वह शकटार का एक छद्मवेशधारी गुप्तचर था, कुमार! तुम्हारा वृद्ध पिता अपने प्रासाद के एक कमरे में पीड़ा से तड़पता हुआ जीवन के अन्तिम सांस ले रहा है। मैं कच्चा काम नहीं किया करता, सुमाल्य! मदनिका ने जिन कांटों से महापद्म नन्द पर आक्रमण किया था, वे ऐसे तीव्र विष से बुझाए गए थे, जिसका इलाज धनवन्तरि के पास भी नहीं है। मदनिका मारी गई, इसका मुझे हार्दिक दुःख है। पर तुम चिन्ता न करो। सम्राट् बनते ही रति के समान सुन्दर कितनी ही युवतियां तुम्हारी सेवा में उपस्थित कर दी जाएँगी।'

'यदि पिता की मृत्यु के बाद भी शकटार ने इस छद्मवेशधारी व्यक्ति को ही असली सम्राट् बनाए रखा, तो क्या होगा, आचार्य!'

'हाँ, यह भी सम्भव है। शकटार भलीभाँति जानता है कि तुम्हारे सम्राट् बन जाने पर वह महामन्त्री नहीं रह सकेगा। वह तुम्हें सम्राट् पद के योग्य नहीं समझता। इसलिए यह असम्भव नहीं है कि वह महापद्म नन्द की मृत्यु की बात किसी के सम्मुख प्रकट ही न होने दे और अपने इस गुप्तचर को ही असली सम्राट् जताकर राजकार्य का संचालन करता रहे। मैं इस गुप्तचर को जानता हूँ। इसका नाम विरुधक है। इसकी शक्ल तुम्हारे पिता से खूब मिलती है। राजकीय वस्त्र पहनकर तो यह बिलकुल महापद्म नन्द ही मालूम देता है। पर तुम इसकी चिन्ता न करो, कुमार! सम्राट् के प्रासाद और अन्तःपुर के कितने ही प्रहरी, सैनिक, दासियाँ और दास गुप्त रूप से मुझसे मिले हुए हैं। मैंने उन्हें लालच देकर अपने साथ मिला लिया है।'

'मुझे आपकी कूटनीति और मन्त्र बल पर पूरा विश्वास है, आचार्य!'

'तो यह तो निश्चित है न, कि राजसिंहासन पर आरूढ़ होते ही तुम मुझे महामन्त्री के पद पर नियुक्त कर दोगे? मुझे धोखा तो नहीं होगा, सुमाल्य? तुम जानते ही हो, शकटार का मैं आदर करता हूँ। अपने प्रिय शिष्य को राजमुकुट धारण किए हुए देखने के लिए ही मैं शकटार के विरुद्ध इस षड्यन्त्र में लगा हूँ।'

'आप मुझ पर पूर्ण विश्वास रखें, आचार्य।'

दो दिन बाद सम्राट् महापद्म नन्द की मृत्यु हो गई। शकटार ने उनकी चिकित्सा के लिए कोई कसर नहीं उठा रखी। पर उनके सारे शरीर में विष फैल गया था और उस कालकूट का कोई इलाज शकटार के विष-चिकित्सकों के पास नहीं था। अब शकटार ने यह प्रयत्न किया कि महापद्म नन्द की मृत्यु की बात को कोई न जान सके। पर सम्राट् की परिचर्या के लिए जो दासियां नियुक्त थीं, उनमें से एक वक्रनास के साथ मिली हुई थी। महापद्म के प्राणत्याग करते ही उसने फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया। शकटार ने बहुत यत्न किया, कि उसे चुप रखे। पर वह चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी—'हाय! मेरे भाग्य फूट गए। महापद्म मुझ से कितना प्रेम करते थे। मैं उनकी अंकशायिनी थी। हाय! मैं विधवा हो गई। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?'

दासी का रुदन सुनकर बहुत-से लोग वहाँ एकत्र हो गए। आन्तवंशिक सेना के जो सैनिक वक्रनास से मिले हुए थे, उन्होंने भी रोना-चिल्लाना शुरू कर दिया। क्षण-भर में सारे प्रासाद में कोहराम मच गया। अब शकटार के लिए यह सम्भव नहीं रहा कि वह सम्राट् के स्वर्गवास की बात को गुप्त रख सके। उसे यह बात प्रकट करनी ही पड़ी। उसने घोषित किया कि सम्राट् महापद्म नन्द स्वर्ग को सिधार गए हैं, और दस दिन तक सारे साम्राज्य में शोक मनाया जाएगा। पाटलिपुत्र की सब पण्यशालाएँ, क्रीड़ा-गृह और राजकीय विभाग इस काल में बन्द रहेंगे।

सुमाल्य महापद्म नन्द का ज्येष्ठ पुत्र था। पिता की मृत्यु के बाद उसी को मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होना था। विवश होकर आचार्य शकटार को भावी के सम्मुख सिर झुका देना पड़ा। राजसिंहासन पर आरूढ़ होते ही सुमाल्य ने शकटार पर यह दोष लगाया, कि महामन्त्री ने छद्मवेश-धारी विरुधक को सम्राट् महापद्म नन्द का वेश पहनाकर राजसभा में उपस्थित किया था। शकटार समझ गए थे कि अब उनके भाग्यसूर्य के अस्त होने का समय आ गया है। उन्होंने चुपचाप भवितव्यता के आगे सिर झुका दिया। उन्हें न केवल महामन्त्री पद से च्युत ही किया गया, अपितु साथ ही गिरफ्तार कर बन्दीगृह में भी डाल दिया गया। महापद्म नन्द का वह प्रतापी और चाणाक्ष मन्त्री, जिसके कारण मागध सम्राटों की विजय-पताका सुदूर सौराष्ट्र और कर्णाटक तक में फहराने लगी थी, अब सुमाल्य नन्द के बन्दीगृह में एक सामान्य कैदी के समान जीवन व्यतीत करने लगा। राज्यश्री कितनी चञ्चला होती है, इस बात का इससे बढ़कर उदाहरण और क्या

हो सकता है ?

सुमाल्य नन्द ने आचार्य वक्रनास को महामन्त्री के पद पर नियत किया। वक्रनास बड़ा कूटनीतिज्ञ था। उसका विचार था कि राजाओं के मन का क्या ठिकाना ? आज उनकी जिनपर कृपा है, कल वे उनके कोपभोजन भी हो सकते हैं। अतः उसने निश्चय किया कि सुमाल्य नन्द को भोगविलास और नाच-रंग में इस प्रकार डुबा दिया जाए कि राज्यकार्य की ओर ध्यान दे सकने की उसमें क्षमता ही न रहे। राज्यशासन का सब भार वक्रनास पर छोड़कर वह रात-दिन मदिरा सेवन और कामसुख में ही व्यस्त रहे। इस उद्देश्य से वक्रनास ने राजप्रासाद में एक नए क्रीड़ागृह का निर्माण कराया। इसे नग्न मूर्तियों और कामवासना को उद्दीप्त करने वाले तैलचित्रों से सजाया गया। मदिरा की पाटलिपुत्र में क्या कमी थी ? मेदक, प्रसन्न, मृद्वीका, मैरेय, मधु, अरिष्ट आदि विविध प्रकार की मदिराओं से इस क्रीड़ागृह के पानागार को परिपूर्ण कर दिया गया। विशाल मागध साम्राज्य के सब प्रदेशों से पेशलरूपा गणिकाओं और रूपाजीवाओं को एकत्र किया गया। साम्राज्य के बाहर वाहीक, कपिश, बाल्हीक आदि देशों की रूपाजीवाओं को भी सुमाल्य नन्द के क्रीड़ागृह में आमन्त्रित किया गया। ये सब गणिकाएँ जहाँ रूप और यौवन में अद्वितीय थीं, वहाँ साथ ही संगीत, वादन, चित्रण, कला और नृत्य आदि शिल्पों में भी प्रवीण थीं। मागध साम्राज्य का राजकोष धनधान्य से भरा-पूरा था। जरासन्ध के समय से लेकर महापद्म नन्द के काल तक सभी मागध सम्राटों का यह प्रयत्न रहा था कि संसार-भर के रत्न, मणि, सुवर्ण, हीरक आदि उनके कोश में संचित होते जाएँ। सुमाल्य नन्द ने अब इस कोश को पानी की तरह बहाना शुरू किया। प्रतिदिन सायंकाल क्रीड़ागृह में नाच-रंग शुरू होता। सुमाल्य नन्द अपनी मित्र-मण्डली के साथ इसमें शामिल होता, और संगीत, नृत्य और मदिरा के उन्माद में सब लोग अपनी सुध-बुध भूल जाते। राजप्रासाद का यह क्रीड़ागृह वीणा-वेणु-मृदङ्ग आदि के संगीत-स्वर से सदा परिपूर्ण रहता। जब रूपाजीवाएँ नग्नप्राय होकर अपना नृत्य शुरू करतीं, तो पेशलरूपा दासियाँ मृद्वीका के चषक लेकर सुमाल्य नन्द और उसके मित्रों के पार्श्व में खड़ी हो जातीं। अभी एक चषक समाप्त भी नहीं होता था, कि वे दूसरा भरकर सामने कर देती। मदिरा के प्रभाव से सुध-बुध खोए हुए पुरुष इन दासियों को अंक में भर लेते, और ये हंसती इठलाती हुई उनकी गोद में लुढ़क जातीं। आधी रात तक यह क्रम चलता रहता। क्रीड़ागृह के पार्श्व में बहुत से कक्ष्या विभाग बने हुए थे, जो शय्या, आसन, पान

आदि से भलीभाँति सुसज्जित थे। आधी रात होने पर सुमाल्य और उसके मित्र इन कक्ष्या विभागों में चले जाते, जो कोई रूपाजीवा उन्हें पसन्द हो उसे अंक में भरकर। सुबह दस बजे तक उनकी नींद न खुलती, और अगले दिन साँझ से फिर यही क्रम शुरू हो जाता।

वक्रनास बहुत प्रसन्न था, अपनी कूटनीति की सफलता पर। अब वह मागध साम्राज्य का कर्त्ता-धर्त्ता था। वह जो चाहता, सो करता। उसकी इच्छा ही अब मगध में कानून थी। वे सब लोग बन्दीगृह में डाल दिए गए, जो शकटार के विश्वस्त कर्मचारी थे। दौवारिक और आन्तर्वंशिक के पदों पर नए अमात्य नियत किए गए। मदनिका की स्मृति में एक नए मन्दिर का निर्माण किया गया, जिसमें भगवती मदिरा की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। मदनिका की हत्या के दिन प्रतिवर्ष इस मन्दिर में महोत्सव मनाया जाता और नाच-रंग तथा मृद्वीकापान का एक प्रवाह-सा तब उमड़ पड़ता।

सुमाल्य नन्द को भोगविलास में फँसाकर ही वक्रनास निश्चिन्त नहीं हो गया था। वह जानता था, कि जिस प्रकार के षड्यन्त्र और कुचक्र से उसने महापद्म नन्द का घात किया है, वैसा ही षड्यन्त्र सुमाल्य के विरुद्ध भी हो सकता है। बन्दीगृह में पड़ा हुआ शकटार शान्त नहीं बैठा रहेगा, यह भी उसे ज्ञात था। शकटार की बुद्धि और प्रभाव से वह भलीभाँति परिचित था। इसीलिए उसने यह आज्ञा प्रचारित की कि शकटार को भोजन के लिए दिन-भर में केवल कुछ शाक और एक पात्र पानी ही भेजा जाए। वह समझता था कि इस व्यवस्था से शकटार कुछ महीनों में स्वयं ही भूख से तड़प-तड़पकर प्राण दे देगा और वह ब्रह्महत्या के पाप का भी भागी नहीं होगा।

(१६)

चन्द्रगुप्त और सिकन्दर

अश्वक और अश्वाटक जनपदों को जीतकर सिकन्दर की यवन सेनाएँ वायुवेग से भारत की ओर बढ़ रही थीं। संजय और सिंहनाद को अपना दूत बनाकर भेजकर भी आम्भि सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने सोचा, मुझे स्वयं सिन्ध नदी पार कर सिकन्दर से भेंट करनी चाहिए। वह अपनी अंगरक्षक सेना को साथ लेकर पश्चिम की ओर चल पड़ा, और पुष्करावती पहुँचकर

सिकन्दर की यवन सेनाओं के साथ जा मिला। उस समय यवन सेनाओं ने पुष्करावती का घेरा डाल रखा था। वहाँ का राजा हस्ती बड़ी वीरता के साथ विदेशी सेनाओं से युद्ध कर रहा था। एक मास तक पुष्करावती की भारतीय सेना और सिकन्दर की यवन सेना में लड़ाई होती रही। आम्भि की अंगरक्षक सेना ने जी-जान से सिकन्दर की सहायता की। अन्त में हस्ती पराजित हुआ और पुष्करावती पर सिकन्दर का कब्जा हो गया। यवनों ने पुष्करावती की विजय का उत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया। सिकन्दर न केवल अनुपम वीर था, अपितु चाणाक्ष राजनीतिज्ञ भी था। इस उत्सव में उसने आम्भि का बड़ा सम्मान किया। वह भलीभाँति जानता था कि वाहीक देश के विविध जनपदों को विजय करने में आम्भि का सहयोग बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। वाहीक देश की भौगोलिक स्थिति और उसके विविध जनपदों की सैन्यशक्ति के सम्बन्ध में सिकन्दर का ज्ञान न के बराबर था। वह अनुभव करता था कि आम्भि की सहायता के बिना उनको परास्त कर सकने में उसे कठिनता होगी। इसलिए आम्भि का अभिनन्दन करते हुए उसने कहा—'गान्धारराज! भारत और यवन देश के लोग एक ही आर्यजाति की दो शाखाएँ हैं। आपके समान हम लोग भी देवी-देवताओं में विश्वास रखते हैं, अर्घ्य और बलि द्वारा उनकी पूजा करते हैं। प्राचीन आर्य-परम्परा का अनुसरण करते हुए मैं चाहता हूँ कि पुष्करावती का शासन-सूत्र भी आप अपने हाथों में ले लें। पुष्करावती उसी गान्धार देश का पश्चिमी भाग है, जिसके पूर्वी भाग पर आपका शासन है। पुष्करावती के आपके शासन में आ जाने पर सम्पूर्ण गान्धार जनपद एक हो जाएगा।'

'यह आपकी बड़ी कृपा है, यवनराज! पर मैं तो केकयराज को नीचा दिखाने के लिए उत्सुक हूँ। वाहीक देश में केकय जनपद इस समय सबसे प्रबल है। अभिसार और उरशा उसके अधीन हैं। केकयराज पोरु सम्पूर्ण वाहीक देश को जीतकर चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है। जिस दिन मैं आपकी यवन सेनाओं के सहयोग से पोरु को परास्त कर दूँगा, उसी दिन मेरे हृदय की ज्वाला शान्त होगी। अतः पुष्करावती के शासन-सूत्र को संभालने के आपके आदेश का पालन न कर सकने के लिए मुझे क्षमा करें, महाराज!'

'क्यों आम्भि! यदि पुष्करावती का शासक कुमार संजय को नियत कर दिया जाए, तो कैसा होगा? मैंने सुना है, वह भी गान्धार के राजकुल का है।'

'आपका यह विचार अत्यन्त उत्तम है, यवनराज ! संजय मेरा भाई है, मेरे पितृव्य का पुत्र है। आप उस पर पूर्ण विश्वास कर सकते हैं।'

'तो यही सही। संजय ! पुष्करावती का शासन मैं तुम्हारे सुपुर्द करता हूँ।'

'जो आज्ञा, यवनराज !' संजय ने सिर झुकाकर उत्तर दिया।

'सिन्धु नदी से वंक्षु नदी तक जो यह विशाल प्रदेश है, उसमें बहुत-सी वीर जातियाँ निवास करती हैं। मुझे कदम-कदम पर उनके साथ युद्ध करना पड़ा है। इन जातियों को अपने आर्यरक्त का अभिमान है, और अपनी स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त करने के लिए ये बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करने में जरा भी संकोच नहीं करेंगी। संजय ! इन सब को तुम्हें काबू में रखना होगा। मेरी एक सेना पुष्करावती में रहेगी। पर तुम अपनी नीति-कुशलता से इन आर्य जातियों को विद्रोह करने से रोके रहोगे, मुझे इस बात का पूरा भरोसा है।'

'अपने कर्त्तव्य का मैं भलीभाँति पालन करूँगा, यवनराज !'

संजय को पुष्करावती का शासक नियत कर सिकन्दर पूर्व की ओर आगे बढ़ा। गान्धारराज आम्भि की सहायता से उसने सिन्धु नदी पार की। उस युग में वाहीक देश की इन नदियों में नौकाओं का आवागमन बहुत अधिक था। बड़ी-बड़ी नौकाएँ दूर-दूर तक व्यापार के लिए आती-जाती रहती थीं। आम्भि के आदेश से गान्धार जनपद के नावध्यक्ष ने हजारों छोटी-बड़ी नौकाएँ उस स्थान पर एकत्र कर ली थीं, जहाँ से सिकन्दर को सिन्धु नदी पार करनी थी। सिन्धु को पार कर सिकन्दर ने बड़ी धूम-धाम के साथ तक्षशिला में प्रवेश किया। यवनराज के स्वागत के लिए तक्षशिला नगरी खूब सजायी गई थी। जगह-जगह पर स्वागतद्वारों का निर्माण किया गया था, और पुष्पों व पत्रों की मालाएँ सम्पूर्ण राजमार्ग पर लटका दी गई थीं। आम्भि के आदेश से तक्षशिला की पौरसभा के सदस्य नगर के बाहर दो योजन की दूरी पर सिकन्दर की अभ्यर्थना के लिए एकत्र हुए और बड़े उत्साह से यवनराज को अपने साथ लिवा ले गए।

दो सप्ताह तक सिकन्दर तक्षशिला में रहा, अपनी विजय-यात्रा की थकान को मिटाने के लिए और आगे के आक्रमणों की तैयारी के लिए। इस काल में यवन सैनिकों ने तक्षशिला में खूब आनन्द मनाया। वहाँ के क्रीड़ागृह सदा यवन सैनिकों से परिपूर्ण रहते, खूब शराब ढलती और रूपाजीवाएँ सहमी-सी हुई इन विदेशी सैनिकों को प्रसन्न करने के लिए कटिबद्ध रहतीं। आम्भि ने आज्ञा प्रचारित कर दी थी, कि क्रीड़ागृहों में यवन

सैनिकों से कोई शुल्क न लिया जाए। वे जहाँ चाहें, जाएँ; जिस ढंग से चाहें, आमोद-प्रमोद करें। आम्भि ने अपने आदेश में यह भी कहा था कि जो गणिका यवनों से घृणा प्रदर्शित करेगी, उनके पास जाने से इन्कार करेगी, उसे पाँच सहस्र कार्षापण दण्ड में देना होगा और उसे एक हजार तक बेतें भी लगाई जा सकेंगी। इस आदेश से तक्षशिला के क्रीड़ागृहों में एक प्रकार का आतंक-सा छा गया था। यवन सैनिकों की उच्छृङ्खलता से सब लोग परेशान थे, पर किसी में यह साहस नहीं था कि उनके खिलाफ आवाज उठा सके।

मोरिय गण का राजकुमार चन्द्रगुप्त जिस अवसर की प्रतीक्षा में था, वह अब उपस्थित हो गया था। एक दिन सुबह के समय जब सिकन्दर तक्षशिला का भ्रमण करने के लिए निकला, तो चन्द्रगुप्त उससे भेंट करने के लिए आगे बढ़ आया। जब यवनराज के अंगरक्षकों ने उसे रोकना चाहा, तो उसने दर्प के साथ कहा—'मैं राजकुमार हूँ, और यवनराज से बात करना चाहता हूँ।'

'तुम्हें यवनराज से क्या काम है?'

'यह मैं उन्हीं से कहूँगा। राजकुमार साधारण सैनिकों से बात नहीं किया करते। मेरे साथ ढंग से बात करो, जैसे राजकुल के व्यक्तियों के साथ की जाती है। मुझे यह अभ्यास नहीं है, कि गुरुजनों के अतिरिक्त अन्य कोई मुझ से 'तुम' कहकर बोले।'

सिकन्दर इस युवक की बात को ध्यान से सुन रहा था। उसने अपने अंगरक्षकों को आदेश दिया कि आज तीसरे पहर राजभवन में मुझसे भेंट करने के लिए इस युवक से कह दें।

ठीक समय पर चन्द्रगुप्त सिकन्दर की सेवा में उपस्थित हुआ।

'मोरियगण का राजकुमार यवनराज को प्रणाम करता है।' चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर से कहा।

'प्रणाम, राजकुमार! कहिए, मुझसे क्या कार्य है?'

'मगधराज ने मेरी मातृभूमि पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया है। मेरी माता मगधराज के अन्तःपुर में दासी का जीवन व्यतीत करने के लिए विवश की गई है। मैं इस अपमान का प्रतिशोध करना चाहता हूँ, यवनराज!'

'पराजित जनपदों के साथ तो यह व्यवहार उचित ही है।'

'तो क्या आप यह समझते हैं कि मेरी माता का दासी जीवन उचित है?'

'कितने ही राजकुलों की भद्र महिलाएं यवन देश में दासी का जीवन बिता रही हैं। मेरे साथ यहाँ भी कितनी ही ऐसी दासियाँ हैं, जो कल तक राजमहिषियाँ थीं।'

'तो क्या आप भी भारत के जनपदों को परास्त कर उनकी राज-कुमारियों और भद्र महिलाओं के साथ यही व्यवहार करना चाहते हैं?'

'परास्त देशों की और क्या गति हो सकती है, कुमार?'

'पर मैं तो आर्य नारियों की इस दुर्गति को कभी सहन नहीं कर सकता। आचार्य विष्णुगुप्त ने ठीक ही कहा था—तुम्हें अपनी माता के दासी जीवन से कितना उद्वेग होता है, पर उस दिन की तो कल्पना करो, जब इस देश के लाखों नर-नारी विदेशी यवनराज की अधीनता में दास्य-जीवन को व्यतीत करने के लिए विवश होंगे। आचार्य की बात को न मानकर मैंने कितनी भूल की।'

'मोरिय गण के कुमार मुझसे किसलिए मिलना चाहते थे?'

'मगधराज के विरुद्ध यवनराज की सहायता प्राप्त करने के लिए। मेरी इच्छा थी कि जब यवन सेनाएँ मगध पर आक्रमण करें, तो मैं उनके आगे-आगे चलूं। जब पाटलिपुत्र पर यवनों का कब्जा हो जाए, तो नन्द के अपमान को देखकर अपनी आँखों को तृप्त करूँ। जब मगध के राजकुल की स्त्रियाँ बन्दी होकर दासी के रूप में बेची जाएँ, तो उस दृश्य को देखकर अपने हृदय की ज्वाला को शान्त करूँ। पर अब मेरी आँखें खुल गई हैं। आचार्य विष्णुगुप्त का प्रवचन मेरे कानों में गूँज रहा है। यवन सेनाओं की इस विजय से आर्य जाति का कितना घोर अपमान होगा, आर्य धर्म और आर्य संस्कृति का कैसा भयंकर विनाश होगा! मगध का अपमान मैं सह सकता हूँ, उसके राजकुल से मेरी शत्रुता है। पर आर्यों की इस विशाल भूमि के अपमान की कल्पना तक मुझे असह्य है।'

'यह विष्णुगुप्त कौन है, आम्भि?' सिकन्दर ने पास बैठे हुए गान्धार-राज से प्रश्न किया।

'इस विश्वविख्यात गुरु के सम्बन्ध में किस ढंग से बात करते हो, यवनराज! अपने आचार्य के इस अपमान को मैं कभी नहीं सह सकता।' चन्द्रगुप्त ने कहा।

'पकड़ लो, इस आदमी को। इसे इसी क्षण जंजीरों से बाँध लो।' सिकन्दर ने आदेश दिया।

पर चन्द्रगुप्त ने वस्त्र के नीचे छिपाई हुई कटार को तुरन्त बाहर निकाल लिया। रोष से चमचमाते हुए उसके मुख की विकट मुद्रा को

देखकर सिकन्दर के किसी सैनिक का यह साहस नहीं हुआ कि उसके मार्ग को रोक सके। कटार को घुमाते हुए चन्द्रगुप्त यवन सैनिकों के बीच में से होकर बाहर चला गया।

सिकन्दर ने चिल्लाकर कहा—'देखते क्या हो ? पकड़ते क्यों नहीं इसे ? जीवित या मृत—तुरन्त इसे मेरे सामने हाजिर करो।'

पर चन्द्रगुप्त तीर की तरह तेजी से बाहर चला गया था। यवन सैनिकों ने उसका पीछा किया। पर वह उनके हाथ नहीं आया।

'कौन है यह विष्णुगुप्त, और कौन है यह उद्दण्ड साहसी युवक ?' सिकन्दर ने फिर प्रश्न किया।

हाथ जोड़कर गान्धारराज आम्भि ने उत्तर दिया—'आचार्य विष्णुगुप्त तक्षशिला के विश्वविख्यात आचार्यों में सर्वप्रधान हैं। भारत में कोई भी ऐसा जनपद नहीं है, जिसके अमात्य उनके सहपाठी या शिष्य न हों। यह युवक उनका अन्यतम शिष्य है।'

'विष्णुगुप्त को मेरे सम्मुख उपस्थित करो।'

'वह इस समय तक्षशिला में नहीं हैं, यवनराज !'

'वह अब कहाँ हैं ?'

'मगध की ओर गए हैं।'

'किस लिए ?'

'उनका विचार है कि हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस भारत भूमि को एक राजनीतिक सूत्र में संगठित होना चाहिए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ?'

'तुमने इतने खतरनाक आदमी को गिरफ्तार क्यों नहीं कर लिया, आम्भि ?'

'यह असम्भव था, यवनराज ! गान्धार की प्रजा इसे किसी भी दशा में सहन न कर सकती। सर्वत्र विद्रोह हो जाता। इस अलौकिक महापुरुष के सम्मुख आँख उठाने तक का साहस किसी में नहीं है, यवनराज ! मैं स्वयं उनका शिष्य हूँ। मैंने तो उस समय शान्ति अनुभव की, जब वे तक्षशिला छोड़कर चले गए। उनके यहाँ रहते हुए गान्धार की प्रजा यवनराज की अधीनता को कभी भी स्वीकार न करती।'

'अच्छा, आम्भि ! तुम जाओ। मैं नहीं जानता था कि तुम इतने कायर हो। तुम कायर हो, यह तो मैं तभी समझ गया था, जब तुम्हारा दूत संजय मेरी सेवा में उपस्थित हुआ था। पर तुम एक मामूली अध्यापक पर भी हाथ उठाने का साहस नहीं कर सकते, यह मुझे मालूम नहीं

था। अच्छा, तुरन्त जाओ और इस नवयुवक को गिरफ्तार करने का प्रबन्ध करो। वितस्ता नदी को पार कर यह गान्धार जनपद से बाहर न जाने पाए।'

'आपका आदेश सिर-आँखों पर है, यवनराज!'

आम्भि ने कुमार चन्द्रगुप्त को गिरफ्तार करने के लिए सब ओर अपने सैनिक दौड़ा दिए। पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। मोरियगण के इस कुमार में अदम्य साहस था। वह तीर के समान तेजी से वितस्ता नदी के पार हो गया। इस समय उसके सम्मुख एक ही लक्ष्य था, जल्दी-से-जल्दी पाटलिपुत्र पहुँचना और आचार्य विष्णुगुप्त से मिलकर उनके आदेश का पालन करना।

(१७)

केकय की पराजय

केकय के मन्त्रणागृह में बैठे हुए पाँच व्यक्ति धीरे-धीरे बातचीत करने में व्यस्त थे। आचार्य इन्द्रदत्त ने गम्भीरतापूर्वक अपने पास बैठे हुए व्यक्ति से कहा—

'व्याडि! तो गान्धार जनपद ने यवनराज के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया है?'

'हाँ, आचार्य! आचार्य विष्णुगुप्त का शिष्य आम्भि इतनी नीचता करेगा, इसकी आशा नहीं थी।'

'पर तक्षशिला की पौरसभा में जो कुलमुख्य हैं, वे क्यों यवनराज के सम्मुख सिर झुका देने को तैयार हो गए? हमारे जो गूढ़पुरुष और सत्री तक्षशिला में नियुक्त हैं, उन्होंने पौरों को यवनराज के विरुद्ध विद्रोह कर देने के लिए प्रेरित क्यों नहीं किया?'

'उन्होंने सब प्रयत्न किया, आचार्य! पर तक्षशिला के कुलमुख्यों में अपना जातीय अभिमान जरा भी शेष नहीं रह गया है। वे सन्तुष्ट हैं, अपने वैभव से, अपनी समृद्धि से, अपने विलासमय जीवन से और अपने नाच-रंग से। तभी तो हम भी गान्धार जनपद को इतनी सुगमता से अपनी अधीनता में ला सके थे। तक्षशिला के पौर कहते हैं, केकय के सम्मुख हमने सिर झुका दिया था, तो इससे हमारा क्या बिगड़ गया। अब यवन-राज की अधीनता स्वीकार कर लेने से भी हमारी क्या हानि होगी?'

'क्या उनकी दृष्टि में केकयराज और यवनराज में कोई अन्तर नहीं है, व्याडि ?'

'तक्षशिला की पौरसभा में ऐसे सदस्य भी हैं, जो यवनों के आक्रमण को चिन्ता की दृष्टि से देखते हैं। पर उनका विचार है कि यवन सेना एक आँधी की तरह से आई है, आँधी की तरह से ही लौट जाएगी। यवन लोग स्थायी रूप से वाहीक देश में नहीं रहेंगे।'

'यह उनकी भूल है, व्याडि ! सारी पृथिवी पर ऐसा रमणीक और धन-धान्य से पूर्ण देश अन्य कोई नहीं है। यहाँ के सोना उगलते हुए खेत, यहाँ का-सा आसमान में चमकता हुआ सूर्य, यहाँ की-सी तारों-भरी रातें अन्यत्र कहाँ हैं ! यवन लोग इस सुवर्णभूमि को छोड़कर स्वयं अपने देश को लौट जाएँगे, यह समझना भारी भूल है, व्याडि ! अच्छा, सेनापति व्याघ्रपाद ! कहिये, आपकी सेनाओं का क्या हाल है ? वे यवनराज का मुकाबिला करने के लिए तैयार हैं न ?'

'हाँ, आचार्य ! केकय के सैनिक युद्ध के लिए उतावले हो रहे हैं। बहुत दिनों से उन्हें अपनी तलवार का जौहर दिखाने का अवसर नहीं मिला। अभिसार जनपद ने बिना युद्ध के ही केकयराज की अधीनता स्वीकृत कर ली और गान्धार व्याडि के मन्त्रयुद्ध से ही परास्त हो गया। यवनों के रक्त का पान कर हमारे सैनिकों की तलवारें तृप्ति अनुभव करेंगी। केकय की सेना बिल्कुल तैयार है, आचार्य !'

'देखो, व्याघ्रपाद ! केवल उत्साह और उमंग से ही युद्ध नहीं जीते जाते। यवनराज की व्यूह-रचना बड़ी अद्भुत है। उसके सैनिक तीस हाथ लम्बे बरछे प्रयोग में लाते हैं। इन सुदीर्घ बरछों की बाढ़ को तोड़कर यवन सैनिकों के पास तक पहुँच सकना सुगम नहीं होता। केकय के सैनिकों की तलवारें तो तभी काम में आ सकती हैं, जब वे शत्रु के समीप तक पहुँच जाएँ। सिकन्दर के सिपाही तो शत्रु को अपने समीप तक आने ही नहीं देते। पहले वे तीर-कमान से लड़ते हैं, फिर अपने तीस हाथ लम्बे बरछों को सामने करके एक दीवार-सी खडी कर देते हैं। इसका क्या उपाय किया है, व्याघ्रपाद !'

'हमारी सेना में एक सहस्र हाथी हैं। अंग और कलिङ्ग के ये हाथी युद्ध में अत्यन्त प्रवीण हैं। केकय की हस्तिसेना का अध्यक्ष एक कलिङ्ग-वीर है, जो पहले मगध की सेना में रह चुका है। हाथियों को यथेष्ट सुरा पिलाकर जब वह उन्हें आगे बढ़ाता है, तो न वे तीरों की वर्षा की परवाह करते हैं, और न बरछों की बाढ़ की। हमारे जंगी हाथियों के सम्मुख

सिकन्दर की सेना खड़ी नहीं रह सकेगी, आचार्य !'

'पर सिकन्दर की सेना में हजारों घुड़सवार सैनिक हैं। युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए वह अपने अश्वारोहियों पर निर्भर करता है। यदि सिकन्दर के अश्वारोही हाथियों के एक तरफ से होकर पदाति-सेना पर टूट पड़े, तब क्या होगा, व्याघ्रपाद ?'

'उसका उपाय भी मैंने पहले ही सोच रखा है, आचार्य ! हाथियों के दोनों ओर हमारी अश्वसेना रहेगी। यवनों के अश्वारोही उससे बचकर आगे नहीं बढ़ सकेंगे।'

'क्यों व्याडि ! क्या यवनों का मुकाबिला करने के लिए तुम्हारे मन्त्र-युद्ध का कोई प्रयोग नहीं हो सकता ?'

'यवन सेना में अपने सत्रियों को भेज सकना सुगम नहीं है, आचार्य ! हमारे सत्री यवनों की भाषा और आचार-विचार से अनभिज्ञ हैं। पर मुझे एक बात समझ में आती है। यवन सेना वितस्ता नदी को पार करके ही तो केकय देश पर आक्रमण करेगी। यदि यवनों को वितस्ता नदी के पार ही न उतरने दिया जाए, तो कैसा रहेगा, आचार्य ! वितस्ता के पुल को मैंने पहले ही तुड़वा दिया है। इस पार के सब घाटों पर मेरे सत्री नियुक्त हैं, जो सिकन्दर की सेना की गति-विधि को ध्यानपूर्वक देखते रहेंगे। जब यवन सेनाएँ वितस्ता को पार करने का प्रयत्न करेंगी, तो वे तुरन्त सूचना दे देंगे। यदि उसी समय उन पर हमला कर दिया जाए, तो कैसा होगा ?'

'तुम्हारी बुद्धि बहुत तीक्ष्ण है, व्याडि ! देखो, व्याघ्रपाद ! अपनी सेना को इस ढंग से छिपाकर रखो कि सिकन्दर उसकी स्थिति और गति-विधि के सम्बन्ध में कुछ भी न जान सके। जब यवन सेनाएँ वितस्ता को पार करने लगें, तो तुरन्त उन पर आक्रमण कर दो !'

अभी आचार्य इन्द्रदत्त अपने सहयोगियों के साथ मन्त्रणा करने में व्यस्त ही थे, कि द्वारपाल ने आकर सूचना दी कि यवनराज के दूत केकय-राज पोरु से भेंट करना चाहते हैं। इन्द्रदत्त ने आदेश दिया, कि दूतों को यहाँ मन्त्रणागृह में ले आओ। केकयराज पोरु यहाँ उपस्थित हैं, और वे यहीं यवनराज के दूतों की बात सुनेंगे।

कुछ देर बाद दो दण्डपालों के साथ सिकन्दर के दूत केकयराज के मन्त्रणागृह में उपस्थित हुए। उन्होंने वाहीक देश की प्रथा के अनुसार सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर पोरु को प्रणाम किया। पोरु का आदेश पाने पर उन्होंने कहा—'महाराज ! हमें यवनराज ने आपकी सेवा में भेजा है। यवनराज का सन्देश है कि गान्धारराज आम्भि के समान आप भी

यवनराज की अधीनता स्वीकृत कर लें। यवन सागर से वितस्ता नदी तक कोई भी ऐसा जनपद नहीं है, जो यवनराज को अपना प्रभु स्वीकार न करता हो। यवनराज की शक्ति अजेय है, उनका प्रभाव अलौकिक है…

यवन दूत ने अपना वक्तव्य अभी समाप्त नहीं किया था कि व्याघ्रपाद ने रोष में भरकर अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली। पर उसका हाथ पकड़कर आचार्य इन्द्रदत्त ने कहा—

'यह मत भूलो, सेनापति ! दूत अवध्य होते हैं।'

'मुझे क्षमा करें, आचार्य ! यवन दूतों की इस अपमानजनक बात को सुनकर मैं आपे से बाहर हो गया था।'

यवनराज का सन्देश सुनकर महाराज पोरु ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—'जाओ, दूत ! यवनराज से कहना, मैं उनसे अवश्य भेंट करूँगा, वितस्ता के तट पर लड़ाई के मैदान में।'

सिर झुकाकर यवनराज के दूत मन्त्रणागृह से विदा हो गए।

'अब देर करने का समय नहीं है। जाओ, व्याडि ! अपने सत्रियों को सावधान कर दो। वितस्ता के पूर्वी घाटों पर वे अपने कर्तव्यपालन के लिए सन्नद्ध हो जाएँ। व्याघ्रपाद ! जाओ, अपनी सेना को तैयार करो। वीर माताएँ जिस दिन के लिए अपने पुत्रों को जन्म देती हैं, वह दिन अब आ उपस्थित हुआ है। और श्रेष्ठी भगदत्त ! तुम्हारी निगम सभा ने क्या कुछ निश्चय किया ?' आचार्य इन्द्रदत्त ने कहा।

'निगम सभा के सब श्रेष्ठी और वैदेहक केकय की रक्षा के लिए अपने सर्वस्व को न्यौछावर करने के लिए तैयार हैं। धन की चिन्ता आप न करें, आचार्य ! हमारे पास जो संचित धन है, वह फिर कब काम आएगा ?'

'मुझे तुमसे यही आशा थी, भगदत्त !, तुम भी जाओ और अपने सब संचित धन को राज्यकोश में भेज दो। सेना के लिए केकय देश को इस समय धन की बहुत आवश्यकता है।'

केकय के लोग यवनराज सिकन्दर के आक्रमण से अपने जनपद की रक्षा करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार थे। उनमें अपूर्व उत्साह था। कुछ दिन तक्षशिला में विश्राम कर सिकन्दर की सेनाएँ वितस्ता के पश्चिमी तट पर आ पहुँचीं। उनके सम्मुख समस्या यह थी कि वितस्ता को किस प्रकार से पार किया जाए। सामने नदी के दूसरे तट पर केकय की सेनाएं तैयार खड़ी थीं, यवनों को जल की धारा में ही डुबाकर मार देने के लिए। व्याडि के गूढ़पुरुष सब जगह तैनात थे, यवन सेना की गति-विधि पर निगाह रखने के लिए। सिकन्दर के सामने अजब परेशानी थी। वह एक

मास से भी अधिक समय तक वितस्ता के पश्चिमी तट पर डेरा डाले पड़ा रहा। वह इसी प्रतीक्षा में था, कि कोई मौका मिले, तो वितस्ता को पार कर केकय पर आक्रमण करे। सारी ग्रीष्म ऋतु इसी ढंग से प्रतीक्षा करते हुए बीत गई। जब वर्षा के दिन आए तो वाहीक देश के नीले आसमान में काली घटाएँ घिर गईं। अमावस की रात को जब सब ओर घनघोर अन्धकार छाया हुआ था, आकाश बादलों से ढँका हुआ था, हाथ को हाथ नहीं सूझता था, सिकन्दर के गुप्तचरों ने आकर बताया कि कोई बीस मील उत्तर की ओर वितस्ता के बीच में एक द्वीप है, जिसके कारण नदी दो धाराओं में विभक्त हो गई है। पश्चिमी धारा गहरी और चौड़ी है, और पूर्वी धारा का जल अधिक गहरा नहीं है। रात के अँधेरे में यदि पश्चिमी धारा को पार कर द्वीप में पहुँच जाएँ, तो पूर्वी धारा के पार उतर सकना कठिन नहीं होगा। सिकन्दर चतुर सेनापति था। उसने अपनी एक सेना को आज्ञा दी कि वह अपने स्कन्धावार के सामने इस ढंग से कार्यवाही शुरू करे, जिससे केकय देश के सत्री यह समझें कि आज की इस काली रात में यवन सेना यहीं से नदी पार करने का प्रयत्न करेगी। वह स्वयं एक दूसरी सेना को लेकर उत्तर की ओर चल पड़ा। व्याडि द्वारा नियुक्त सत्रियों से खबर पाकर व्याघ्रपाद की केकय सेना युद्ध के लिए तैयार हो गई। यवन स्कन्धावार के सामने वह व्यूह-रचना करके खड़ी हो गई। इसी बीच में सिकन्दर की सेना ने अवसर पाकर चोरी-चोरी उस जगह से वितस्ता को पार कर लिया, जहाँ नदी दो धाराओं में विभक्त थी।

पर इससे व्याघ्रपाद निराश नहीं हुआ। उसने अपनी सेना को उत्तर की ओर ले जाकर सिकन्दर का सामना किया। महाराज पोरु स्वयं एक ऊँचे हाथी पर बैठकर इस युद्ध का संचालन कर रहे थे। खूब जमकर लड़ाई हुई। पर यवन सेना के मुकाबिले में केकय जनपद के सैनिकों की संख्या बहुत कम थी। यवन देश, मिस्र, पार्स-साम्राज्य, बाख्त्री आदि के लाखों सैनिक सिकन्दर की सेना में थे। आम्भि भी गान्धार की सेना को साथ लेकर इस युद्ध में सिकन्दर की ओर से लड़ रहा था। दिन-भर केकय वीर यवन सैनिकों का मुकाबिला करते रहे। इस समय आम्भि के हृदय में एक ही आकांक्षा थी, मैं स्वयं पोरु के पास तक पहुँच जाऊँ और अपने हाथ से उस पर आघात करूँ। अन्त में वह सफल हुआ। वह घोड़ा दौड़ाते हुए पोरु के हाथी के पास तक पहुँच गया। पोरु दिन-भर युद्ध करते-करते थक गया था, शत्रु के बरछों और तीरों से उसका शरीर छलनी-छलनी हो रहा था। पर उसने हिम्मत नहीं हारी। घायल हाथ से उसने आम्भि पर बरछा

चलाया, पर गान्धारराज बच गया। इस बीच में पोरु को यवन सैनिकों ने चारों ओर से घेर लिया था और उसकी सेना परास्त हो गई थी।

घायल केकयराज को यवन सैनिकों ने सिकन्दर के सम्मुख उपस्थित किया। सिकन्दर जहाँ स्वयं वीर था, वहाँ साथ ही वीरों का आदर करना भी जानता था। हजारों योजनों की विजय-यात्रा में उसे ऐसा भयंकर युद्ध करने की कहीं भी आवश्यकता नहीं हुई थी। विशाल पार्स साम्राज्य उसके सामने सूखे हुए वृक्ष के समान लड़खड़ाकर गिर पड़ा था। केकय जैसा छोटा-सा जनपद इतनी वीरता से उसके साथ लड़ेगा, इसकी उसे स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। पोरु के सामने आने पर सिकन्दर उठकर खड़ा हो गया और उसे अपने सम्मुख बिठाकर उसने प्रश्न किया—

'कहिए, केकयराज! आपके साथ कैसा बरताव किया जाए?'

'जैसा राजा राजाओं के साथ किया करते हैं, यवनराज!' पोरु नें उत्तर दिया।

'आप सचमुच वीर हैं, केकयराज! मैं आपके साथ एक वीर राजा के समान ही बरताव करूँगा।'

सिकन्दर ने पोरु को अपनी सेना में ऊँचा पद प्रदान किया और केकय, अभिसार तथा उरसा जनपदों का शासन उसी के सुपुर्द कर दिया। पोरु ने भी यवनराज सिकन्दर को अपना अधिपति स्वीकार कर लिया। वह समझता था कि यह बात प्राचीन आर्य परम्परा के अनुकूल है।

जब आचार्य इन्द्रदत्त को यह ज्ञात हुआ कि महाराज पोरु ने यवन-राज की अधीनता स्वीकृत कर ली है, तो उसे बहुत दुःख हुआ। उसका विचार था कि प्रच्छन्न रूप से युद्ध को अभी जारी रखना चाहिए। लड़ाई के मैदान में सिकन्दर की विजय हो गई, तो इससे क्या हुआ। यवनराज के लिए यह असम्भव बना देना चाहिए कि वह केकय पर शासन कर सके। इस समय इन्द्रदत्त सोच रहा था कि आचार्य विष्णुगुप्त के इस कथन में कितनी सत्यता है कि हिमालय से समुद्र-पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण जो आर्यभूमि है, वह एक चक्रवर्ती क्षेत्र है। उस सबको एक राजनीतिक संगठन में संगठित किए बिना यवनों से भारत की रक्षा नहीं की जा सकती।

केकय को परास्त कर और राजा पोरु को अपना मित्र तथा सहकारी बनाकर सिकन्दर पूर्व की ओर निरन्तर आगे बढ़ता गया। केकय से आगे बढ़कर उसने ग्लुचुकायन गण पर आक्रमण किया। ग्लुचुकायन के वीरों ने यवनराज से लड़ने में अद्भुत साहस प्रदर्शित किया। पर पोरु इस समय सिकन्दर के साथ था। वह समझ रहा था कि वाहीक देश के गणराज्यों

को जीतने का यह सुवर्णीय अवसर है। यवन सेनाओं के सामने ठहर सकना किसी भी गणराज्य के लिए सम्भव नहीं होगा। ये सब परास्त हो जाएँगे, और इन सबको सिकन्दर की ओर से मेरी अधीनता में दे दिया जाएगा। पर आचार्य इन्द्रदत्त और व्याडि महाराज पोरु से सहमत नहीं थे। वे कहते थे, यदि वाहीक देश एक बार यवनों के हाथ में चला गया, तो फिर स्वतन्त्र नहीं हो सकेगा। वे पोरु को उकसाते थे, यवनराज असिक्नी (चनाब) नदी पार करते ही विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दो; सुदूर गौरी और सुवास्तु नदियों की घाटियों में अश्वक और अश्वायन सदृश जो आर्य जनपद हैं, वे सिकन्दर के विरुद्ध विद्रोह करने में तत्पर हैं। आर्य लोग कभी किसी विदेशी के दास बनकर नहीं रह सकते। यदि केकय जनपद भी सिकन्दर के असिक्नी पार होते ही उसके विरुद्ध उठ खड़ा हो, तो यवनों का पैर भारत में नहीं जम सकेगा। पर पोरु को इन्द्रदत्त की यह बात समझ में नहीं आती थी। वह सोचता था, वाहीक देश के गणराज्यों को अपनी शक्ति से जीत सकना कितना कठिन था। राजनीति कहती है, लोहे को लोहे से काटो। यवन सेनाएँ यदि इन वाहीक गणों की शक्ति का एक बार अन्त कर दें, तो मेरे लिए सम्पूर्ण वाहीक देश का सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो सकना सुगम हो जाएगा। इस सुवर्णीय अवसर का उपयोग मैं क्यों न करूँ?

इन्द्रदत्त ने अपने सहकारी व्याडि से परामर्श किया। उन्होंने निर्णय किया कि आर्यभूमि की यवनों से रक्षा कर सकने का सामर्थ्य केवल आचार्य विष्णुगुप्त में है। अब हमें उन्हीं का आश्रय लेना चाहिए। वे असिक्नी नदी को पार कर पूर्व की ओर चल पड़े, आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट करने के लिए और उनकी योजना में सहयोग देने के लिए।

(१८)

सांकल का विध्वंस

इरावती (रावी) नदी के पूर्वी तट पर कठ जाति का गणराज्य विद्यमान था, यह हम पहले लिख चुके हैं। कठ लोगों को जब मालूम हुआ कि सिकन्दर की यवन सेनाएँ असिक्नी को पार करके आगे बढ़ रही हैं, तो उनके रोष का ठिकाना नहीं रहा। कठों में न कोई एक राजा था, न कोई एक राजकुल। वहाँ तो प्रत्येक नागरिक स्वयं राजा था, स्वयं अपने को

गण का स्वामी समझता था। यवनराज के आक्रमण के समाचार से सांकल नगरी में हलचल मच गई। तुरन्त सब कुलमुख्य गणसभा के सन्थागार में एकत्र हो गए और हजारों नर-नारी उनके निर्णय को जानने के लिए सन्थागार को घेरकर खड़े हो गए। गणमुख्य वीरधर्मा के अपने आसन पर आरूढ़ होने के साथ सभा की कार्रवाई शुरू हुई। वीरधर्मा ने गम्भीरतापूर्वक अपना भाषण शुरू किया। उसने कहा—'कुलमुख्यो! जिस प्रश्न पर विचार करने के लिए हम यहाँ एकत्र हुए हैं, क्या यह उचित नहीं होगा कि उस पर हम इस सभा में विचार न करें। क्यों न हम उसके लिए एक उपसमिति की नियुक्ति कर दें? गणों के लिए मन्त्र को गुप्त रखना बहुत कठिन होता है। जब युद्ध के बादल सब ओर से घिर रहे हों, तो मन्त्र की गुप्ति बहुत आवश्यक होती है। आपकी इस सम्बन्ध में क्या सम्मति है?'

देवहूति नामक कुलमुख्य ने वीरधर्मा के प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—'कठ गण में आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि किसी प्रश्न पर विचार करने के लिए उपसमिति की नियुक्ति की गई हो। हम अपना गणमुख्य स्वयं चुनते हैं; सेनापति, न्यायाधीश आदि कर्मचारियों की भी चुनाव द्वारा नियुक्ति करते हैं; व्यूह-रचना और सैन्य-संचालन तक पर भी हम गणसभा में विचार करते हैं। गणमुख्य के सम्मुख कौनसा नया भय अब उपस्थित है, जिससे वे उपसमिति की बात प्रस्तावित कर रहे हैं। क्या उन्हें कठों के कुलमुख्यों पर विश्वास नहीं है? कठों में क्या कोई भी ऐसा व्यक्ति है, जो शत्रु से मिल सकता हो? सामूहिक जीवन ही हम कठों की सबसे बड़ी शक्ति है। जिस दिन हम लोग एक दूसरे पर विश्वास करना छोड़कर गुप्त रूप से मन्त्रणा प्रारम्भ कर देंगे, कठ जाति का अन्त हो जाएगा।'

हजारों कठों ने एक साथ देवहूति का समर्थन किया।

वीरधर्मा ने कहा—'कुलमुख्यो! आपकी सम्मति मुझे स्वीकार है। अब आप यवन आक्रमण के सम्बन्ध में अपने-अपने विचार प्रकट करें।'

देवहूति फिर उठकर खड़ा हुआ। उसने कहा—'जब तक एक भी कठ जीवित है, सिकन्दर सांकल पर कब्जा नहीं कर सकेगा। हम अपने गण के लिए, अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए, अपने देवमन्दिरों के मान के लिए अपना सर्वस्व तक स्वाहा कर देंगे।'

हजारों कण्ठों से एक बार फिर हर्षध्वनि प्रवाहित हो गई।

अब सोमश्रवा नामक एक वृद्ध कुलमुख्य खड़ा हुआ। उसके सन के

समान सफेद केश श्मश्रु को देखकर सब लोग दत्तचित्त हो उसकी बात को सुनने के लिए शान्त हो गए। उसने कहा—'सिकन्दर एक असाधारण मनुष्य है। उसकी सेना में लाखों सैनिक हैं। उसकी युद्ध-नीति भी बड़ी जटिल है। उसका सामना करने के लिए केवल भावुकता पर्याप्त नहीं होगी। हमें चाहिए, कि क्षुद्रक और मालवगणों के पास सहायता के लिए सन्देश भेजें। क्षुद्रक और मालव लोग कठों के समान ही वीर हैं। यदि इरावती और विपाशा (व्यास) के तटवर्ती ये तीनों गणराज्य एक साथ मिलकर यवनराज का मुकाबिला करें, तो वह कभी भी हमें परास्त कर सकने में समर्थ नहीं होगा। पर अकेले कठ गण के लिए सिकन्दर को परास्त कर सकना सम्भव नहीं है। अतः मैं प्रस्ताव करता हूँ कि क्षुद्रक और मालव गणों के पास सहायता और सहयोग का सन्देश भेजा जाए।'

'पर यदि इन गणों की सहायता हमें प्राप्त न हो सके, तो क्या हम कायर आम्भि के समान यवनराज के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दें?' देवहूति ने चिल्लाकर कहा। सोमश्रवा ने पहले के ही समान शान्तभाव से उत्तर दिया—'यह मैं कब कहता हूँ? कठ लोग तब तक यवनराज का मुकाबिला करेंगे, जब तक कि हमारा एक बच्चा भी जीवित रहेगा। पर राजनीति यही कहती है कि इस समय हमें अपने पड़ोस के गणराज्यों का सहयोग प्राप्त करने का यत्न अवश्य करना चाहिए?'

सब कुलमुख्यों ने उत्साहपूर्वक वृद्ध सोमश्रवा के प्रस्ताव का समर्थन किया। तीन-तीन दूत क्षुद्रकों और मालवों की सेवा में भेज दिए गए। साथ ही, यह आज्ञा प्रचारित कर दी गई, कि सब कठ नागरिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर व्यूह-रचना के लिए तैयार हो जाएँ। कठों में न कोई मौल सेना थी और न कोई भृत सेना। प्रत्येक कठ युवक जन्मसिद्ध योद्धा होता था। जब आवश्यकता हो, वह अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर लड़ाई के मैदान में उतर आता था। सर्वसम्मति से सोमश्रवा को यवनराज के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सेनापति निर्वाचित कर लिया गया।

पर जिस समय कठ-कुलमुख्य अपने सन्थागार में एकत्र हो यवन सेनाओं का मुकाबिला करने के विषय में मन्त्रणा कर रहे थे, सिकन्दर के गुप्तचर वहाँ उपस्थित थे। गान्धार और केकय इस समय तक यवनों के हाथ में आ चुके थे और उनके राजा उत्साहपूर्वक यवनराज की सहायता कर रहे थे। आम्भि द्वारा नियुक्त गुप्तचरों ने सिकन्दर को यह सूचना दे दी कि कठ लोगों ने क्षुद्रकों और मालवों की सहायता प्राप्त करने के लिए दूत भेजे हैं। सिकन्दर भलीभाँति समझता था कि इन तीन शक्तिशाली

गणराज्यों के 'अभिसंहत' हो जाने पर उसके लिए उन्हें जीत सकना सुगम नहीं होगा। अतः उसने निश्चय किया कि तुरन्त कठ गण पर आक्रमण कर दिया जाए।

कठों के राजदूत क्षुद्रक और मालव गणों के पास पहुँच गए। वहाँ के गणमुख्यों ने उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया। वे इस बात के लिए उत्सुक थे कि जल्दी-से-जल्दी अपनी सेनाओं को कठों की सहायता के लिए भेज दें। पर इससे पूर्व कि ये सेनाएँ सांकल पहुँच पातीं, सिकन्दर की यवन सेनाओं ने कठों की राजधानी का घेरा डाल दिया।

कठ लोग बड़ी वीरता से लड़े। रणक्षेत्र में जाते समय माताओं ने अपने पुत्रों का, पत्नियों ने अपने पतियों का और बहिनों ने अपने भाइयों का सिन्दूर और अक्षत से तिलक किया। जो माताएँ सामूहिक हित के लिए, गण के उत्कर्ष के लिए अपने नन्हे-नन्हे बच्चों को हँसते-हँसते यम देवता के अर्पण कर देती थीं, वे अपने पुत्रों को युद्धक्षेत्र में भेजते हुए क्योंकर अपने मुखों को मलिन करतीं ?

कठ वीरों ने ऐसा भयंकर युद्ध किया कि यवनराज की सेनाएँ थर्रा उठीं। बीस हजार से अधिक यवन सैनिक बात की बात में तलवार के घाट उतार दिए गए। स्वयं सिकन्दर कठों की वीरता को देखकर आश्चर्य-चकित रह गया। यवन सेनापति उसे कह रहे थे, ये कठ मृत्युंजय हैं, वीर-गति से मृत्यु का आलिङ्गन कर लेना इनके लिए गर्व और उल्लास की बात है। इनसे लड़कर कौन जीत सकता है ! पर इसी समय गान्धारराज पोरु एक बड़ी सेना के साथ सांकल आ पहुँचा। अब आर्य का आर्य के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ। आर्यों की तलवारें आर्यों के रक्त से ही अपनी प्यास बुझाने लगीं। यवन देश और गान्धार की सम्मिलित शक्ति के सम्मुख कठ लोग कब तक टिक सकते थे ! अन्त में वे परास्त हो गए। जब कठ स्त्रियों को मालूम हुआ कि सांकल के सब नागरिक युद्ध की अग्नि में अपनी आहुति दे चुके हैं, तब वे हथियार बाँधकर लड़ाई के मैदान में उतर आईं। कठ स्त्रियाँ इस तरह से युद्ध कर रही थीं, मानो सहस्रों रणचण्डियाँ मानव रूप धारण करके आ गई हों। पर अन्त में वे सब भी रणक्षेत्र में काम आ गईं।

सिकन्दर की सेनाओं ने जब सांकल नगरी में विजेता के रूप में प्रवेश किया, तब उन्होंने देखा, वहाँ न कहीं कोई शब्द सुनाई देता है, न कहीं जीवन के कोई चिह्न ही दृष्टिगोचर होते हैं। सांकल नगरी एक विशाल श्मशान के समान हो गई थी, जिसके सब निवासियों ने अपनी मातृभूमि

की रक्षा के लिए हँसते-खेलते अपने जीवन की आहुति दे दी थी। क्रोध से उन्मत्त सिकन्दर ने आज्ञा दी, सांकल को अग्नि के समर्पित कर दो। यवन सैनिकों ने मूक और जीवन-शून्य सांकल को आग लगाकर भस्म कर दिया। कई दिनों तक भयावह चिता के समान सांकल नगरी जलती रही। उसे देखकर सिकन्दर सोचता था, भारत के ये आर्य कैसे वीर हैं, जीवन का इन्हें जरा भी मोह नहीं है, इन्होंने सचमुच मृत्यु को जीत लिया है। जिसने मृत्यु पर विजय पा ली हो, उसे कौन परास्त कर सकता है?

सांकल को ध्वंस कर सिकन्दर पूर्व की ओर आगे बढ़ा। पर उसका हृदय भयभीत था। उसने सुना, विपाशा (व्यास) के परले पार यौधेयों का गणराज्य है, जिसके निवासी कठों के समान ही वीर हैं। अब उसकी हिम्मत टूट गई थी। उसकी सेनाएँ विद्रोह के लिए तैयार हो गई थीं। यवन सैनिक कहते थे, भारत के ये आर्य पार्स लोगों से कितने भिन्न हैं! इनके साथ युद्ध करना तो लोहे की दीवार के साथ सिर टकराना है। कठों से लड़ते हुए तो पचास हजार के लगभग यवन सैनिक काम आ गए, अब यदि यौधेयों के साथ भी इसी ढंग से युद्ध करना पड़ा, तो एक भी यवन सैनिक अपने देश को वापस नहीं जा सकेगा! और यौधेय गण के बाद यमुना के उस पार? वहाँ मगध का वह विशाल साम्राज्य है, जिसकी शक्ति का सारे भारत में लोहा माना जाता है।

बहुत सोच-विचार के बाद अन्त में सिकन्दर ने निश्चय किया कि विपाशा को पार कर और आगे बढ़ना निरर्थक है। विपाशा से वापस लौट जाने में ही यवनों का हित है। उसे ज्ञात था कि वाहीक देश में ही उसे कितने ही अन्य गणराज्यों से युद्ध करना होगा। क्षुद्रक, मालव, शिवि, क्षत्रिय, आग्रेय आदि गणों को परास्त किए बिना वह सकुशल अपने देश को वापस नहीं लौट सकता था।

विपाशा के तट पर सिकन्दर ने देवताओं को बलि दी और उन्हें तृप्त कर अपनी सेना को वापस लौट चलने का आदेश दिया।

(१९)

देवर और भाभी

श्रावस्ती, काशी आदि होता हुआ श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ पाटलिपुत्र जा पहुंचा। उस युग में पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा और समृद्ध नगर

था। मगध के उत्कर्ष के साथ-साथ पाटलिपुत्र का वैभव दिन दूनी और रात चौगुनी गति से बढ़ता गया था। गंगा और शोण के संगम पर स्थित यह विशाल नगर लम्बाई में दस मील और चौड़ाई में दो मील से भी अधिक था। पाटलिपुत्र का निर्माण एक विशाल दुर्ग के रूप में किया गया था, जो चारों ओर एक ऊँचे प्राचीर से घिरा हुआ था। इस प्राचीर पर बहुत से ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बने हुए थे। जिनकी संख्या ५७० थी। सशस्त्र प्रहरी हर समय इन पर पहरा देते रहते थे। प्राचीर के चारों ओर एक परिखा थी, जिसकी चौड़ाई ६०० हाथ और गहराई ४५ हाथ थी। यह सदा जल से परिपूर्ण रहती थी। परिखा में बहुत से मगरमच्छ, सर्प और अन्य हिंस्र जल-जन्तु रहते थे। यदि कोई व्यक्ति जल से भरी हुई परिखा को तैरकर पार करने का यत्न करता, तो उसके लिए इन हिंस्र जन्तुओं से बच सकना असम्भव था। पाटलिपुत्र में प्रविष्ट होने के लिए ६४ महाद्वार बने हुए थे। प्राचीर में जहाँ-जहाँ ये द्वार थे, उनके ठीक सामने परिखा पर लकड़ी के पुल इस ढंग से बनाए गए थे कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें उठाकर ऊपर खींच लिया जा सकता था। जब परिखा के इन पुलों को उठा दिया जाता और प्राचीर के द्वारों को बन्द कर दिया जाता, तो किसी भी व्यक्ति के लिए पाटलिपुत्र में प्रवेश पा सकना असम्भव हो जाता था। विशाल मागध साम्राज्य की इस राजधानी के निवासियों को न किसी शत्रु के आक्रमण का भय था और न आन्तरिक विद्रोह का। वे निश्चिन्त होकर धन कमाने और उसका उपभोग करने में मग्न रहते थे।

श्रेष्ठी धनदत्त अपने सार्थ के साथ तीसरे पहर के समय पाटलिपुत्र पहुँचा। मगध के राजपुरुषों से उसका अच्छा परिचय था। पाटलिपुत्र का दुर्गपाल उसका मित्र था। उसे नगर में प्रविष्ट होने और पण्यशुल्क प्रदान करने में किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। धनदत्त की इच्छा थी कि आचार्य विष्णुगुप्त उसके अतिथि बनकर पाटलिपुत्र में रहें। पर वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे अपने बालसखा शकटार के घर पर ठहरना चाहते थे। श्रावस्ती में ही उन्हें मगध के षड्यन्त्रों का पता चल गया था, और उन्हें ज्ञात था कि शकटार सुमाल्य नन्द के बन्दीगृह में कैद है। श्रेष्ठी धनदत्त को धन्यवाद दे उन्होंने उससे विदा ली और वे सीधे शकटार के घर की ओर चल पड़े।

आचार्य शकटार पाटलिपुत्र के पश्चिमी भाग में निवास करते थे। वहाँ उनका अपना घर था, जो हर समय वक्रनास द्वारा नियुक्त गुप्तचरों से घिरा रहता था। यद्यपि शकटार बन्दीगृह में कैद था, पर पाटलि-

पुत्र में उसके मित्रों की कमी नहीं थी। इसीलिए वक्रनास को सदा भय रहता था कि कहीं शकटार के मित्र उसे बन्दीगृह से मुक्त कराने का यत्न न करें। कौन आदमी शकटार के घर आता है, उसकी पत्नी से मिलता है, उसके पुत्रों से बातचीत करता है, इन सब बातों पर निगाह रखने के लिए वक्रनास ने बहुत-से गुप्तचर नियत किए हुए थे। यही कारण है कि शकटार की पत्नी पार्वती सदा सशंक और भयभीत रहती थी। वह गुप्तचरों के मारे परेशान थी। वक्रनास के कितने ही गुप्तचर वैदेहक (सौदागर), उदास्थित (संन्यासी), तापस व छात्र आदि के भेस बनाकर उसके घर आते-जाते रहते थे। इन लोगों ने पार्वती के सम्बन्ध में बहुत-सी कल्पित और झूठी बातें वक्रनास से जाकर कही थीं, और मागध साम्राज्य का यह नया महामन्त्री इस बात की फिकर में था कि शीघ्र ही पार्वती और उसके पुत्रों को भी बन्दीगृह में डाल दे।

आचार्य विष्णुगुप्त सीधे शकटार के घर गए। शकटार का छोटा लड़का ब्रह्मदत्त उस समय मकान के बाहर खेल रहा था। विष्णुगुप्त ने उससे पूछा—

'आचार्य शकटार का घर यही है क्या ?'

'जी, हाँ।'

'क्या तुम उनके पुत्र हो, तात ?'

'जी, हाँ !'

लड़का कुछ सहमा-सा हुआ था। विष्णुगुप्त ने उसके हाथ में कुछ मोदक दिए और कहा—'जाओ, अपनी माताजी से कहो, तक्षशिला से विष्णुगुप्त आए हैं।'

पार्वती आचार्य विष्णुगुप्त के नाम से भलीभाँति परिचित थी। शकटार अनेक बार उससे अपने इन तेजस्वी बालसखा और सहपाठी का जिकर कर चुका था।

बालक ब्रह्मदत्त ने पार्वती से विष्णुगुप्त के आगमन के सम्बन्ध में कहा।

'जाकर पूछो, कौनसे विष्णुगुप्त हैं ये ?' माता ने आदेश दिया।

विष्णुगुप्त द्वार के पास बाहर खड़े माता और पुत्र की बातचीत सुन रहे थे। उन्होंने जोर से कहा—'भाभी, मैं हूँ—तक्षशिला का विष्णुगुप्त। कुटल गोत्र में उत्पन्न और आचार्य चणक का आत्मज, शकटार का सहपाठी और बालसखा। अपने को तुम्हारा देवर कहूँ या जेठ, इसका फैसला तुम ही कर लेना।'

पार्वती वस्त्र सँभालकर बाहर आई और बोली—'आओ भाई, जब से वे बन्दीगृह में गए हैं, मैं तो अपने पर भी विश्वास नहीं करती। यहाँ किसको विश्वस्त समझूँ ? रोज़ कोई-न-कोई तापस, छात्र या वैदेहक बनकर मेरे पास मिलने आ जाता है। सभी अपने को आचार्य का आत्मीय बताते हैं।'

'पर मुझ पर सन्देह न करो, भाभी ! मेरी अभिज्ञानमुद्रा मेरे पास है। इसे देख लो। मागध साम्राज्य के महामन्त्री की अर्धाङ्गिनी हो। इसे देखकर सब कुछ जान जाओगी। देखो, यह अभिज्ञानमुद्रा मैंने छह मास पूर्व तक्षशिला से प्राप्त की थी। आज ही श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ आया हूँ। इस पर केकय, मद्रक, कठ, यौधेय आदि कितने ही जनपदों की मुद्राएँ लगी हुई हैं, तिथि के साथ। अब तो विश्वास करोगी ?'

'आओ, भाई ! अन्दर चलकर बैठो। कहीं तुम भी किसी मुसीबत में न फँस जाओ। यहाँ तो दीवारों के भी कान हैं। मुझे तो पक्षियों तक से डर लगने लगा है। इस घर की राई-रत्ती बात वक्रनास के पास पहुँच जाती है। तक्षशिला से कोई मेरे पास आया है, यह बात अब तक वक्रनास को ज्ञात हो चुकी होगी। तुम कपड़े उतारकर विश्राम करो। मैं पहले तुम्हारे स्नान और भोजन का प्रबन्ध कर दूँ। यह न सोचना कि यह मगध के महामन्त्री का घर है। हमारे वे दिन अब चले गए। अब तो यहाँ खाने तक के लाले हैं। घर में जो कुछ रूखा-सूखा है, उसे लेकर शीघ्र ही आती हूँ।'

आचार्य विष्णुगुप्त को बिठाकर पार्वती अन्दर चली गई। कुछ देर में उसने स्नान और भोजन का सब प्रबन्ध कर दिया। भोजन आदि से निबटकर भावज और देवर में बातचीत शुरू हुई।

'सच कहता हूँ, भाभी, इतना स्वादु भोजन आज महीनों बाद खाने को मिला है।'

'बातें मत बनाओ, भाई, जले पर नमक मत छिड़को। मेरे पास अब रहा ही क्या है, जिसकी प्रशंसा कर मेरे हृदय को उद्विग्न करते हो।'

'शकटार ने एक पत्र में मुझे लिखा था, तुम्हारी भाभी साक्षात् लक्ष्मी है। तुम्हारे रूप-लावण्य और गुणों की प्रशंसा करके अन्त में उसने लिखा था, एक बार अपनी भाभी को आँखों से देख लोगे, तो तुम्हें पता चलेगा कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ। तभी से तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। आज तुमसे मिलकर सचमुच हृदय प्रसन्न हो गया। अब शकटार मिलेगा, तो कहूँगा, भाई ! तुम सचमुच भाग्यशाली हो।'

'पर अब तुम उनसे नहीं मिल सकोगे, देवर ! वे ऐसी जगह कैद हैं, जहाँ पक्षी तक की आवाज नहीं पहुँच सकती। मैंने उस स्थान को देखा है। जब तुम्हारे भाई महामन्त्री थे, तो एक दिन वे मुझे वह बन्दीगृह दिखाने ले गए थे। दस दीवारों से घिरा हुआ वह बन्दीगृह कितना भयंकर स्थान है ! प्रत्येक दीवार में केवल एक-एक द्वार है, और उन पर रात-दिन सशस्त्र प्रहरी पहरा देते रहते हैं।'

'तुम अपने इस देवर को नहीं जानती, भाभी ! जहाँ कीट और पतंग तक का प्रवेश नहीं हो सकता, वहाँ यह ऐसे चला जाता है, मानो कोई सीधे राजमार्ग पर चल रहा हो।'

'बहुत बातें मत बनाओ, देवर ! जब वक्रनास के गूढ़पुरुष तुम्हें भी अपने भाई के पड़ोस की कोठरी में बन्द कर देंगे, तब तुम्हें पाटलिपुत्र के कूट-चक्र का ज्ञान होगा।'

'यदि एक सप्ताह में शकटार को तुम्हारे सामने लाकर न खड़ा कर दिया, तो कहना। सुनो भाभी, जब हम दोनों तक्षशिक्षा में एक साथ पढ़ा करते थे, तो बहुधा अपने भविष्य के सम्बन्ध में बहस किया करते थे। मैं कहता था, शकटार तू तो पाटलिपुत्र की किसी पाठशाला में बटुकों को पढ़ाया करेगा और मैं किसी बड़े जनपद का महामन्त्री बनूँगा। शकटार कहता था, ना भाई, बटुकों को पढ़ाना मेरे बस का नहीं है। मैं महामन्त्री बनूँगा, और तू बटुकों को पढ़ाया करेगा। आखिर शकटार की जीत हुई। वह विशाल मागध साम्राज्य का महामन्त्री बन गया, और मैं सदा बटुकों से परेशान रहा करता हूँ।'

'पर मेरी सम्मति में तो तुम्हीं अच्छे रहे भाई ! यदि वे भी तुम्हारी तरह बटुकों को पढ़ाते रहते, तो आज ऐसे दुर्दिन तो देखने न पड़ते। अच्छा, हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारे कितने बाल-बच्चे हैं।'

'अरे बाल-बच्चे मेरे कहाँ से होते, अभी तो मेरा विवाह भी नही हुआ।'

'यह क्या कहते हो, अभी तक विवाह नहीं किया ?'

'विवाह कहाँ से करता, कोई तुम्हारे जैसी मिलती, तब तो न विवाह करता। सब शकटार जैसे भाग्यशाली थोड़े ही होते हैं।'

आचार्य विष्णुगुप्त की बात सुनकर पार्वती के म्लान मुख पर भी हँसी खिल उठी। उसने हँसते हुए कहा—'बहुत बातें मत बनाओ, देवर ! तक्षशिला में सुन्दरियों की कौन कमी है। सुना है, वाहीक देश की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर होती हैं ! क्या यह सच है ?'

'हाँ, सच तो है। पर मैंने तो वाहीक-भर में तुम्हारे जैसी सुन्दरी

कोई नहीं देखी।'

यह सुनकर पार्वती फिर हँस पड़ी। अपने देवर को हाथ से परे ठेलते हुए उसने कहा—'सच कहो, भाई! क्या तुम सचमुच उनको बन्दीगृह से मुक्त करा दोगे?'

'भाभी, मैं कभी झूठ नहीं बोलता।' आचार्य विष्णुगुप्त ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

'पर यह करोगे कैसे?'

'यह कैसे बताऊं? तुम्हीं ने तो अभी कहा था, यहाँ तो दीवारों के भी कान हैं। अच्छा, यह बताओ, क्या इस पाटलिपुत्र में कोई ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिन पर तुम पूर्णतया विश्वास कर सकती हो?' विष्णुगुप्त ने अपनी आवाज को बहुत धीमा करके प्रश्न किया।

'क्यों नहीं, विराधगुप्त से जाकर मिलो। वह पहले महापद्म नन्द का आन्तर्वंशिक था। अब वक्रनास ने उसे पदच्युत कर दिया है। वह समीप ही रहता है। ब्रह्मदत्त तुम्हें दूर से उसका घर दिखा देगा।'

'अच्छा, भाभी! अब मैं चलता हूँ। रात को सोने के लिए यहीं आऊँगा। जब तक पाटलिपुत्र रहूँगा, मेरा डेरा तुम्हारे घर पर ही रहेगा। तुम्हें कोई विप्रतिपत्ति तो नहीं, भाभी! सुना है, इधर मगध में स्त्री और पुरुष स्वतन्त्र रूप से एक-दूसरे से नहीं मिल सकते। कुछ सम्पन्न घरों में यहाँ परदे का भी रिवाज है। हमारे वाहीक देश में तो यह बात नहीं है। वहाँ तो स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही स्वतन्त्र हैं, सबसे खुलकर बातचीत करती हैं, किसी से मिलने में संकोच नहीं करतीं।

'तुम इसका खयाल न करो। तुम मेरे देवर जो हो।'

शकटार के घर से आचार्य विष्णुगुप्त विराधगुप्त के पास गए। अपना परिचय देने के बाद उन्होंने शकटार को बन्दीगृह से मुक्त कराने की योजना पर विचार शुरू किया।

'क्यों विराधगुप्त! तुम तो यह भलीभाँति जानते होगे कि बन्दीगृह यहाँ से कितनी दूरी पर है।'

'कोई दो सौ दण्ड की दूरी पर।'

'नहीं, ठीक-ठीक हिसाब लगाकर बताओ।'

'दो सौ पाँच दण्ड की दूरी पर।' विराधगुप्त ने हिसाब लगाकर उत्तर दिया।

'और वह कोठरी, जिसमें शकटार कैद है?'

'दो सौ बीस दण्ड की दूरी पर। यहाँ से ठीक उत्तर की ओर।'

'ठीक उत्तर की ओर, फिर सोचकर बताओ। जरा-सी भूल भी हमारे लिए घातक सिद्ध हो सकती है।'

'नहीं, उत्तर-पूर्व की ओर। ८० अंश उत्तर और १० अंश पूर्व।'

'तो फिर आज ही काम शुरू करा दो। तुम्हारे इस शयनगृह से यह सुरंग शुरू होगी। जिन आदमियों पर तुम पूर्ण विश्वास कर सकते हो, उन्हीं को सुरंग खोदने के कार्य पर नियुक्त करो। सुरंग की दिशा में एक अंश का भी अन्तर नहीं होना चाहिए, इस बात का ध्यान रखना।'

'जो आज्ञा, आचार्य!'

'अपने आदमियों को कह देना कि उन्हें भरपूर इनाम मिलेगा। दस निष्क प्रतिदिन पारिश्रमिक और कार्य पूर्ण हो जाने पर सौ निष्क इनाम।'

'जो आज्ञा, आचार्य!'

'छः दिन के अन्दर-अन्दर यह सुरंग बनकर तैयार हो जानी चाहिए। जब इसका दूसरा सिरा शकटार की कोठरी की दीवार तक पहुँच जाए, तो मुझे सूचना दे देना। मेरा शिष्य निपुणक आहितुण्डिक (सँपेरे) का भेस बनाकर तुम्हारे यहाँ आया करेगा, साँपों का तमाशा दिखाने के लिए। उसे इशारे से सब खबर देते रहना। उससे मुझे सब समाचार मिल जाया करेंगे। हाँ, विराधगुप्त! तुम्हें इस सब कार्य के लिए क्या पारितोषिक चाहिए?'

'इसकी आप चिन्ता न करें, आचार्य! महामन्त्री शकटार की मुक्ति ही मेरे लिए सब से बड़ा पारितोषिक होगा।'

शकटार के छुटकारे के लिए सब योजना बनाकर आचार्य विष्णुगुप्त अपनी भाभी के घर वापस लौट आए। पाटलिपुत्र में आधा दिन रहकर उन्होंने यह भलीभाँति समझ लिया था कि मगध की राजनीतिक दशा बहुत विकृत है। वे बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर मगध आए थे। पर अब उनके मन में आता था कि मगध के राजकुल के नेतृत्व में हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस आर्यभूमि का एक संगठन में संगठित हो सकना सम्भव नहीं है। पर वे फिर सोचते थे, अपने उद्देश्य को तो पूर्ण करना ही है। यदि उसके लिए मगध के राजकुल के बलिदान की भी आवश्यकता हो, तो उसमें संकोच नहीं करना चाहिए।

(२०)

आचार्य की प्रतिज्ञा

श्रेष्ठी धनदत्त का सार्थ जिस दिन पाटलिपुत्र पहुँचा, उसके ठीक छठे दिन वहाँ भगवान् जयन्त की यात्रा का महोत्सव मनाया जाना था। पाटलिपुत्र के ठीक मध्य में जयन्त का कोष्ठक (मन्दिर) था, जिसका ऊँचा शिखर दूर-दूर तक दिखाई पड़ता था। जिस युग की कथा हम लिख रहे हैं, मगध के बहुत से निवासी बौद्ध, जैन और आजीवक सम्प्रदायों के अनुयायी हो चुके थे। अनेक बौद्ध विहार, जैन मठ और आजीवक पाषण्ड उस समय पाटलिपुत्र में स्थापित थे और हजारों भिक्षु, मुनि और साधु इनमें निवास करते थे। मगध के गृहस्थों को भी इनके प्रति अत्यधिक श्रद्धा थी और वे इनके उपदेशों का बड़े आदर के साथ श्रवण करते थे। पर फिर भी भगवान् जयन्त के गौरव का अभी पाटलिपुत्र से लोप नहीं हुआ था, और हजारों नर-नारी प्रतिदिन उनकी प्रतिमा पर अर्घ्य चढ़ाकर अपने को कृतकृत्य समझते थे। साल में एक बार जब भगवान् जयन्त की रथयात्रा निकलती, तब सारा पाटलिपुत्र उनके दर्शनों के लिए उमड़ पड़ता। पुरानी परम्परा का अनुसरण करते हुए मगध के राजा भी इस यात्रा में शामिल होते थे, और उत्सव के समाप्त होने पर दान-पुण्य कर जनता को सन्तुष्ट किया करते थे।

आचार्य विष्णुगुप्त ने प्रयत्न किया कि वे सम्राट् सुमाल्य नन्द से भेंट कर सकें। वे उनके सम्मुख अपनी योजना उपस्थित करना चाहते थे। पर उन्हें सफलता नहीं मिली। नन्द को नाच-रंग से ही फुरसत नहीं थी। राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर वह मगध के राजकोष को पानी की तरह बहा रहा था, रूपाजीवाओं पर, नटों-नर्तकों-बादकों और कुशीलवों पर, मदिरा पर और पेशलरूपा दासियों पर। साँझ से दिन चढ़े तक वह नाच-रंग में मस्त रहता और उसका दिन व्यतीत होता रात की खुमारी उतारने में। इस दशा में उसे आचार्य विष्णुगुप्त से बात करने का अवकाश ही कैसे मिल सकता था। वह न राजसभा में आता था और न मन्त्रियों के साथ बैठकर राजकार्य के विषय में मन्त्रणा ही करता था। वक्रनास के हाथ में राजसूत्र संभलवाकर वह निश्चिन्त था।

नन्द की ओर से निराश होकर विष्णुगुप्त ने वक्रनास से भेंट करने का निश्चय किया। वक्रनास दण्डनीति का पण्डित था और चाणाक्ष राजनीतिज्ञ

था। विष्णुगुप्त के आने पर वह उठकर खड़ा हो गया और बड़े आदर के साथ उसने उन्हें आसन पर बिठाया।

'आपका दर्शन पाकर मेरा जीवन धन्य हुआ, आचार्य! भारतवर्ष में कौन ऐसा व्यक्ति है, जो आपकी कीर्ति और अगाध पाण्डित्य से परिचित न हो। जिस दिन आपने तक्षशिला से मगध के लिए प्रस्थान किया था, उसी दिन से मैं आपके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'आपके सत्री बड़े कार्यकुशल हैं, महामन्त्री! आपको उनसे यह भी ज्ञात हो चुका होगा कि मैं शकटार का बालसखा और सहपाठी हूँ, और मैं उन्हीं के घर पर ठहरा हुआ हूँ।'

'यह मुझे ज्ञात है, आचार्य! आपने एक राजद्रोही का आतिथ्य स्वीकार कर अच्छा नहीं किया। यदि आप मगधराज की भुक्तिशाला को अपनी चरण-धूलि से पवित्र कर सकते, तो मैं बहुत उपकृत होता। आप जैसे विश्वविख्यात आचार्य की सेवा कर मगध का राजकुल अपने को धन्य समझता। यह तो आप जानते ही हैं कि शकटार राजद्रोही है। मैं उसके पाण्डित्य और नीति-कुशलता का आदर करता हूँ। पर हम राजपुरुषों को अपने कर्तव्य का पालन भी करना ही होता है।'

'यह ठीक है, महामन्त्री! कर्तव्य के सम्मुख न कोई गुरु रहता है, न कोई बन्धु-बान्धव। राजनीति में आत्मीयों के साथ भी परायों का-सा बरताव करना ही पड़ता है।'

'मैं आपसे क्या कहूँ, आचार्य! आप से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। शकटार को बन्दीगृह में डालकर जो कड़वा घूंट मुझे पीना पड़ा है, वह मेरा हृदय ही जानता है। पर कर्तव्य के सम्मुख मैं विवश था।'

'मैं आपको कर्तव्य से च्युत होने के लिए नहीं कहना चाहता, महामन्त्री! यह इस देश का सौभाग्य है, जो उसके राजपुरुषों को अपने कर्तव्य का इतना अधिक ध्यान है।'

'यह सुनकर मैं कृतार्थ हुआ, आचार्य! अब आप अपने आगमन का प्रयोजन कहिए। मुझे क्षमा करें, हम राजपुरुषों के समय की बहुत कीमत है।'

'यह मैं जानता हूँ, महामन्त्री! मैं महाराज नन्द से भेंट करना चाहता हूँ। क्या आप इसकी व्यवस्था कर सकेंगे?'

'यह कार्य तो बहुत कठिन है, आचार्य! महाराज नन्द को राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए अभी बहुत कम समय हुआ है। वे राजकार्य को समझने में रात-दिन व्यस्त रहते हैं। उन्हें न रात को सोने का अवकाश मिलता है,

और न दिन में किसी से मिलने-जुलने का। विशाल मागध साम्राज्य के सैकड़ों राजपदाधिकारी उनसे भेंट करने के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं, पर उन्हें अवकाश ही नहीं है।'

'मैं एक अत्यन्त आवश्यक कार्य से मागध सम्राट् से भेंट करना चाहता हूँ।'

'आपका कार्य मुझे ज्ञात है, आचार्य ! पर मुझे क्षमा करें, महाराज को क्षण-भर का भी अवकाश नहीं है।'

'क्या महाराज से भेंट कर सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है ?'

'आप सैकड़ों योजन से चले आ रहे हैं। मैं आपको निराश नहीं करूँगा, आचार्य ! कल भगवान् जयन्त का यात्रा-महोत्सव है। महाराज उसमें सम्मिलित होंगे। उत्सव के समाप्त होने पर वे प्रजाजन को दर्शन देंगे। तब वे दान-पुण्य भी करेंगे। आप उस समय जयन्त के कोष्ठक में आ जाइए। मैं महाराज से आपकी भेंट करा दूंगा।'

'पर मैं तो महाराज से एकान्त में मिलना चाहता हूँ।'

'अच्छा, यह भी हो जाएगा, आचार्य ! पर सर्वथा एकान्त में तो राजमहिषी भी महाराज से नहीं मिल सकतीं। जब आप महाराज से मिल रहे होंगे, तो मैं उनके साथ रहूँगा और उस एकान्त भवन में रहेंगे मेरे कुछ सत्री, छाया-मूर्तियों के समान।'

'यह मुझे स्वीकार है, महामन्त्री !'

अगले दिन भगवान् जयन्त के यात्रा-महोत्सव की समाप्ति पर जब महाराज सुमाल्य नन्द दान-पुण्य कर चुके, तो वक्रनास उन्हें एक एकान्त भवन में ले गया। उसी समय आचार्य वि णुगुप्त को भी उस भवन में ले जाया गया।

'क्या तुम्हें भिक्षा नहीं मिली, ब्राह्मण !' नन्द ने लड़खड़ाती हुई आवाज से प्रश्न किया। रात की खुमारी से अभी तक भी वे अपना पीछा नहीं छुड़ा सके थे, और उनकी आँखें नशे से लाल हो रही थीं।

'मैं भिक्षुक नहीं हूँ, महाराज !' आचार्य विष्णुगुप्त ने कहा।

'तो फिर तुम कौन हो ? भिक्षुकों के अतिरिक्त और किसी को मुझसे काम ही क्या हो सकता है ?'

'महाराज ! क्या आपको ज्ञात है कि यवनराज सिकन्दर भारतभूमि पर आक्रमण कर रहा है। वह कपिश, गान्धार, केकय, मद्रक आदि को जीत चुका है। उसके आक्रमण से वाहीक देश को घोर संकट का सामना करना पड़ रहा है। आर्यभूमि की स्वतन्त्रता ही इससे खतरे में पड़ गई है।'

'क्यों वक्रनास, क्या कहता है यह ब्राह्मण ? यह सिकन्दर कौन है ?'

'महाराज ! सिकन्दर यवन देश का राजा है, दिग्विजय के लिए निकला है।' वक्रनास ने उत्तर दिया।

'तो इससे हमें क्या ? जब वह मगध पर आक्रमण करेगा, तो हम देख लेंगे, किसकी शक्ति अधिक है। यदि कोई लोहे की दीवार से अपना सिर टकराना चाहता है, तो उसकी इच्छा है।'

'पर महाराज ! क्या यह उचित है कि विदेशी यवन इस आर्यभूमि को पदाक्रान्त करें ? क्या इस समय प्रतापी मागध सम्राट् का यह कर्तव्य नहीं है कि वह आर्यभूमि की रक्षा के लिए अग्रसर हो ?' आचार्य विष्णुगुप्त ने प्रश्न किया।

'अरे वक्रनास ! तुमने भी यह क्या मुसीबत लाकर खड़ी कर दी। बेचारी वासन्ती मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। इतने लम्बे वियोग को वह कैसे सह सकेगी ? यदि इस ब्राह्मण को कुछ धन की आवश्यकता हो, तो दे देना। बेचारा बड़ी दूर से पाटलिपुत्र आया है।' यह कहकर सुमाल्य नन्द खड़ा हो गया और रथ पर चढ़कर अपने राजप्रासाद को चल पड़ा।

'कहिए, आचार्य ! महाराज से भेंट हो गई ?' वक्रनास ने कहा।

'हाँ, वक्रनास ! मैं जानना चाहता था कि मगध का राजकुल सम्पूर्ण आर्यभूमि को एक सूत्र में संगठित करने में समर्थ हो सकता है या नहीं। मैं इसी लिए नन्द से मिलना चाहता था। आपको धन्यवाद है, जो आपने मुझे इसका अवसर दिया।'

'तो आप किस परिणाम पर पहुँचे हैं, आचार्य ?'

'क्या यह बताने की भी आवश्यकता होगी, वक्रनास ! मैं पहले ही जानता था कि नन्द किस कार्य में व्यस्त रहता है, किस कारण उसे राज-काज पर ध्यान देने का अवकाश नहीं मिलता। कुमार चन्द्रगुप्त ने तक्ष-शिला में ही मुझे बता दिया था कि मगध के राजकुल का किस हद तक अधःपतन हो चुका है।'

'फिर आप करना क्या चाहते हैं, आचार्य ?'

'यदि तुम मेरे मुख से ही सुनना चाहते हो, तो कान खोलकर सुन लो, वक्रनास ! मेरी प्रतिज्ञा है कि हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस आर्यभूमि को एक शासन के नीचे लाऊँगा, ताकि कोई विदेशी राजशक्ति इसकी ओर उँगली भी न उठा सके। यह कार्य केवल मगध की राजशक्ति द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता है।'

'आपका उद्देश्य बड़ा उत्तम है, आचार्य ! आपके प्रयत्न से सारा

भारत महाराज नन्द की अधीनता में आ जाएगा।' वक्रनास ने हँसकर कहा।

'मुझे पूरी बात कह लेने दो, वक्रनास ! सारे भारत पर मगध का शासन स्थापित होगा, पर नन्द उसके राजसिंहासन पर नहीं रहेगा। मेरी प्रतिज्ञा यह है कि नन्द के राजकुल का समूल उन्मूलन करूँगा, क्योंकि यह राजकुल इस आर्यभूमि का स्वामी होने के योग्य नहीं है।'

'तो फिर क्या आचार्य विष्णुगुप्त भारत के सम्राट् बनेंगे ?' वक्रनास ने फिर हँसते हुए पूछा।

'नहीं, वक्रनास ! आचार्य का स्थान राजसिंहासन पर नहीं है। उसका स्थान है, पर्णकुटी में। पर्णकुटी में बैठकर ही वह इस विशाल आर्यभूमि की विदेशियों से रक्षा करेगा और इसमें ऐसी शक्ति का संचार कर देगा कि पृथिवी का कोई भी राज्य उसकी बराबरी नहीं कर सकेगा।' विष्णुगुप्त ने अत्यन्त गम्भीर होकर उत्तर दिया।

'तो फिर राजसिंहासन पर कौन आरूढ़ होगा, क्या वह दासीपुत्र चण्द्रगुप्त ?'

'वह दासीपुत्र है या नहीं, वह राजसिंहासन पर आरूढ़ होगा या नहीं—इस सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहता। पर यह मत भूलो, वक्रनास ! कुमार चन्द्रगुप्त इस नन्द की अपेक्षा सहस्रगुण अधिक योग्य है। नन्द जैसे विलासी व्यक्ति को मगध का सम्राट् बनाकर तुम्हें शर्म अनुभव नहीं होती, वक्रनास ! जो आदमी दिन-रात सुरा से मस्त हो रूपाजीवाओं के क्रीड़ा-गृहों में पड़ा रहता है, वह निश्चय ही इस विशाल आर्यभूमि का सम्राट् होने योग्य नहीं है।'

'मैं आप पर राजद्रोह का आरोप करता हूँ, आचार्य ! आपने मागध सम्राट् का अपमान किया है। चण्डवर्मा, इस ब्राह्मण को गिरफ्तार कर लो।'

चण्डवर्मा आचार्य विष्णुगुप्त की ओर बढ़ा, पर उनके तेजोमय दिव्य मुखमण्डल को देखकर बीच में ही रुक गया। उसका साहस नहीं हुआ कि आचार्य पर हाथ उठा सके।

वक्रनास ने फिर कड़ककर कहा—'सुनते नहीं हो, चण्डवर्मा, मैंने तुम्हें क्या आज्ञा दी है।'

चण्डवर्मा फिर आगे बढ़ा। वह आचार्य विष्णुगुप्त पर हाथ उठाने ही वाला था, कि एक नवयुवक ने आकर उसका मार्ग रोक लिया। उस युवक के हाथ में नंगी तलवार थी और उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा

था। उसने चण्डवर्मा को एक ओर धकेल दिया और आचार्य के पैर छूकर कहा—'आचार्य ! आइये मेरे साथ। मेरे रहते किसकी हिम्मत है, जो आपका बाल भी बाँका कर सके।'

आचार्य विष्णुगुप्त इस नवयुवक के साथ भगवान् जयन्त के कोष्ठक के उस एकान्त भवन से बाहर निकल आए। जयन्त का यात्रा-महोत्सव अभी समाप्त नहीं हुआ था। मन्दिर का विशाल प्रांगण अभी सहस्रों नर-नारियों से परिपूर्ण था। आचार्य विष्णुगुप्त और वह युवक उस भीड़ में मिल गए और चण्डवर्मा तथा उसके सत्रियों के लिए उनका पीछा कर सकना सम्भव नहीं रहा।

यह युवक मोरियगण का राजकुमार चन्द्रगुप्त था, जो सिकन्दर के यवन सैनिकों से बचकर बड़ी तेजी के साथ तक्षशिला से पाटलिपुत्र पहुँच गया था। अपने गुरु के उद्देश्य को पूर्ण करने में मैं भी सहायक हो सकूँ, यही विचार इस समय उसके मन में घूम रहा था।

(२१)

शकटार का बन्दीगृह से छुटकारा

भगवान् जयन्त के मन्दिर से आचार्य विष्णुगुप्त और कुमार चन्द्रगुप्त विराधगुप्त के मकान पर गए। उस समय अँधेरा हो चुका था और लोग जयन्त की यात्रा को देखकर अपने-अपने घरों को वापस लौट रहे थे। न केवल राजमार्ग, अपितु तंग वीथियाँ भी नर-नारियों से परिपूर्ण थीं। विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त भीड़ में से होते हुए विराधगुप्त के मकान पर जा पहुँचे और वक्रनास के गुप्तचर उनका पता नहीं लगा सके। उन्हें यह जानकर सन्तोष हुआ कि बन्दीगृह तक सुरंग तैयार हो गई है। वे तुरन्त सुरंग के अन्दर घुस गए। एक छोटा-सा दीपक उनके हाथ में था, उस अन्धकारपूर्ण सुरंग में मार्ग को दिखाने के लिए।

थोड़ी देर बाद चण्डवर्मा के सैनिकों ने विराधगुप्त के मकान को चारों ओर से घेर लिया। तीन विश्वस्त सैनिकों के साथ चण्डवर्मा विराधगुप्त के मकान में प्रविष्ट हुआ।

'कहिए, सेनापति ने इस अकिंचन के घर को किसलिए अपनी पदधूलि से पवित्र किया है ?' विराधगुप्त ने मन्द हास्य करते हुए प्रश्न किया।

'यहाँ एक राजद्रोही छिपा है। मुझे उसे गिरफ्तार करना है। मैं

आपके मकान की तलाशी लेना चाहता हूँ। क्या आपको इसमें कोई विप्रतिपत्ति है ?'

'मगध के सब प्रजाजनों का कर्तव्य है कि वे राजद्रोहियों को गिरफ्तार करवाने में सहयोग दें। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे मकान की तलाशी ले सकते हैं।'

चण्डवर्मा ने विराधगुप्त के विशाल भवन के एक-एक कोने को छान डाला। पर विष्णुगुप्त का कहीं भी पता नहीं चला। निराश होकर चण्डवर्मा ने कहा—'अभी राजद्रोही यहाँ नहीं आया है। मेरे सैनिक यहीं बैठकर उसकी प्रतीक्षा करेंगे। मैं अब शकटार के मकान की तलाशी लेने जाता हूँ। अपने सत्रियों से मुझे यह ज्ञात हो चुका है कि तक्षशिला का यह ब्राह्मण इन्हीं दो मकानों में आया-जाया करता है। विराधगुप्त ! अपने इस कर्तव्य को विस्मृत न करना कि राजद्रोही को पकड़वाने में सहायता देना आपका परम कर्तव्य है। यदि वह छद्मवेश बनाकर आपसे मिलने आए, तो मेरे सैनिकों को अवश्य उसकी सूचना दे देना। अन्यथा आप भी राजद्रोह में गिरफ्तार कर लिए जाएँगे।'

'जो आज्ञा, सेनापति !' विराधगुप्त ने उत्तर दिया।

चण्डवर्मा ने शकटार के मकान की भी तलाशी ली। पर वहाँ भी आचार्य विष्णुगुप्त का पता नहीं चला। चण्डवर्मा परेशान था कि यह विदेशी ब्राह्मण कहाँ जाकर छिप गया है। श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला का भी एक-एक कोना चण्डवर्मा ने छान डाला। पर वहाँ भी उसे सफलता नहीं मिली।

जिस समय सेनापति चण्डवर्मा अपने दण्डधर सैनिकों के साथ विराधगुप्त के मकान की तलाशी ले रहा था, विष्णुगुप्त सुरंग के मार्ग से होकर अपने पुराने सहपाठी शकटार के पास पहुँच गए थे। विष्णुगुप्त को इस प्रकार बन्दीगृह में अपने समीप देखकर शकटार के आश्चर्य की सीमा नहीं रही। वह कुछ कहने ही वाला था कि विष्णुगुप्त ने उसे इशारे से रोक दिया और तुरन्त अपने साथ चलने के लिए आदेश दिया। दोनों मित्र चुपचाप सुरंग में चले आए। बन्दीगृह की कोठरी की दीवार का जो शिलाखण्ड सुरंग के आखिरी छोर पर खुलता था, उसे उन्होंने पूर्ववत् उसके स्थान पर जड़ दिया।

सुरंग के ठीक बीच में दोनों मित्रों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया। वे एक स्थान पर बैठ गए और बातें करने लगे—

'भाई विष्णुगुप्त ! तुम यहाँ कहाँ ?'

'तुम्हें बन्दीगृह से मुक्त कराने के लिए तक्षशिला से इतनी दूर पाटलिपुत्र आया हूँ।'

'तुम पाटलिपुत्र आए कब ?'

'कोई छः दिन हुए, श्रेष्ठी धनदत्त के सार्थ के साथ यहाँ आया था।'

'अपनी भाभी से भी मिले ?'

'वहीं तो ठहरा हुआ हूँ। भाई, तुम भी बड़े भाग्यशाली हो, जो साक्षात् लक्ष्मी जैसी पत्नी पाई है। भाभी के हाथ का बना हुआ सुस्वादु भोजन खाकर तो अब तक्षशिला लौट जाने की इच्छा ही नहीं होती। अब तो तुम्हारे घर पर ही जमकर रहने का इरादा है।'

'पर यहाँ तुम कैसे रह सकोगे ? कल दोपहर जब बन्दीगृह का प्रहरी शाक और जल लेकर मेरी कोठरी में आएगा और मुझे वहाँ नहीं पाएगा, तो कितना शोर मचेगा। वक्रनास मेरी तलाश के लिए कोई भी कसर नहीं उठा रखेगा।'

'तुम्हें अपनी ही फिकर लगी है, शकटार! तुम्हें क्या मालूम कि वक्रनास के सैनिक और सत्री शिकारी कुत्तों के समान मेरे पीछे लगे हैं। वक्रनास ने मुझे भी राजद्रोही घोषित कर दिया है।'

'यह कैसे हुआ, विष्णुगुप्त ?'

'तुम्हें सब बातें धीरे-धीरे मालूम हो जाएँगी। पहले मेरे इस शिष्य से मिल लो। यह युवक बड़ा उद्दण्ड और साहसी है। इसी की सहायता से मैं चण्डवर्मा से बचकर इस सुरक्षित स्थान पर पहुँच सका हूँ। आओ, चन्द्रगुप्त! आचार्य शकटार को प्रणाम करो।'

'मोरियगण का राजकुमार आचार्य शकटार को प्रणाम करता है।' चन्द्रगुप्त ने कहा।

'ओहो, चन्द्रगुप्त! तुम यहाँ कहाँ ? एक साल से अधिक हुआ, तुम मगधराज के अन्तःपुर से भागकर कहीं चले गए थे। मगधराज ने तुम्हें राजद्रोही घोषित कर दिया है और आन्तवंशिक सेना के सत्री कितने दिनों से तुम्हारी खोज कर रहे हैं।'

'फिर तो यहाँ तीन राजद्रोही एकत्र हैं। यदि कहीं वक्रनास को इस स्थान का पता चल जाए, तो उसे कितनी प्रसन्नता हो!' आचार्य विष्णुगुप्त ने हँसकर कहा।

'तो भाई, क्या हमारा शेष जीवन इसी अन्धकूप में व्यतीत होगा। मगधराज के बन्दीगृह की तंग कोठरी इससे तो अच्छी ही थी।'

'जिस दिन भाभी से मेरी पहली मुलाकात हुई थी, मैंने उन्हें वचन

दिया था कि आज से ठीक सातवें दिन यदि तुम्हें बन्दीगृह से छुड़ाकर उनके सम्मुख लाकर न खड़ा कर दिया, तो मैं आचार्य चणक का आत्मज नहीं हूँ। आज छठा दिन है। कल तुम भाभी से मिलोगे। केवल एक रात तुम्हें इस अन्धकूप में रहना पड़ेगा। पर आओ, पहले भोजन तो कर लें। भगवान् जयन्त के कोष्ठक से भागते-भागते मेरा तो दम फूल गया। भोजन करके फिर विश्राम करेंगे। राजा नन्द का भेजा हुआ भोजन खाते-खाते तुम कितने हृष्ट-पुष्ट हो गए हो। आज रूखा-सूखा भोजन ही सही।'

तीनों राजद्रोहियों ने सुरङ्ग के अन्धकूप में बैठकर मजे से भोजन किया। फिर वे निश्चिन्त होकर सो गए। वक्रनास के सत्री इस स्थान का किसी भी प्रकार पता कर सकेंगे, यह असम्भव था।

अगले दिन विराधगुप्त के घर पर एक अनुष्ठान होना था। इसके लिए पाँच जटिल तापस आमन्त्रित किए गए थे। ब्राह्ममुहूर्त का समय होते ही ये तापस विराधगुप्त के मकान पर आ गए। ये अपने तन पर भभूत रमाए हुए थे और इनके सिर पर बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं। जब चण्डवर्मा के सत्रियों ने विराधगुप्त से पूछा, ये तापस कौन हैं, तो उसने उत्तर दिया—'ये बड़े सिद्ध महात्मा हैं। महाराज सुमाल्य नन्द की कृपा को पुनः प्राप्त करने के लिए मैं इनसे अनुष्ठान करा रहा हूँ। इसी लिए इन्होंने मेरे घर पधारने की कृपा की है।'

एक सत्री ने जटिल तापसों से प्रश्न किया—'महाराज! आप कहाँ के रहनेवाले हैं?'

'बच्चा! हमारा भी कोई देश है, हमारा भी कोई घर है? रमते-रमते जहाँ बैठ गए, वहीं हमारा स्थान है।'

'आप पाटलिपुत्र कब आए?'

'बच्चा, यह क्या पूछते हो? हम कल सायंकाल कन्याकुमारी में थे, और आधी रात पाटलिपुत्र आ गए थे।'

'तब तो महाराज! आपको योगसिद्धियाँ प्राप्त हैं। दस मुहूर्त में हजार योजन की यात्रा कर लेना योगसिद्धि के बिना कैसे सम्भव है? आज आप मेरे घर को पवित्र कीजिए। आप सब आज मेरे यहाँ भोजन पाइएगा।'

'बच्चा, हम दो मास में एक बार भोजन करते हैं। वह भी एक मुट्ठी चावल। अब भोजन की बारी एक मास बाद आएगी।'

'एक मास बाद ही सही, महाराज! पर मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिएगा।'

सत्री ने जटिल तापसों की चरणधूलि अपने सिर पर धारण की और वे उसे आशीर्वाद देकर विराधगुप्त के मकान में चले गए। चलते-चलते सत्री को कह गए—'बच्चा, योग के अनुष्ठानों को बीच में आकर देखने से बड़ा भयंकर परिणाम होता है, इसका ध्यान रखना।'

दोपहर तक जटिल तापसों का योगानुष्ठान जारी रहा। जब अनुष्ठान को समाप्त कर तापस लोग बाहर निकले, तो सत्री ने एक बार फिर उनके चरणों को स्पर्श किया। आशीर्वाद देते हुए एक तापस ने उसे कहा—'अमावस्या की रात को भगवान् अश्विन् के मन्दिर वाले पीपल के वृक्ष के नीचे आकर हमसे मिलना। तेरे घर के नीचे अपार सुवर्ण गड़ा है, उसका पता वता देंगे। हम तुझसे बहुत प्रसन्न हैं। एक मुट्ठी चावल भी साथ लेते आना, तेरा निमन्त्रण हमें स्वीकार है।'

विराधगुप्त के मकान से निकलकर जटिल तापसों की मण्डली आगे बढ़ी। जो मकान सामने आता, ये महात्मा उसके सम्मुख खड़े हो जाते और ऊँची आवाज से कहते—'भगवान् अश्विन् के तापस लोग आए हैं, दर्शन कर लो।' स्त्रियाँ आवाज सुनकर बाहर निकल आतीं और जटिल तापसों की चरणधूलि सिर पर चढ़ाकर हाथ जोड़ देतीं।

धीरे-धीरे यह मण्डली शकटार के घर के सामने जा खड़ी हुई। एक तापस ने आवाज दी—'भगवान् अश्विन् तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करें। भगवान् अश्विन् के तापस आए हैं, दर्शन कर लो।' पार्वती को यह आवाज कुछ परिचित-सी मालूम हुई। वह उत्सुकतापूर्वक बाहर निकली और तापसों की चरणधूलि लेने के लिए नीचे झुकी। इसी समय उसे ये शब्द सुनाई पड़े—'भाभी, सिर उठाकर देखो, ये शकटार हैं।' पार्वती सब कुछ समझ गई। उसने बिना एक शब्द बोले तापसों के चरण स्पर्श किए और चुपचाप घर के अन्दर चली गई।

जटिल तापस इसी प्रकार गृहदेवियों को अपनी चरणधूलि को सिर पर धारण करने का अवसर देते हुए भगवान् अश्विन् के मन्दिर में चले गए। वक्रनास के किसी सत्री को यह सन्देह नहीं हुआ कि जो पाँच तापस एक गुह्य अनुष्ठान करने के लिए विराधगुप्त के घर पर आए थे, उनमें से दो आचार्य विष्णुगुप्त के शिष्य निपुणक और शिवदत्त थे और शेष तीन विराधगुप्त के विश्वस्त पुरुष। पाँच जटिल तापसों में से तीन सुरंग के अन्दर चले गए थे, और उनका स्थान ले लिया था, शकटार, विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त ने, जिन्होंने नकली जटाजूट को अपने सिर पर धारण कर शरीर पर भभूत रमा ली थी।

दोपहर बाद जब मगधराज के बन्दीगृह का प्रहरी शकटार के लिए शाक और जल लेकर आया, तो वह भय के मारे चीख उठा। शकटार की कोठरी का ताला बाहर से बन्द था, पर बन्दी का वहाँ कोई पता न था। उसने शकटार के लुप्त हो जाने का समाचार बन्दीगृह के अध्यक्ष से कहा। सब जगह शकटार की खोज की गई, पर उसका कहीं पता न चला। जिस कोठरी में शकटार कैद था, बहुत सूक्ष्मता से उसका निरीक्षण करने पर ज्ञात हुआ, कि दीवार के एक शिलाखण्ड के साथ-साथ चींटियों की एक कतार अन्न के खण्ड लिए हुए चली जा रही है। उस शिलाखण्ड को तोड़कर बाहर निकाला गया, तो उस सुरंग का पता चला, जो शकटार की कोठरी से विराधगुप्त के मकान तक गई थी। साँझ के समय चण्डवर्मा के सैनिकों ने विराधगुप्त के मकान को घेर लिया। पर तब तक विराधगुप्त और उसके साथी वहाँ से जा चुके थे। सत्रियों से पूछने पर मालूम हुआ कि आज प्रातःकाल पाँच जटिल तापस यहाँ आए थे, जो पहुँचे हुए योगी थे। सत्रियों की बात सुनकर चण्डवर्मा वास्तविक घटना समझ गया। वह भागा-भागा भगवान् अश्विन् के मन्दिर में गया। पर जटिल तापस वहाँ से भी जा चुके थे। वक्रनास के गूढ़पुरुषों ने इन जटिल तापसों की खोज में सारे पाटलिपुत्र को छान मारा, पर उनका कहीं भी पता नहीं चला।

(२२)

गूढ़ मन्त्रणा

भगवान् अश्विन् के मन्दिर का पुजारी विश्वश्रवा शकटार का पुराना मित्र था। जिन दिनों महापद्म नन्द मगध के सम्राट् थे और शकटार उनके महामन्त्री के रूप में विशाल मागध साम्राज्य के कर्णधार थे, विश्वश्रवा ने अश्विन् के मन्दिर के लिए लाखों सुवर्ण-निष्क राजकोष से प्राप्त किए थे। शकटार के कैद हो जाने और वक्रनास के महामन्त्री बन जाने से विश्वश्रवा बहुत दुखी था। जटिल तापस का भेस बनाए हुए अपने पुराने मित्र शकटार को देखकर उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। उनसे बातचीत कर सब समाचार जानने के लिए वह बहुत उत्सुक था, पर शकटार का इशारा पाकर चुप रह गया। पाँचों जटिल तापसों ने जल्दी-जल्दी अपना भेस बदल डाला, जटाजूट उतारकर परे फेंक दिए और उदास्थित (परिव्राजक) का वेश बना लिया। विष्णुगुप्त गुरु बने और चन्द्रगुप्त तथा शकटार

उनके चेले। निपुणक और शिवदत्त सिर मुँडाकर मुण्ड तापस बन गए, और अश्विन् के मन्दिर के बाहर एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। जब वक्रनास के गूढ़पुरुष पाँच जटिल तापसों की खोज करते हुए अश्विन् के मन्दिर में आए, तो उन्हें इन उदास्थितों और मुण्ड तापसों पर जरा भी सन्देह नहीं हुआ। आचार्य विष्णुगुप्त तब उदास्थित गुरु के रूप में मन्दिर के बाहर आँगन में बैठे हुए श्रद्धालु गृहस्थों को कर्मफल के सम्बन्ध में उपदेश दे रहे थे, और उनके दोनों शिष्य अपने गुरु की महिमा का बखान करने में व्यापृत थे। रात होने पर जब सब श्रद्धालु दर्शनार्थी अपने-अपने घर चले गए, तो विश्वश्रवा ने शकटार के पास आकर कहा—'आचार्य! अब मन्दिर में बिलकुल एकान्त है। भगवान् अश्विन् की मूर्ति के पीछे एक गुप्तगृह है, जो सर्वथा सुरक्षित है। आइए, वहाँ पधारिए।'

शकटार, विष्णुगुप्त और उनके साथी विश्वश्रवा के साथ इस गुप्तगृह में गए और वहाँ भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में मन्त्रणा प्रारम्भ हुई।

'विष्णुगुप्त! तुमने मुझे बन्दीगृह से तो छुड़ा लिया, पर इस प्रकार छिपकर कब तक रहा जा सकता है? अब भविष्य के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या योजना है? मेरी सम्मति में तो शीघ्र ही पाटलिपुत्र से बाहर चले चलना चाहिए।' शकटार ने कहा।

'जिस प्रकार किसी बाह्य व्यक्ति के लिए पाटलिपुत्र में प्रवेश करना कठिन है, वैसे ही यहाँ से बाहर जा सकना भी सुगम नहीं है। वक्रनास के सत्री पाटलिपुत्र के चौंसठों महाद्वारों पर नियुक्त हैं। सब आने-जानेवालों पर वे निगाह रख रहे हैं। उनसे बचकर बाहर जा सकना सम्भव नहीं होगा।' विष्णुगुप्त ने उत्तर दिया।

'तो फिर यहाँ इस प्रकार कब तक गुजर होगा?'

'पाटलिपुत्र जैसे विशाल नगर में छिपकर रह सकना असम्भव नहीं है। क्यों शकटार! तुम्हारे तो यहाँ बहुत-से मित्र होंगे। वक्रनास को महामन्त्री बने अभी अधिक समय नहीं हुआ। कुछ मास पहले तक जो लोग तुम्हारे अनुयायी और मित्र थे, वे क्या अब हमारी सहायता नहीं करेंगे?'

'करेंगे क्यों नहीं? पर प्रश्न यह है कि वक्रनास के सत्रियों की निगाह से बचकर हम किस प्रकार अपने मित्रों को संगठित कर सकते हैं?'

'सुनो, शकटार! मेरी योजना को भलीभाँति समझ लो। हिमालय से समुन्द्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस आर्यभूमि को एक शासन के अधीन लाने के महान् उद्देश्य को सम्मुख रखकर मैं तक्षशिला से चला था। यवन देश में सिकन्दर के रूप में जिस अनुपम शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है,

उससे इस देश की रक्षा करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। मैं समझता था कि मगध के नेतृत्व में मेरा यह उद्देश्य पूर्ण हो सकेगा। महापद्म नन्द की भुजाओं में बल था, उसकी सैन्य-शक्ति अपार थी, और तुम्हारे जैसा योग्य मन्त्री उसे प्राप्त था। पर मेरे पाटलिपुत्र पहुँचने से पहले ही सारी स्थिति परिवर्तित हो गई। मगध का वर्तमान राजकुल इस योग्य नहीं है कि उसके नेतृत्व में भारत को एक शासन में लाया जा सके। पर अभी मगध की सैन्यशक्ति नष्ट नहीं हुई है। हमें इस राजकुल का अन्त करना होगा, किसी योग्य व्यक्ति को मगध के राजसिंहासन पर बिठाना होगा और वक्रनास के कुचक्र का अन्त करना होगा।'

'पर यह सब होगा किस प्रकार, विष्णुगुप्त ?'

'मगध की सेना का प्रधान आधार उसकी भृत सेना है। उसे अपने पक्ष में करना होगा। वक्रनास के कुचक्र में पड़कर सुमाल्य नन्द राजकोष को जिस प्रकार निर्दयता से लुटा रहा है, उसके कारण इस भृत सेना में शीघ्र ही असन्तोष उत्पन्न हो जाएगा। भृति प्राप्त करने वाले सैनिक तभी तक कार्य करते हैं, जब तक उन्हें नियमित रूप से वेतन मिलता रहे। वह समय दूर नहीं है, जब नन्द इन लाखों सैनिकों को समय पर वेतन दे सकने में असमर्थ हो जाएगा। हम धन के जोर पर इस भृत सेना को अपने पक्ष में कर लेंगे।'

'पर हमारे पास इतना धन आएगा कहाँ से ?'

'पहले मेरी पूरी बात सुन लो, शकटार! मगध की सेना में जो मौल सैनिक हैं, उन्हें हम यह कहकर अपने पक्ष में कर लेंगे कि सुमाल्य नन्द शूद्र है। शूद्र राजा की सेवा में रहना मगध के क्षत्रिय वीरों के लिए शोभा और गौरव की बात नहीं है। सैनिकों की श्रेणियों और आटविक सेनाओं को भी धन का लालच दिखाकर अपने पक्ष में करना होगा। मगध की राज-शक्ति का आधार उसकी सेना है, और इस सेना को अपने साथ मिलाए बिना नन्द का विनाश सम्भव नहीं होगा।'

'पर विष्णुगुप्त ! इस योजना की सफलता तो इसी बात पर निर्भर करती है कि हमारे पास धन हो, और धन भी इतना अधिक कि मगध की सेना नन्द का पक्ष छोड़कर हमारे साथ मिल जाए।'

'धन की समस्या पर मैंने विचार किया है, शकटार! पाटलिपुत्र में धनपति श्रेष्ठियों की कमी नहीं है। वक्रनास के कुचक्र से प्रजा परेशान है। नन्द रात-दिन भोग-विलास और नाच-रंग में मस्त रहता है। प्रजा उसी राजा के प्रति अनुरक्त रहती है, जो वीर हो। मगध के वैदेहक-ज्येष्ठकों

और श्रेष्ठियों को हमें अपने पक्ष में करना होगा। राजपरिवर्तन होने से इन्हें जो लाभ पहुँचेंगे, उन्हें समझाकर इन धनपतियों को अपनी योजना में सम्मिलित करना होगा। पाटलिपुत्र के लोग महापद्म नन्द के प्रति अनुरक्त थे, क्योंकि वह वीर था। जब उसकी सेनाएँ विजय-यात्रा के लिए चलती थीं, तो मगध के लोग गौरव अनुभव करते थे। कोशल, पाञ्चाल, कुरु, शूरसेन, सौराष्ट्र, कर्णाटक, महाराष्ट्र आदि कितने ही जनपदों को जीतकर उसने मगध के अधीन किया था। तुम ही तो उस समय मगध के महामन्त्री थे। इन जनपदों के राजकुलों को जड़ से उखाड़कर जब नन्द की सेनाएँ उनके राजकोष को ढो-ढोकर पाटलिपुत्र में लाती थीं, तो यहाँ के निवासी उल्लास से पागल हो जाया करते थे। वक्रनास ने ही इस महापद्म नन्द की रूपाजीवा मदनिका द्वारा हत्या करायी थी। क्या पाटलिपुत्र के श्रेष्ठियों को यह सब बताकर सुमाल्य नन्द और वक्रनास के विरुद्ध भड़काया नहीं जा सकता? तुम्हारे द्वारा जो हजारों गूढ़पुरुष और सत्री पाटलिपुत्र में नियुक्त थे, क्या वे उस समय हमारा साथ देने के लिए तैयार नहीं हो जाएँगे, जब उन्हें ज्ञात होगा कि आचार्य शकटार जैसा चाणाक्ष राजनीतिज्ञ वक्रनास के कुचक्र का अन्त करने के लिए मैदान में उतर आया है। बोलो, मेरी यह योजना क्रियात्मक है या नहीं?'

'निःसन्देह, क्रियात्मक है।'

'और सुनो। पाटलिपुत्र के श्रेष्ठियों को अपने पक्ष में करने से पूर्व भी हमें धन की आवश्यकता होगी। इस सम्बन्ध में भी मैंने विचार किया है। इसके लिए हमें दो उपाय करने होंगे—जाली सिक्के बनाना और देवप्रतिमाओं की प्रेक्षा कर धन एकत्र करना। देखो, घबराओ नहीं। औशनस नीति हम दोनों ने साथ-साथ पढ़ी है। ऐसे अवसर उपस्थित होते हैं, जब 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति का अनुसरण करना पड़ता है। उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई बार हीन उपायों का भी अवलम्बन करना होता है। पाटलिपुत्र के लोगों के हृदयों में धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा है। यहाँ के श्रेष्ठियों ने बौद्ध विहारों और जैन मठों के लिए कोटि-कोटि धन दान दे रखा है। जयन्त और अश्विन् के मन्दिरों में भी लाखों निष्क प्रतिदिन चढ़ावे में चढ़ाए जाते हैं। यह सब धन किस काम में आता है, निकम्मे भिक्षुओं और साधुओं के निष्प्रयोजन जीवन के लिए। हम एक नई देवप्रतिमा की प्रतिष्ठा करेंगे। मेरा शिष्य शिवदत्त देखने में एक योगी-सा दिखाई देता है। मुण्ड तापस के भेस में वह सचमुच एक योगी-सा मालूम पड़ता है। कल जब श्रद्धालु गृहस्थ इस मन्दिर में पूजा

के लिए आएँगे, तो वह समाधि लगाकर बैठ जाएगा। निपुणक उसकी सेवा करेगा। समाधिस्थ मुण्ड शिवदत्त के चारों ओर जब श्रद्धालु गृहस्थ घिर जाएँगे, तो वह आँखें बन्द किए-किए कहेगा, 'मुझे भगवान् वैश्रवण ने दर्शन दिए हैं। उनकी एक प्रतिमा सामने के वट वृक्ष के नीचे दबी पड़ी है। भगवान् का आदेश है कि उस प्रतिमा का उद्धार करो और वहाँ एक मन्दिर की स्थापना करो।' वैश्रवण की मूर्ति वट वृक्ष के नीचे रात को ही गाड़ दी जाएगी। योगिराज शिवदत्त का आदेश पाकर निपुणक वैश्रवण की मूर्ति के उद्धार के लिए चल पड़ेगा। सैकड़ों सम्पन्न गृहस्थ उसके साथ होंगे। वैश्रवण धन के देवता हैं; शकटार! पाटलिपुत्र के श्रेष्ठी उनकी मूर्ति को प्रतिष्ठापित करने के लिए दिल खोलकर धन देंगे। बात-की-बात में लाखों सुवर्ण निष्क वैश्रवण के मन्दिर के लिए एकत्र हो जाएँगे।'

'तुम तो बड़े कूटनीतिज्ञ हो गए हो, विष्णुगुप्त!'

'मेरी प्रतिज्ञा तुम्हें ज्ञात है। मेरा उद्देश्य महान् है, उसकी पूर्ति के लिए हीन साधनों का अवलम्बन करने में मैं संकोच नहीं करूँगा। गृहस्थों का कोटि-कोटि धन जो इन निरर्थक विहारों और मठों में खर्च हो रहा है, उसके कुछ अंश का सदुपयोग इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्यों न किया जाए? और सुनो शकटार! जब से सुमाल्य नन्द मगध के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ है, वह राजकोष के धन को पानी की तरह बहा रहा है। सदियों का संचित धन नटों, नर्तकों, वादकों, रूपाजीवाओं और पेशलरूपा दासियों द्वारा पाटिलपुत्र के बाजार में आ गया है। पाटलिपुत्र में धन की बाढ़-सी आ गई है। रूपाजीवाएँ नन्द से सुवर्ण प्राप्त करती हैं और उससे ताम्बे के कार्षापण खरीदती हैं, क्योंकि बाजार में तो कार्षापण ही चलते हैं न? हम जाली कार्षापण बनाएँगे और उनसे सुवर्ण प्राप्त करेंगे।'

'यह तो बहुत अनुचित होगा, विष्णुगुप्त!'

'तुम उचित-अनुचित की बात सोचते हो, शकटार! आज जो कुछ पाटलिपुत्र में हो रहा है, क्या वह उचित है? मागध सम्राट् का रात-दिन मदिरा पीकर मस्त रहना, पेशलरूपा दासियों को अंक में भरकर पड़े रहना और गणिकाओं के नृत्यों में अपनी सुध-बुध भूल जाना क्या उचित है? तुम्हारे जैसे महामन्त्री को बन्दीगृह की कालकोठरी में बन्द करके भूख से तड़पा-तड़पाकर मारना क्या उचित है? हमें मगध के वर्तमान राजकुल को नष्ट करना ही होगा। मगध की राजशक्ति का पुनरुद्धार कर हमें इस आर्यभूमि को विदेशी यवनों द्वारा पदाक्रान्त होने से बचाना ही होगा।

इसके लिए यदि हमें कुछ अनुचित साधनों का भी अवलम्बन करना पड़े, तो मैं उसे बुरा नहीं मानूंगा।'

'पर जाली कार्षापण तैयार करना तो बहुत बुरी बात है, विष्णुगुप्त! ऐसा काम करनेवालों को तो कण्टकशोधन न्यायालय द्वारा कठोर दण्ड मिलता है। ऐसे लोग तो समाज के भयंकर शत्रु होते हैं। क्या तक्षशिला का विश्वविख्यात आचार्य भी उन जालसाजों के मार्ग का अनुसरण करेगा, जिनका स्थान नगरों और ग्रामों में न होकर बन्दीगृहों में होता है।'

'तुम तो औशनस नीति को एकदम भूल गए हो, शकटार! इसी लिए तो वक्रनास महापद्म नन्द की हत्या कराने और एक विलासी कुमार को राजसिंहासन पर बिठाने में समर्थ हो सका। अच्छा, सुनो शकटार, क्या नर हत्या अच्छी बात है?'

'नहीं, नर-घातक की सजा केवल एक है, प्राणदण्ड।'

'पर तुम नर-घातक को प्राणदण्ड क्यों देते हो? तुम भी तो इससे एक मनुष्य की हत्या कराते हो। प्राणदण्ड के समर्थन का अभिप्राय यह हुआ कि नरहत्या उस दशा में अच्छी बात हो जाती है, जब उससे अन्य मनुष्यों के जीवन की रक्षा में सहायता मिलती है। इसी प्रकार युद्ध के समय शत्रु के रक्त से अपने को लथपथ करने के कार्य को तुम कैसा समझते हो?'

'अत्यन्त उत्तम, क्योंकि यह तो क्षत्रिय वीरों का परम धर्म है।'

'पर यदि कोई मनुष्य युद्ध के अतिरिक्त अन्य समय में किसी पर तलवार चलाए, तो तुम उसे क्या समझोगे, शकटार?'

'हत्यारा।'

'तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि किसी मनुष्य पर तलवार से आक्रमण करना एक समय में धर्म होता है, और दूसरे समय में वही हत्या-कार्य हो जाता है। इसी प्रकार सोचकर देखो, जाली कार्षापण तैयार करना और देवप्रतिमाओं की प्रेक्षा द्वारा धन एकत्र करना साधारण समय में वस्तुतः अनुचित है, परन्तु ऐसे अवसर भी हो सकते हैं, जब कि किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए इनका अवलम्बन करना अनुचित न समझा जाए। यह अवसर ऐसा ही है।'

'पर पाटलिपुत्र में रहते हुए हम वक्रनास की निगाह से कैसे बचे रह सकेंगे?'

'देखो, शकटार! मेरी योजना यह है कि मैं उदास्थित गुरु के रूप में भगवान् अश्विन् के मन्दिर में निवास करूँगा। तुम और चन्द्रगुप्त मेरे चेले बनकर रहोगे। लोग हमारे दर्शनों को आएँगे, किसी को हम पर सन्देह

नहीं होगा। जो तुम्हारे पुराने साथी हों, जिन पर तुम्हें विश्वास हो, उनको कहना—गुरु महाराज से दीक्षा लेने के लिए एकान्त में सूर्योदय से पहले आकर मिलना। जब वे एकान्त में मुझसे मिलेंगे, तो मैं उन्हें सब काम समझा दूँगा। शिवदत्त और निपुणक मुण्ड तापस के भेस में वैश्रवण की मूर्ति को प्रकट करेंगे और उसके मन्दिर के लिए धन एकत्र करेंगे। जब पर्याप्त धन एकत्र हो जाएगा, तो चम्पा, काशी, श्रावस्ती आदि अन्य नगरियों में भगवान् वैश्रवण की प्रेक्षा द्वारा धन एकत्र करने के निमित्त वे पाटलिपुत्र से बाहर चले जाएँगे। हमारे बहुत-से विश्वस्त व्यक्ति उनके साथ रहेंगे। किसी को उन पर सन्देह नहीं होगा। कुछ दिन और पाटलिपुत्र में रहकर हम भी यहाँ से चल पड़ेंगे, क्योंकि रमते योगी किसी एक स्थान पर देर तक थोड़े ही ठहर सकते हैं। धन के जोर पर हम बाहर जाकर भृत सेना एकत्र करेंगे और उपयुक्त अवसर देखकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर देंगे। इस बीच में हमारे विश्वस्त गूढ़पुरुष यहाँ अपने कार्य को जारी रखेंगे। जो राजपुरुष धन के लालच से हमारा साथ देने को उद्यत हों, उन्हें धन देकर और सुमाल्य नन्द के शूद्र होने के कारण जो उसके विरुद्ध हों, उनके जातीय अभिमान को भड़काकर ये गूढ़पुरुष बहुत-से अमात्यों, सेनापतियों और अन्य राजपुरुषों को हमारे पक्ष में कर लेंगे। जिस दिन हमारी भृत सेनाएँ पाटलिपुत्र पर आक्रमण करेंगी, हमारे गूढ़पुरुष विद्रोह कर देंगे। नाच-रंग में मस्त नन्द हमारा मुकाबिला नहीं कर सकेगा। निःसन्देह, वक्रनास चाणाक्ष राजनीतिज्ञ है, पर इस बात को मत भूलो कि यदि स्वामी प्रमादी हो, तो भृत्य भी प्रमादी हो जाते हैं। भृत्य तभी उद्यम करते हैं, जब स्वामी भी उद्यमी हो।'

'पर विष्णुगुप्त ! मेरे लिए अश्विन् के मन्दिर में रह सकना आशंका से शून्य नहीं होगा। वक्रनास के सत्री और सैनिक मेरी खोज में तत्पर हैं।'

'तुम दर्पण में अपने चेहरे को तो देखो। उदास्थित साधु के भेस में तुम महामन्त्री शकटार से इतने भिन्न हो गए हो कि भाभी भी तुम्हें नहीं पहचान सकेंगी।'

बहुत देर तक इसी प्रकार मन्त्रणा जारी रही। सोच-समझकर सब योजना तैयार कर ली गई। भगवान् अश्विन् का मन्दिर आचार्य विष्णुगुप्त की कूटनीति का केन्द्र बन गया। विष्णुगुप्त और वक्रनास दोनों औशनस नीति में निपुण थे। अब उनके मन्त्र-युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

(२३)

वक्रनास की कूटनीति

मागध साम्राज्य के महामन्त्री आचार्य वक्रनास पाटलिपुत्र के राज-प्रासाद के विशाल उद्यान में टहल रहे थे। उनका मुखमण्डल चिन्ताकुल था और वे बार-बार पश्चिम की ओर देखने लगते थ, मानो किसी के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हों। थोड़ी देर बाद एक दण्डधर उनके समीप आया और अभिवादन करके बोला—'आचार्य ! प्रियंवदक आपसे मिलने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'उसे तुरन्त मेरे पास यहाँ भेज दो। यह ध्यान रखो कि कोई अन्य व्यक्ति इस उद्यान में प्रवेश न कर सके।'

'जो आज्ञा, आचार्य !' कहकर दण्डधर तुरन्त वहाँ से चला गया।

'प्रियंवदक महामन्त्री को प्रणाम करता है।' प्रियंवदक ने आकर कहा। वह वक्रनास का प्रधान गूढ़पुरुष था, और सैकड़ों गूढ़पुरुष तथा सत्री उसकी अधीनता में कार्य करते थे।

'कहो प्रियंवदक ! शकटार का कुछ पता चला ?'

'नहीं, आचार्य ! मैंने पाटलिपुत्र का कोना-कोना छान डाला, पर शकटार का कहीं पता नहीं चला।'

'तुम्हारे सत्री शकटार के घर पर नियुक्त हैं न ? उन्होंने क्या सूचना दी ? कोई आदमी उसके घर आया ?'

'नहीं, आचार्य ! शकटार के घर पर नियुक्त मेरे सत्रियों की निगाह से कोई भी व्यक्ति बचा नहीं रह सकता। पाँच जटिल तापस गृहस्थों को अपनी चरणधूलि सिर पर धारण करने का अवसर देते हुए शकटार के घर भी गए थे। पर बाद में उन लोगों का कहीं पता नहीं चला। रमते साधुओं का क्या ठिकाना ? मालूम होता है, वे पाटलिपुत्र से कहीं और चले गए।'

'तो शकटार के सम्बन्ध में तुम क्या सोचते हो ?'

'पार्वती को उसके विषय में अवश्य मालूम होगा। यदि उसे बन्दीगृह में डाल दिया जाए, तो कैसा रहेगा, आचार्य ! यदि बन्दीगृह में उसे पीड़ा पहुँचाई जाए, तो वह अवश्य शकटार का पता बता देगी। और यदि इस उपाय से भी शकटार का पता मालूम न हो सके, तो यह घोषणा कर दी जाए, कि पार्वती को शूली पर चढ़ाया जा रहा है। उसे तभी छोड़ा जा

सकता है, जब शकटार स्वयं आकर आत्मसमर्पण कर दे।'

'नहीं, प्रियंवदक ! पाटलिपुत्र के लोग पहले ही हमारे विरुद्ध हैं। यदि पार्वती को शूली पर चढ़ाए जाने की बात उन्हें मालूम हुई, तो विद्रोह की सम्भावना हो सकती है। मगध में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो अब भी शकटार के प्रति अनुराग रखते हैं।'

'तो फिर क्या किया जाना चाहिए, आचार्य !'

'तुम अपने सत्रियों को सावधान कर दो। वे शकटार के मकान पर रात-दिन निगाह रखें। शकटार पार्वती से मिलने आए बिना कदापि नहीं रहेगा। वैदेहक, वणिक्, गृहपतिक, उदास्थित, तापस, छात्र आदि किसी भी भेस में जो कोई भी व्यक्ति पार्वती से मिलने के लिए आए, उसका पीछा करो। उसे अपनी निगाह से ओझल न होने दो। पार्वती जहाँ कहीं जाए, जिस किसी से मिले-जुले, जिस किसी से बातचीत करे, उस सब की सूचना तुरन्त मुझे दो। क्या पार्वती अपने मकान से बाहर कहीं आती-जाती है ?'

'हाँ, आचार्य ! भगवान् अश्विन् के मन्दिर में एक उदास्थित महात्मा अपने शिष्यों के साथ पधारे हुए हैं। सुना है, बड़े पहुँचे हुए साधु हैं। वह बहुधा उनके दर्शन के लिए जाया करती है।'

'तुमने ध्यान से देखा, कहीं उन गुरु-चेलों में कोई शकटार तो नहीं है। उन्नत भाल और ऊँची नाक से शकटार को सुगमता से पहचाना जा सकता है।'

'मुझे उदास्थित महात्मा के एक चेले पर सन्देह हुआ था। पर जाँच करने से मालूम हुआ कि वह विन्ध्याचल में चित्रकूट का निवासी है। पाटलिपुत्र में नया ही आया है।'

'पर उदास्थित साधु की इस मण्डली पर कड़ी निगाह रखना। जब पार्वती इनके दर्शन के लिए जाती है, तो शकटार भी अवश्य वहाँ आता होगा। अच्छा, तक्षशिला के विष्णुगुप्त का भी कुछ पता चला ? वही इस सब उपद्रव का मूल है।'

'मेरे सत्रियों ने बहुत यत्न किया, आचार्य ! पर पता नहीं वह कहाँ जा छिपा है। वह शकटार के घर आकर ठहरा था, पर अब वह वहाँ नहीं है। धनदत्त की पण्यशाला की तलाशी लेने पर भी उसका कहीं पता नहीं चला। पाटलिपुत्र के सब पान्थागार, मन्दिर, मठ और विहार भी हमने छान डाले, पर उसका कोई निशान नहीं मिला।'

'क्या तुमने रूपाजीवाओं के क्रीड़ागृहों और गणिकाओं की रंगशालाओं

की भी तलाशी ले ली है ?'

'नहीं, आचार्य ! तक्षशिला का वह ब्राह्मण ऐसे स्थानों पर क्या ठहरेगा !'

'नहीं, प्रियंवदक ! उस कूट ब्राह्मण के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। आज ही पाटलिपुत्र की सब रंगशालाओं और क्रीड़ागृहों की छानबीन कर डालो।'

'जो आज्ञा।'

'उस दासीपुत्र चन्द्रगुप्त का भी कहीं पता चला ?'

'नहीं, आचार्य ! मुझे निश्चय था कि अपनी माता मुरादेवी से भेंट करने के लिए वह अवश्य अन्तःपुर में आएगा। मैंने अनेक विश्वस्त सत्री मुरादेवी के भवन के चारों ओर नियत कर दिए थे। पर चन्द्रगुप्त अन्तःपुर में प्रविष्ट ही नहीं हुआ।'

'विराधगुप्त, विरुधक, भानुवर्मा आदि का भी कुछ समाचार मिला ?'

'नहीं, आचार्य ! मेरे सब सत्री उन्हें ढूंढ़ते-ढूंढ़ते परेशान हो गए हैं। मालूम नहीं, उन्हें जमीन निगल गई या वे आकाश में कहीं समा गए।'

'देखो, प्रियंवदक ! मुझे तुम पर बड़ा भरोसा था। पर तुम्हारे गूढ़पुरुष और सत्री तो एकदम निकम्मे हो गए हैं। अच्छा, एक काम करो। यह घोषणा कर दो कि जो कोई व्यक्ति शकटार, चन्द्रगुप्त, विष्णुगुप्त, विराधगुप्त, विरुधक, भानुवर्मा आदि का पता देगा, उसे एक लक्ष सुवर्ण निष्क इनाम में दिए जाएँगे। एक लक्ष निष्क बहुत होते हैं, प्रियंवदक ! इस धन के लालच से इन राजद्रोहियों का पता करने में अवश्य सहायता मिलेगी।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'एक काम और करो, प्रियंवदक ! पाटलिपुत्र के दुर्गपाल और दौवारिक को आदेश दे दो कि महामन्त्री की अनुमति के बिना किसी व्यक्ति को पाटलिपुत्र से बाहर न जाने दिया जाए।'

'यह तो बहुत कठिन होगा, आचार्य ! शिल्प, व्यापार आदि के लिए हजारों आदमी प्रतिदिन पाटलिपुत्र से बाहर आते-जाते हैं। सम्राट् के विरुद्ध कोई बड़ा षड्यन्त्र जारी है, जनता को इस बात का सन्देह हो जाने से बहुत हानि होगी।'

'तुमने ठीक कहा, प्रियंवदक ! पर दौवारिक को सूचित कर दो कि जो कोई आदमी पाटलिपुत्र से बाहर जाएँ, उन पर कड़ी निगाह रखें।

जिन पर जरा भी सन्देह हो, उन्हें तुरन्त गिरफ्तार कर लिया जाए। और सम्राट् का क्या हाल है, प्रियंवदक !'

'उधर से आप निश्चिन्त रहें, आचार्य ! सम्राट् को गणिका वासन्ती के संगीत और नृत्य से ही अवकाश नहीं है। वे रात-भर क्रीड़ागृह में रहते हैं, और दिन का समय रात की खुमारी बिताने में व्यतीत करते हैं।'

'तुम मेरी बात नहीं समझे, प्रियंवदक ! विष्णुगुप्त और शकटार उनकी हत्या का प्रयत्न अवश्य करेंगे। उनके जीवन की रक्षा के लिए हमें विशेष रूप से सावधान रहना होगा।'

'इसका सब प्रबन्ध मैंने कर लिया है, आचार्य ! जो गणिकाएँ, रूपाजीवाएँ और पेशलरूपा दासियाँ उनके क्रीड़ागृह में जाती हैं, उनकी सुचारु रूप से परीक्षा कर ली जाती है। उनकी वेणी तक खुलवाकर देखी जाती है। उनके नूपुर, आभूषण, वस्त्र आदि सब की पहले ही परीक्षा कर ली जाती है। विष-चिकित्सक वैद्य उस मदिरा, भोजन और जल तक की जाँच कर लेते हैं, जो सम्राट् के क्रीड़ागृह में जाता है।'

'पर उस पराग की परीक्षा करने की भी व्यवस्था तुमने की है या नहीं, जिसे गणिकाएँ और रूपाजीवाएँ अपने मुख पर लगाती हैं। उसमें भी विष मिलाया जा सकता है, ऐसा हलाहल विष चुम्बन द्वारा जिसके मुँह में पहुँचते ही मनुष्य का क्षण-भर में अन्त हो जाए।'

'इसकी व्यवस्था भी कर दी जाएगी, आचार्य !'

'और सुनो, प्रियंवदक ! प्रतीत होता है, कि भगवान् अश्विन् का मन्दिर ही इस षड्यन्त्र का केन्द्र है। जटिल तापस वहीं आकर ठहरे थे, और विराधगुप्त के मकान पर अनुष्ठान करके वे वहीं वापस गए थे। मन्दिर के पुजारी विश्वश्रवा का चरित्र कैसा है ?'

'वह बड़ा सच्चरित्र व्यक्ति है, आचार्य ! सांसारिक वैभव और राजनीति से वह कोई मतलब नहीं रखता। उस पर सन्देह करना निरर्थक है।'

'सन्देह से परे कोई भी नही होता, प्रियंवदक ! तुम उसकी गतिविधि पर निगाह रखो। उसकी आयु कितनी होगी ?'

'कोई चालीस वर्ष के लगभग।'

'उसकी पत्नी जीवित है ?'

'जीवित है, आचार्य !'

'वह रूपवती है ?'

'नहीं, आचार्य ! सन्तान का बोझ वहन करते-करते वह असमय में ही

बूढ़ी हो गई है।'

'तो ठीक है। तुम्हारे पास सबसे सुन्दरी रूपाजीवा कौनसी है ?'

'रूप और यौवन में सबसे बढ़कर वासन्ती है, आचार्य ! पर उसे आपने सम्राट् सुमाल्य नन्द की सेवा में नियुक्त कर रखा है।'

'और किसी रूपाजीवा का नाम लो, जो रूप-यौवन से सम्पन्न होने के साथ-साथ चतुर भी हो।'

'मदलेखा सब प्रकार से उपयुक्त है, आचार्य !'

'तो एक काम करो। मदलेखा को पुजारी विश्वश्रवा के पास भेज दो। वह एक योगिनी का भेस बनाए और अश्विन् के मन्दिर में जाकर आसन जमा ले। विश्वश्रवा को रिझाने में वह कोई कसर बाकी न रखे। कौन ऐसा युवक है, जो सुन्दरी के नयन-बाणों से बचा रह सकता है ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की तपस्या और साधना भी सुन्दरियों के कटाक्षों से भंग हो जाती है। विश्वश्रवा मदलेखा के जाल में फँस जाएगा और वह अश्विन् के मन्दिर के रहस्य को सुगमता से जान जाएगी।'

'पर क्या मदलेखा एक साधारण से पुजारी के पास जाना पसन्द करेगी, आचार्य ! बड़े-बड़े श्रेष्ठी और राजपुरुष उसकी कृपादृष्टि के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं।'

'देखो, प्रियंवदक ! मगध के इस कानून को मत भूलो कि यदि कोई रूपाजीवा राजाज्ञा का उल्लंघन कर किसी पुरुष के पास जाने से इन्कार करे, तो उसे एक सहस्र कोड़े लगाए जाने का दण्ड दिया जाए।'

'मैं मदलेखा को आज ही भगवान् अश्विन् के मन्दिर में भेज दूंगा।'

'और सुनो, प्रियंवदक ! तुम्हारे गूढ़पुरुषों में सब से अधिक चतुर कौनसे हैं ?'

'समिद्धार्थक और सानुवर्मा न केवल विश्वस्त हैं, पर साथ ही अत्यन्त चतुर भी हैं, आचार्य !'

'उनसे कहो कि भेस बदलकर तुरन्त भगवान् अश्विन् के मन्दिर में जाएँ और उस उदास्थित की शिष्यमण्डली में प्रविष्ट होने का प्रयत्न करें। उन्हें कहो, कि वे समृद्ध वैदेहक का रूप बनाकर वहाँ जाएँ और रजत-सुवर्ण की भेंट चढ़ाकर उदास्थित साधु को सन्तुष्ट करें। यदि वे अपने कार्य में निपुण हैं, तो उन्हें उस उदास्थित की मण्डली में प्रवेश पाने में विशेष कठिनता नहीं होगी।'

'उनके कौशल पर आप भरोसा रख सकते हैं, आचार्य !'

'देखो प्रियंवदक ! तक्षशिला के इस ब्राह्मण ने पाटलिपुत्र में आकर

जिस कुचक्र का प्रारम्भ किया है, वह अत्यन्त भयंकर है। यदि उसे सफलता मिल गई, तो हम सब का जीवन ही संकट में पड़ जाएगा। मुझे उस ब्राह्मण से कुछ भय-सा अनुभव होने लगा है।'

'आप सर्वथा निश्चिन्त रहें, आचार्य ! मेरे गूढ़पुरुष अपने कर्तव्य में जरा भी प्रमाद नहीं करेंगे।'

'एक बात और सुनो, प्रियंवदक ! पिछले दिनों में कोई नया व्यक्ति तो सम्राट् के अन्तःपुर और राजप्रासाद में नहीं आया है ? कोई नई दासी, कोई नई रूपाजीवा, गणिका या परिचारिका ?'

'ये तो प्रतिदिन ही नई-नई आती रहती हैं, आचार्य ! सुमाल्य नन्द रूपाजीवाओं और गणिकाओं के पीछे कुछ पागल-से हो गए हैं। अब उन्हें वासन्ती से भी सन्तोष अनुभव नहीं होता। उन्हें नित्य नई रूपाजीवा चाहिए। बेचारा गणिकाध्यक्ष परेशान है। विशाल मागध साम्राज्य में सर्वत्र उसके आदमी फिरते रहते हैं, नई-नई गणिकाओं और रूपाजीवाओं की खोज में। अभी कल की बात है, नन्द गणिकाध्यक्ष पर बिगड़ खड़े हुए। वह जिस नई रूपाजीवा को सम्राट् की भेंट के लिए लाया था, वह जरा संकोचशील थी। सम्राट् चाहते हैं, जो रूपाजीवा उनके पास आए, वह मादक हो, उन्मत्त हो, खुद पिए और उन्हें पिलाए। सहस्रों दीपकों के उज्ज्वल प्रकाश में, सैकड़ों आँखों के सामने वह अपने को निरावरण कर दे और सम्राट् की कामाग्नि में अपने को भस्म कर दे। उसने जरा संकोच किया, तो सम्राट् बिगड़ खड़े हुए। यदि वासन्ती उन्हें न सँभाल लेती, तो न मालूम वे क्या अनर्थ कर बैठते।'

'यह बात तो बड़ी भयंकर है, प्रियंवदक ! विष्णुगुप्त और शकटार रूपाजीवा के रूप में किसी विषकन्या को नन्द की हत्या के लिए भेज सकते हैं। यदि उन्होंने अपने किसी गूढ़पुरुष द्वारा किसी विषकन्या को गणिकाध्यक्ष के सुपुर्द कर दिया, तो क्या होगा ? ये विषकन्याएँ बड़ी मादक होती हैं, उन्मत्त होकर आलिङ्गन करती हैं, और इनका क्षण-भर का स्पर्श ही मानव जीवन का अन्त कर देने के लिए पर्याप्त होता है।'

'पर इसका कोई उपाय भी है, आचार्य !'

'उपाय किस बात का नहीं है, प्रियंवदक ! गणिकाध्यक्ष से कहो, जो भी नई रूपाजीवा नन्द के पास भेजी जाए, पहले उसकी सब प्रकार से परीक्षा कर ली जाए।'

'परीक्षा तो इनकी की ही जाती है, आचार्य !'

'केवल वस्त्रों, केशों और आभूषणों की ही परीक्षा नहीं, प्रियंवदक !

इनके शरीर की भी परीक्षा करो। पहले कोई अन्य पुरुष इनका चुम्बन, आलिंगन आदि करके देख ले। उसके बाद ही इन्हें नन्द के पास भेजा जाए।'

'पर यदि कोई रूपाजीवा सचमुच विषकन्या हुई, आचार्य! तो उसे स्पर्श करने वाला व्यक्ति तुरन्त ही मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। इसके लिए कौन तैयार होगा, आचार्य!

'क्या कहा, प्रियंवदक! कौन तैयार होगा? जिसे आदेश दिया जाएगा, उसे यह कार्य करना ही होगा। राजाओं और राजपुत्रों की रक्षा करना हँसी-खेल नहीं है, प्रियंवदक!'

'पर आचार्य! इस कार्य को केवल वही पुरुष कर सकेगा, जो सम्राट् के समान ही विलास की प्रवृत्ति रखता हो। मैं तो ऐसा कार्य कदापि नहीं कर सकता।'

'नहीं, प्रियंवदक! यदि विलासी पुरुष यह कार्य करेगा, तो हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। शत्रु की ओर से नियुक्त रूपाजीवा उसे सुगमता से धोखा दे देगी। इसे तो कर्तव्य-बुद्धि से करना होगा। औशनस नीति का अनुसरण कर हम शत्रु देश का भेद लेने के लिए जिन रूप-यौवन-सम्पन्ना स्त्रियों को नियुक्त करते हैं, वे क्या विलास की भावना से पर-पुरुषों के पास जाती हैं? नहीं, प्रियंवदक! वे केवल कर्तव्य-भावना से ही ऐसे कार्य में तत्पर होती हैं, जिससे उनकी अन्तरात्मा घृणा करती है। राजा की रक्षा के लिए किसी विश्वस्त और सच्चरित्र पुरुष को इस कार्य के लिए तैयार करना होगा।'

'आपके आदेश का पालन किया जाएगा, आचार्य!'

'अच्छा, प्रियंवदक! अब तुम जाओ। विष्णुगुप्त और शकटार के इस षड्यन्त्र का प्रत्युपाय करने में जुट जाओ। यदि तुम इसमें सफल हुए, तो तुम्हें आन्तर्वंशिक के पद पर नियुक्त कर दिया जाएगा।'

(२४)

आचार्य विष्णुगुप्त का अभियान

दो दिन बाद की बात है, महामन्त्री वक्रनास राजप्रासाद के उद्यान में चिन्ताग्रस्त हुए बैठे थे। प्रियंवदक के गूढ़पुरुष और सत्री विष्णुगुप्त, शकटार और चन्द्रगुप्त का कुछ भी पता नहीं लगा सके थे। वक्रनास

इससे बहुत परेशान हो रहे थे, कि एक दण्डधर नें आकर उन्हें प्रणाम किया।

'कहो, दण्डधर ! क्या बात है ?'

'एक मुण्ड तापस राजप्रासाद के पूर्वी द्वार पर खड़ा है। वह महामन्त्री से भेंट करना चाहता है।'

'उसे मुझसे क्या काम है ?'

'दौवारिक के सैनिकों ने उससे बहुत पूछा, पर वह कोई उत्तर नहीं देता। कहता है, मैं अपने कार्य को महामन्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी से नहीं कहूँगा।'

'अच्छा, उसे यहाँ ले आओ। पर उसके वस्त्र और शरीर की भली-भाँति परीक्षा कर लेना।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

एक मुहूर्त बाद मुण्ड तापस को साथ लेकर दण्डधर वक्रनास की सेवा में उपस्थित हुआ।

'महामन्त्री को प्रणाम करो, तापस !' दण्डधर ने चिल्लाकर कहा।

'तापस लोग गृहस्थियों को प्रणाम नहीं किया करते, दण्डधर !' मुण्ड तापस ने उत्तर दिया।

'कोई बात नहीं, तापस ! आचार्य वक्रनास आपको प्रणाम करता है।' महामन्त्री ने कहा।

'महामन्त्री दीर्घायु हों।' तापस ने आशीर्वाद दिया।

'अब आप अपने पधारने का प्रयोजन कहिए।' वक्रनास ने कहा।

'इस दण्डधर को दूर भेज दीजिए। मैं एकान्त में आप से कुछ बातें करना चाहता हूँ।'

'दण्डधर ! तुम जाओ।'

दण्डधर के चले जाने पर मुण्ड तापस ने कहा—'आचार्य ! मैं भगवान् अश्विन् के मन्दिर में वटवृक्ष के नीचे धूनी रमाए हुए हूँ। मेरे गुरु को भगवान् वैश्रवण ने समाधि में दर्शन दिए थे।'

'अच्छा, आप भगवान् अश्विन् के मन्दिर के मुण्ड तापस हैं ?'

'जी हाँ, आचार्य ! जिस समय हम दोनों वटवृक्ष के नीचे ध्यानमग्न बैठे थे, पाँच जटिल तापस वहाँ आए और समीप के पीपल के वृक्ष के नीचे आकर खड़े हो गए।'

'क्या आप इन जटिल तापसों को जानते हैं ?'

'हाँ, आचार्य ! उनकी हमसे बातचीत भी हुई थी। उस दिन ये जटिल

तापस विराधगुप्त नाम के किसी गृहस्थ के घर अनुष्ठान करने के लिए गए थे। वहाँ उन्हें भरपूर दक्षिणा मिली थी। कुछ सुवर्ण निष्क उन्होंने मुझे भी दिए थे।'

'वे जटिल तापस आपसे क्या बातें करते थे ?'

'आचार्य ! कल मैंने आपकी ओर से प्रचारित की गई घोषणा सुनी थी। एक लक्ष सुवर्ण निष्कों का इनाम ! मेरे गुरु ने भगवान् वैश्रवण की प्रतिमा की प्रेक्षा कर लाखों निष्क एकत्र कर लिए। पर मैं तो खाली हाथ ही रहा। अब वे वैश्रवण का मन्दिर बनवाएँगे, उसके महन्त बनकर आराम से जीवन बिताएँगे और मैं अन्तेवासी ही बना रहूँगा। एक लक्ष सुवर्ण निष्क तो बहुत होते हैं, आचार्य ! यदि मैं यह इनाम पा सकूँ, तो मैं भी पाटलिपुत्र में एक विशाल मन्दिर का निर्माण करा लूँगा। यहाँ के लोग बड़े श्रद्धालु हैं, आचार्य ! मन्दिरों में खूब भेंट-पूजा चढ़ाते हैं। मेरा जीवन भी आराम से कट जाएगा।'

'तो क्या आपको विष्णुगुप्त, शकटार और चन्द्रगुप्त का पता मालूम है ?'

'हाँ आचार्य ! वे जटिल तापस विष्णुगुप्त, शकटार और चन्द्रगुप्त ही थे। उनके साथ जो दो तापस और थे, उनमें से एक शायद विराधगुप्त था। पाँचवें आदमी को मैं नहीं जानता।'

'आपको यह कैसे मालूम हुआ, तापस !'

'वे आपस में जो बातें कर रहे थे, मैंने उन्हें सुन लिया। आपसे क्या छिपाऊँ, आचार्य ! किसी जमाने में मैं भी गूढ़पुरुष का काम कर चुका हूँ। मैं पाञ्चाल जनपद का निवासी हूँ। जब पाञ्चाल मगध के अधीन नहीं हुआ था, उन दिनों की बात है। मैं वहाँ गूढ़पुरुष का काम किया करता था।'

'किसकी ओर से ?'

'कोशलराज की ओर से, आचार्य ! जब कोशल और पाञ्चाल मगध ने जीत लिए, तो मैं जीवन से विरक्त हो गया और मुण्ड तापस बन गया। पर मेरा गूढ़पुरुष का अभ्यास अभी छूटा नहीं है, आचार्य ! और फिर धन की आवश्यकता किसे नहीं होती, आचार्य ! ओह, एक लक्ष सुवर्ण निष्क ! मेरा तो उद्धार हो जाएगा। जो लोग मुण्ड, जटिल या उदास्थित होकर संसार से विरक्त होने का प्रपंच करते हैं, उनका काम भी धन के बिना नहीं चलता, आचार्य ! क्या सचमुच आप मुझे एक लक्ष सुवर्ण निष्क दे देंगे ? यह तो बहुत बड़ी धनराशि है, आचार्य !'

'हाँ, यदि आपने विष्णुगुप्त, शकटार और चन्द्रगुप्त में से किसी एक का भी भेद बता दिया और उस भेद से हम उनमें से किसी एक को भी गिरफ्तार करने में समर्थ हुए, तो एक लक्ष सुवर्ण निष्क आपको मिल जाएँगे।'

'तो सुनिए, आचार्य ! वे मुण्ड तापस कह रहे थे, हमने आज वक्रनास के सत्रियों को कैसा धोखा दिया। बात-की-बात में शकटार को बन्दीगृह से छुड़वा लिया। इतने में एक तापस बोला---पर भाई शकटार ! अब यहाँ एक भी क्षण ठहरने का काम नहीं है। हमें तुरन्त पाटलिपुत्र से बाहर चले जाना चाहिए। इस पर शकटार ने कहा, मैं एक बार अपनी पत्नी से तो मिल लूँ। पर अन्य तापस इससे सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, पार्वती को वहीं बुला लेंगे, जहाँ जाकर हम आश्रय ग्रहण करेंगे। फिर उन्होंने पाटलिपुत्र से बाहर जाने के विषय में सलाह शुरू की। एक तापस ने कहा, मैं अभी तक्षशिला से आया हूँ। श्रेष्ठी धनदत्त के साथ मैं श्रावस्ती और काशी होता हुआ यहाँ आया था। श्रावस्ती का वैदेहक-ज्येष्ठक लक्ष्मीनाथ मेरा मित्र है। वह हमें अवश्य आश्रय दे देगा। उसकी पण्यशाला बहुत विशाल है, वहाँ हम आराम से रह सकेंगे। जब श्रावस्ती पहुँच जाएँगे, तो किसी सार्थवाह द्वारा पार्वती को सूचना भेज देंगे। तब वह भी वहीं चली आएगी। इसके बाद वे जटिल तापस भगवान् अश्विन् के मन्दिर से चले गए। मेरा विचार है कि ये छद्मवेशधारी तापस वे ही लोग थे, जिनकी गिरफ्तारी में सहायता देने के लिए आपने एक लक्ष सुवर्ण निष्कों के इनाम की घोषणा की है।'

'हाँ, यह असम्भव नहीं है। पर तुम सत्य बात कह रहे हो, इसका प्रमाण ?'

'आप अपने सत्रियों और सैनिकों को मेरे साथ कर दीजिए। यदि मैं इन राजद्रोहियों को गिरफ्तार करवा सकूँ, तो मुझे पारितोषिक दीजिए, अन्यथा मुझे बन्दीगृह में बन्द कर दीजिए।'

'तो तापस महाराज ! आप कब श्रावस्ती के लिए प्रस्थान कर सकेंगे ?'

'जब आपकी आज्ञा हो, महामन्त्री !'

'पर यदि मैं अपने राजपुरुषों द्वारा इन राजद्रोहियों को श्रावस्ती में गिरफ्तार करवा लूँ, तो आपको कोई विप्रतिपत्ति तो नहीं होगी, महाराज ?'

'आप जैसा उचित समझें, महामन्त्री ! पर यह न भूलें कि यदि वे गिरफ्तार हो गए, तो मैं एक लक्ष सुवर्ण निष्कों का अधिकारी हो जाऊँगा।

एक और निवेदन है, महामन्त्री ! ये राजद्रोही श्रावस्ती में अपने असली भेस में तो रहेंगे नहीं। मालूम नहीं, वहाँ जाकर वे कौन-सा स्वाँग भर लें। तापस बाबा तो सब जगह आ-जा सकते हैं, उन्हें कोई नहीं टोकता। मैं लक्ष्मीनाथ की पण्यशाला में जाकर उनका पता निकाल लूँगा। मुझे एक लक्ष सुवर्ण निष्क जो मिलने हैं। कितनी बड़ी रकम है यह ! मेरा जीवन आराम से कट जाएगा।'

'तो यही सही, तापस महाराज ! कल प्रातः ही पाटलिपुत्र से प्रस्थान कर दीजिए। मेरे दस विश्वस्त सत्री आपके साथ में रहेंगे।'

'पर महामन्त्री जी, मेरा एक निवेदन और है। आपके ये सत्री भी मुण्ड तापस का भेस बनाकर चलें। मैं गुरु बनूँ, और ये मेरे चेले। नहीं तो शकटार के गूढ़पुरुषों को हम पर सन्देह हो जाएगा।'

'तुम तो बड़े अनुभवी सत्री हो, तापस महाराज ! क्यों नहीं राजसेवा स्वीकृत कर लेते।'

'आपकी कृपा चाहिए, महामन्त्री जी ! यह भी कर लूंगा, पर एक प्रार्थना और है। मेरा गुरु अभिचार-क्रिया में बड़ा प्रवीण है। यदि उसकी आज्ञा के बिना मैं पाटलिपुत्र से चला गया, तो कहीं नाराज न हो जाए। उसके जादू-टोने से मुझे बड़ा डर लगता है।'

'तो उससे भी आज्ञा ले लो।'

'मैं उससे यह कहकर आज्ञा लूँगा कि भगवान् वैश्रवण के मन्दिर के लिए पाटलिपुत्र से तो बहुत धन एकत्र हो गया है। क्यों न काशी और श्रावस्ती में भी वैश्रवण की मूर्ति की प्रेक्षा की जाए, और वहाँ से भी धन एकत्र किया जाए। पर यदि वह भी मेरे साथ चलने को तैयार हो गया, तब तो बहुत बुरी बात होगी, महामन्त्री जी !'

'वह भी तुम्हारे साथ चला चले, इसमें हमारी क्या हानि है ?'

'पर वह अकेला तो नहीं चलेगा, महामन्त्री जी ! आजकल उसके भक्तों और अन्तेवासियों की संख्या बहुत बढ़ गई है। आठ-दस आदमी अवश्य ही उसके साथ रहेंगे।'

'तो इसमें भी क्या हानि है ? तुम अपने गुरु के साथ-साथ भगवान् वैश्रवण की मूर्ति की प्रेक्षा करते हुए चलो। हमारे सत्री भी तुम्हारे गुरुजी की शिष्य-मण्डली में शामिल हो जाएँगे। श्रावस्ती पहुँचकर तुम राजद्रोहियों को ढूँढ़ निकालना और उन्हें गिरफ्तार करवा के अपना इनाम ले लेना।'

'तो क्या इनाम लेने के लिए मुझे पाटलिपुत्र लौटकर आना होगा ?

यदि रास्ते में शकटार के किसी गूढ़पुरुष ने मेरी हत्या कर दी, तो मेरा क्या बनेगा, महामन्त्री जी !

'तब तुम सीधे यम के घर जा पहुँचोगे। पर तुम चिन्ता न करो, मैं श्रावस्ती के दुर्गपाल को आदेश भेज दूँगा कि यदि तापस महाराज किसी राजद्रोही को गिरफ्तार करा सकें, तो उन्हें एक लक्ष सुवर्ण निष्क राजकोष से दे दिए जाएँ।'

'आपकी बड़ी कृपा होगी, महामन्त्री जी ! श्रावस्ती भी क्या बुरी है, वहीं मन्दिर बनवाकर बस जाऊँगा।'

प्रणाम करके मुण्ड तापस ने वक्रनास से विदा ली। अगले दिन मुण्ड तापसों की एक मण्डली पाटलिपुत्र के पश्चिमी महाद्वार से निकलकर काशी की ओर चली गई। शायद पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं होगी कि विष्णुगुप्त, शकटार, चन्द्रगुप्त, शिवदत्त, निपुणक और विराधगुप्त भी इस मण्डली में सम्मिलित थे। मुण्ड तापस के रूप में जो व्यक्ति वक्रनास से मिला था, वह आचार्य विष्णुगुप्त का शिष्य निपुणक था, जो तक्षशिला से उनके साथ-साथ पाटलिपुत्र आया था। पाटलिपुत्र के महाद्वार पर दौवारिक के सैनिकों ने इस मण्डली को नहीं टोका, क्योंकि वक्रनास ने इनके सम्बन्ध में पहले ही दौवारिक के पास सूचना भेज दी थी।

मुण्ड तापसों की यह मण्डली निरन्तर पश्चिम की ओर चलती गई। मार्ग में वे जहाँ-कहीं ठहरते, लोगों को भगवान् वैश्रवण की मूर्ति का दर्शन कराते, और श्रद्धालु नर-नारी शक्ति-भर दान देकर पुण्य प्राप्त करते। जहाँ कहीं साँझ हो जाती, मुण्ड तापस किसी मठ, मन्दिर या पन्थागार में विश्राम के लिए ठहर जाते। इसी प्रकार चलती-चलती यह मण्डली काशी होती हुई कौशाम्बी की ओर मुड़ गई। तापस गुरु का यह विचार था कि श्रावस्ती जाने से पहले कौशाम्बी और प्रयाग भी होते चलें, ताकि वहाँ भी भगवान् वैश्रवण के मन्दिर के लिए धन एकत्र किया जा सके। कौशाम्बी पहुँचने से पूर्व यह मण्डली एक निर्जन स्थान पर ठहरी, जहाँ भगवान् शिव का एक छोटा-सा मन्दिर था। वहाँ न कोई नगर था, न कोई ग्राम। जंगल के एक बीहड़ प्रदेश में एक पुराना उजड़ा हुआ शिवमन्दिर था, जिसमें अब कोई पुजारी भी नहीं रहता था।

रात्रि के अन्धकार में जब सब मुण्ड तापस सोए हुए थे, चन्द्रगुप्त और निपुणक उठे और उन्होंने उन सत्रियों पर आक्रमण कर दिया, जो वक्रनास की ओर से राजद्रोहियों को गिरफ्तार करने के लिए श्रावस्ती जा रहे थे। यात्रा की थकान के कारण वेसुध सोए हुए सत्रियों को आत्मरक्षा का कोई

भी अवसर नहीं मिला। वे सब तलवार के घाट उतार दिए गए।

अब मुण्ड तापसों की मण्डली को श्रावस्ती जाने की आवश्यकता नहीं रही। आचार्य विष्णुगुप्त को अब अपने उस अभियान को प्रारम्भ करना था, जिसका उद्देश्य सुमाल्य नन्द को मागध साम्राज्य की राजगद्दी से उतारकर किसी ऐसे व्यक्ति को सम्राट् बनाना था, जो हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण आर्यभूमि को एक संगठन में संगठित कर सकने के कार्य का नेतृत्व करने के योग्य हो।

आचार्य विष्णुगुप्त ने भगवान् वैश्रवण की मूर्ति की प्रेक्षा द्वारा और जाली कार्षापण बनाकर पर्याप्त धन एकत्र कर लिया था। अब उसने भृत सेना एकत्र करने का कार्य प्रारम्भ किया। कौशाम्बी और प्रयाग के दक्षिण में उन दिनों एक महाकान्तार था, जो विन्ध्याचल तक फैला हुआ था। इस कान्तार में बहुत-सी आटविक जातियाँ निवास करती थीं। धन द्वारा उन्हें अपने पक्ष में कर विष्णुगुप्त ने बहुत-से आटविक सैनिक अपनी सेना में भरती कर लिए। वत्स, काशी और कोशल जनपदों के वीर सैनिकों को भी भृति देकर सेना में भरती किया गया। जब एक अच्छी बड़ी सेना एकत्र हो गई, तो उसे अस्त्र-शस्त्रों द्वारा सुसज्जित किया गया। कुमार चन्द्रगुप्त के सेनापतित्व में इस सेना ने पाटलिपुत्र की ओर प्रस्थान कर दिया। इस बीच शकटार के पुराने साथी और मित्र पाटलिपुत्र में अपना कार्य कर ही रहे थे। अनेक राजपुरुषों और सेनापतियों को उन्होंने नन्द के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तैयार कर लिया था। चन्द्रगुप्त की सेनाओं ने पाटलिपुत्र को चारों ओर से घेर लिया और युद्ध प्रारम्भ हो गया। बाहर की ओर से आक्रमण होते ही पाटलिपुत्र में भी मारकाट शुरू हो गई।

भगवान् अश्विन् के मन्दिर के मुण्ड तापस द्वारा धोखा खाकर वक्रनास बहुत क्रुद्ध हो गया था। उसने विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त के कुचक्र का पूर्ण शक्ति के साथ मुकाबिला किया। दुर्गपाल ने पाटलिपुत्र के चौसठों महाद्वारों को बन्द करवा दिया और ६०० हाथ चौड़ी परिखा के ऊपर जो पुल बने हुए थे, उन सब को ऊपर उठवा लिया। अब पाटलिपुत्र में प्रवेश करने का कोई भी मार्ग नहीं था। जल से भरी हुई परिखा को यदि पार कर भी लिया जाता, तो ऊँची प्राचीर को लाँघ सकना सुगम नहीं था। चन्द्रगुप्त के सैनिक बड़ी वीरता से लड़े। उन्होंने दो स्थानों पर परिखा पर पुल भी बना लिए। वे इन पुलों से होकर महाद्वारों को तोड़ने का यत्न शुरू कर ही रहे थे कि मागध साम्राज्य की एक अन्तपाल सेना ने, जो पूर्वी सीमान्त की

रक्षा के लिए नियुक्त थी, पीछे की ओर से उन पर हमला कर दिया। कुछ समय बाद काशी जनपद की एक अन्य सेना भी पाटलिपुत्र पहुँच गई। अब विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनकी सेनाएँ अभी पाटलिपुत्र में प्रविष्ट भी न हो पाई थीं कि पीछे की ओर से उन पर हमला हो गया। दो पाटों के बीच में पड़कर कोई भी साबुत नहीं बचा रह सकता। विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त ने नन्दराज के विरुद्ध जो अभियान शुरू किया था, वह असफल हो गया। उनकी सेना तितर-बितर हो गई, और वे अपनी जान बचाने के लिए विन्ध्याचल की ओर भाग गए।

(२५)

पश्चिम की ओर प्रस्थान

युद्ध में परास्त होने के कारण चन्द्रगुप्त बहुत दुखी था। वह सोचता था, न सिकन्दर ने उसकी सहायता की और न आचार्य विष्णुगुप्त की योजना ही सफल हो सकी। राजा नन्द के अन्त:पुर में दासी का जीवन व्यतीत करती हुई अपनी माता का स्मरण कर उसका हृदय क्रोध से आविष्ट हो जाता था, और वह समझने लगा था कि नन्द के राजकुल को नष्ट कर सकना उसकी शक्ति से बाहर है। पर आचार्य विष्णुगुप्त इस संकट काल में भी निराश नहीं थे। वे सोचते थे, एक बार की असफलता से निराश हो जाना कायरों का काम है। हमें एक बार फिर नन्द के विरुद्ध संघर्ष का प्रयत्न करना चाहिए।

इसी प्रकार संकल्प-विकल्प करते हुए विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त विन्ध्याचल के महाकान्तार में इधर-उधर भटक रहे थे। दिन-भर घूम-फिरकर रात को वे किसी ग्राम में ठहर जाते और लोगों से बातचीत करते। अब उनके पास न धन था और न सेना। रात के समय वे किसी ग्रामीण गृहपति के घर पर ठहर जाते और उसी के दिए हुए रूखे-सूखे अन्न से अपना पेट भर लेते।

एक बार की बात है, वे दोनों किसी ग्राम के ग्रामणी के घर ठहरे हुए थे। ग्रामणी की भार्या ने भोजन के लिए खिचड़ी बनाई थी और अपने पुत्र की थाली में उसे परोस दिया था। खिचड़ी गरम थी। जब उसे खाने के लिए लड़के ने खिचड़ी के बीच में हाथ डाला, तो उसका हाथ जल गया

और वह रोने लगा। बालक को रोते देखकर उसकी माँ ने कहा—'तू तो ठीक वैसे करता है, जैसे कि विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त ने किया था, जो कि नन्दराज को परास्त कर राज्य प्राप्त करने के लिए चले थे।'

'माँ, यह क्या बात हुई। मैं क्या कर रहा हूँ, और विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त ने क्या किया था?'

'प्यारे बच्चे! तुम्हें खिचड़ी किनारे से खानी चाहिए। खिचड़ी किनारे पर ठण्डी होती है, और बीच में गरम। यदि तुम किनारे से खिचड़ी खाना शुरू करते, तो तुम्हारा हाथ न जलता। पर तुमने तो एकदम बीच में हाथ डाल दिया, इसी लिए वह जल गया।'

'विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त ने क्या किया था, माँ!'

'वे नन्द को मारकर मागध साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे। पर उन्होंने सीमाप्रान्तों को अधीन किए बिना ही सीधा पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मगध के सीमाप्रान्तों की सेनाएँ उनके विरुद्ध युद्ध के लिए आ गईं और वे परास्त हो गए।'

विष्णुगुप्त माँ-बेटे की इस बातचीत को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। उन्हें अपनी गलती मालूम हो गई। उन्होंने निश्चय किया कि नन्द को परास्त करने के लिए पहले सीमान्त के प्रदेशों को अपने अधीन करना होगा। सिकन्दर के आक्रमणों के कारण वाहीक देश के विविध जनपद इस समय अस्त-व्यस्त दशा में हैं। उन्हें यवनराज के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए प्रेरित करना होगा, और जब वे स्वतन्त्र हो जाएँ, तो उन्हें एक सूत्र में संगठित कर उनकी सम्मिलित शक्ति को सुमाल्य नन्द के विरुद्ध प्रयुक्त करना होगा। मगध के राजकुल को परास्त कर सकने का यही उपाय है।'

ग्रामणी के घर पर रात बिताकर विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त कौशाम्बी की ओर चल पड़े। कौशाम्बी में उनकी भेंट इन्द्रदत्त और व्याडि से हो गई, जो उन्हीं से मिलने के लिए पाटलिपुत्र आ रहे थे। वाहीक देश की दशा का परिचय पाने के लिए आचार्य विष्णुगुप्त बहुत उत्सुक थे। कुशल-क्षेम पूछने के बाद उन्होंने इन्द्रदत्त से प्रश्न किया—

'इन्द्रदत्त! तुम यहाँ कैसे? केकय से कब चले थे?'

'केकयराज पोरु ने सिकन्दर का खूब डटकर मुकाबिला किया। पर युद्ध में परास्त होकर उसने यवनराज की अधीनता स्वीकृत कर ली। इतना ही नहीं, वह सिकन्दर का मित्र और सहायक हो गया। जब यवन सेनाएँ असिक्नी नदी को पार कर पूर्व की ओर आगे बढ़ने लगीं, तो पोरु

ने अपनी सेनाओं के साथ उनकी सहायता की।'

'पोरु से यह आशा तो नहीं थी, इन्द्रदत्त !'

'मेरा केकयराज से इसी प्रश्न पर मतभेद हो गया, आचार्य ! मैं चाहता था, कि जब यवन सेनाएँ असिक्नी के पार हो जाएँ, तो हम लोग केकय में विद्रोह कर दें। जब सिकन्दर मद्रक और कठ जनपदों के साथ युद्ध में व्यापृत हो, तो हम पीछे की ओर से उस पर आक्रमण कर दें।'

'यह कितना उत्तम होता, इन्द्रदत्त ! पर पोरु इसके लिए क्यों तैयार नहीं हुआ ?'

'वह समझता था कि वाहीक देश के शक्तिशाली गणराज्यों के मद को चूर्ण करने का यह सुवर्णीय अवसर है। सिकन्दर द्वारा जब ये जनपद परास्त हो जाएँगे, तो सम्पूर्ण वाहीक देश में अपनी सार्वभौम सत्ता स्थापित करने का मार्ग उसके लिए सुगम हो जाएगा।'

'पर उसने यह नहीं सोचा कि यवन लोग आर्यभूमि में स्थिर रूप से भी अपना शासन स्थापित कर सकते हैं। यदि सिकन्दर यवन देश लौट भी गया, तो भी वह अपना कोई क्षत्रप यहाँ अवश्य छोड़ जाएगा। आर्यभूमि की इस दुर्दशा का पोरु को जरा भी ध्यान नहीं आया !'

'नहीं, आचार्य ! वाहीक देश के राजाओं का बहुत अधःपतन हो गया है। आम्भि और पोरु—दोनों ने ही ऐसे मार्ग का अनुसरण किया, जो आर्यों के गौरव के प्रतिकूल था।'

'तो फिर तुम वाहीक देश को क्यों छोड़ आए, इन्द्रदत्त !'

'आपके उच्च उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग देने के लिए। मुझे आपकी यह बात समझ में आ गई है कि जब तक इस विशाल आर्यभूमि में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना नहीं हो जाएगी, विदेशी यवनों से इसकी रक्षा सम्भव नहीं होगी। पाटलिपुत्र में आप क्या-कुछ कर आए, आचार्य !'

'मगध के राजकुल की अवस्था तो और भी अधिक बुरी है। वहाँ का राजा तो आर्य-परम्परा को सर्वथा भूल चुका है। राजाओं के लिए इन्द्रिय-जय सबसे अधिक आवश्यक है, पर मगध का राजकुल तो इन्द्रियों का दास है। भोगविलास और नाच-रंग में फँसे रहने के कारण उसे अपने कर्तव्य का जरा भी ध्यान नहीं है। उससे तो कोई भी आशा करना व्यर्थ है।'

'पर क्या उसके मन्त्री और पुरोहित उसे सही मार्ग पर नहीं ला सकते ?'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! मगध का शासन-सूत्र इस समय वक्रनास के हाथों में है। औशनस नीति का प्रयोग कितने विकृत रूप में किया जा सकता है, इसे पाटलिपुत्र में जाकर देखो। मगध के तेजस्वी महामन्त्री शकटार को वन्दीगृह में डालकर वक्रनास ने राजा नन्द को एकदम बेसुध कर दिया है। वह रात-दिन रूपाजीवाओं में मस्त रहता है। वक्रनास की यही नीति है कि राजा राज्यकार्य पर ध्यान देने के योग्य ही न रह जाए।'

'तो फिर आप मगध की ओर से सर्वथा निराश हो गए हैं, आचार्य ?'

'निराशा किसे कहते हैं, यह तो मैंने कभी जाना ही नहीं, इन्द्रदत्त ! पर पाटलिपुत्र से एक प्रतिज्ञा करके लौटा हूँ। मगध के वर्तमान राजकुल का समूलोन्मूलन करूँगा और उसके राजसिंहासन पर किसी ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को बिठाऊँगा, जो सारे भारत को एक शासन में ला सकने के योग्य हो।'

'ऐसा व्यक्ति कौन है, आचार्य !'

'यह अभी मैं निश्चय नहीं कर सका हूँ। राजा ऐसा होना चाहिए, जो अभिजात कुल में उत्पन्न हो, जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की हो, जो धार्मिक हो, जिसका लक्ष्य महान् हो, जिसमें उत्साह और साहस कूट-कूटकर भरे हुए हों, जिसकी बुद्धि सूक्ष्म और दृढ़ हो, जो नियन्त्रण में रह सके, जो अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करनेवाला हो और जो स्वेच्छाचारी व निरंकुश न होकर मन्त्रि-परिषद् की अधीनता में रहने के लिए उद्यत हो।'

'ऐसा व्यक्ति कहाँ मिलेगा, आचार्य ! मुझे तो केकयराज पोरु पर बहुत भरोसा था। पर उससे मुझे बहुत निराशा हुई। पूर्वी समुद्र से यमुना तक के सब राजकुलों का मगध द्वारा उच्छेद हो चुका है। यमुना के पश्चिम में वाहीक देश के जो राजकुल हैं, उनका हाल आपने सुन ही लिया है।'

'पर इस विशाल आर्यभूमि में ऐसे व्यक्तियों का सर्वथा अभाव तो नहीं होना चाहिए, जो मेरे पुनीत उद्देश्य में सहायक हो सकें। अस्तु, इस प्रश्न के निर्णय का अभी समय नहीं आया है। समय आने पर कोई-न-कोई ऐसा योग्य व्यक्ति मिल ही जाएगा, जो मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने के लिए उपयुक्त हो।'

'तो पाटलिपुत्र से लौटकर अब आप कहाँ जा रहे हैं, आचार्य !'

'क्या बताऊँ, इन्द्रदत्त ! मैंने पाटलिपुत्र पर आक्रमण करने के लिए

एक शक्तिशाली सेना का संगठन किया था, ताकि नन्द को राज्यच्युत कर अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सकूँ। पर मुझे सफलता नहीं मिली। दण्डनीति के सिद्धान्त क्रिया में बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होते। क्रियात्मक राजनीति तो तुम लोग ही जानते हो, जो राज्यशासन का संचालन करते हो। जो मोटी-सी बात मैं नहीं समझ पाया, उसे एक ग्रामणी की भार्या तक भली-भाँति समझती थी। पहले सीमाप्रान्तों को अपने अधीन किए बिना ही मैंने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया। परिणाम यह हुआ, कि वंग और कोशल में स्थित मागध सेनाओं ने आकर हमारी सेनाओं को परास्त कर दिया।'

'तो क्या अब आप पहले मगध के पश्चिमी सीमान्त को अपनी अधीनता में लाने के लिए कुरु-पाञ्चाल जनपदों की ओर जा रहे हैं?'

'नहीं, इन्द्रदत्त! मेरी योजना यह है कि पहले वाहीक देश को यवनों की अधीनता से मुक्त कराऊँ और फिर उसके जनपदों को एक सूत्र में संगठित कर मगध पर आक्रमण करूँ। अच्छा, तुम यह तो बताओ कि सिकन्दर ने असिक्नी के पार जाकर क्या किया?'

'कठ गण ने सिकन्दर के जिस प्रकार दाँत खट्टे किए, उसे यह आर्य-भूमि कभी विस्मृत नहीं कर सकेगी, आचार्य! कठों के सब स्त्री-पुरुषों ने यवनों से लड़ते-लड़ते अपनी बलि दे दी। यदि अब आप सांकल नगरी को जाकर देखें, तो वहाँ आपको एक विशाल श्मशान का-सा दृश्य दिखाई देगा।

'धन्य हो, कठ गण! कठ लोग सचमुच मृत्युँजय हैं।'

'यद्यपि कठ लोग यवन सेनाओं द्वारा परास्त हो गए, पर उनकी वीरता को देखकर यवनों की हिम्मत टूट गई। यवन सेना ने विपाशा नदी से आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। विवश होकर सिकन्दर को विपाशा से लौट जाने का निश्चय करना पड़ा। यवन सेनाएँ वितस्ता के तट पर वापस लौट आईं और वहाँ से उन्होंने दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया।'

'पर वितस्ता के साथ-साथ दक्षिण की ओर तो बहुत से गणराज्य हैं, इन्द्रदत्त!'

'दक्षिण की ओर बढ़ने पर सिकन्दर को क्षुद्रक और मालवों का मुकाबिला करना पड़ा। वाहीक देश में इनसे बढ़कर वीर जाति अन्य कोई नहीं है, आचार्य! ये इतनी वीरता के साथ यवनों से लड़े कि उसका वर्णन कर सकना वाणी की शक्ति में नहीं है। मालवों से युद्ध करते-करते सिकन्दर स्वयं बुरी तरह से घायल हो गया। मालव वीरों के तीर से घायल होकर

सिकन्दर न केवल कष्ट से कराह उठा, पर क्रोध से पागल भी हो गया। कठों की नगरी सांकल के समान मालवपुरी को भी उसने ध्वंस करने की आज्ञा दी। मालवों की स्त्रियों और बच्चों तक को कतल कर देने में यवन सैनिकों ने संकोच नहीं किया। मालव लोग परास्त हो गए, अपनी स्वतन्त्रता और गौरव के लिए बलि हो गए, पर उन्होंने यवनों को वह पाठ पढ़ाया, जिसे वे कभी भी भूल नहीं सकेंगे।'

'पर क्या क्षुद्रक गण ने मालवों की सहायता नहीं की ? ये दोनों गण तो एक-दूसरे के पड़ोसी हैं।'

'क्षुद्रक वीर मालवों की सहायता के लिए उद्यत थे, पर इससे पूर्व कि क्षुद्रक सेनाएँ मालवपुरी पहुँच सकतीं, सिकन्दर ने उस पर हमला बोल दिया। पर बाद में क्षुद्रक सेनाएं युद्ध के मैदान में उतर आईं। यवन सैनिक उनके सम्मुख नहीं टिक सके। अकेले क्षुद्रक लोग यवनों को परास्त करने में समर्थ हुए। पर सिकन्दर न केवल वीर है, अपितु चाणाक्ष राजनीतिज्ञ भी है। उसने निश्चय किया कि क्षुद्रकों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए। ऐसी वीर जाति के साथ युद्ध को जारी रखना आत्मविनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसने क्षुद्रक गण के कुलमुख्यों से भेंट की। उनके स्वागत और सम्मान में उसने एक बड़ा भोज दिया, उन्हें बहुत से बहुमूल्य उपहार भेंट किए। बहुत पुराने समय में मुनि नारद ने अन्धक-वृष्णि संघ के मुख्य कृष्ण को उपदेश देते हुए कहा था कि गणराज्यों में कुलमुख्यों को वशवर्ती बनाने के दो उपाय हैं : उत्तम भोजन और भेंट उपहार द्वारा उनका सत्कार किया जाए, और उनसे मृदु वाणी में बोला जाए। जो क्षुद्रक वीर यवनों के खड्ग और बरछे-भालों से परास्त नहीं हुए, वे सिकन्दर की मीठी बोली और भेंट-पूजा से काबू में आ गए। अब क्षुद्रक लोग सिकन्दर के मित्र हैं, वे उसे अपना अधिपति स्वीकार करते हैं।'

'यदि वाहीक देश की इन वीर जातियों को एक सूत्र में संगठित किया जा सकता, तो क्या यवन लोग इस प्रकार भारत में अपना पैर जमा सकते ? इस कार्य को तो सम्पन्न करना ही होगा, इन्द्रदत्त !'

'हाँ, आचार्य ! यवन लोग वाहीक देश से वापस नहीं लौट जाना चाहते। उनकी सेनाएँ दक्षिण की ओर आगे बढ़ रही हैं। धीरे-धीरे सब छोटे-बड़े जनपदों को जीतकर वे सम्पूर्ण वाहीक और सिन्धु देश पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेंगी। जिस-जिस जनपद को सिकन्दर जीतता जाता है, वहाँ-वहाँ वह अपने सनिक और सेनापति छोड़ता जाता है, ताकि लोग यवन शासन के विरुद्ध विद्रोह न कर दें। आम्भि और पोरु जैसे मूर्ख

राजा उसके सहायक हैं। वे इतनी बात से सन्तुष्ट हैं कि उनके राजकुल सुरक्षित हैं, सिकन्दर ने उनका मूलोच्छेद नहीं किया। वे यवन सेनापतियों से मिलकर गौरव अनुभव करते हैं, और उनके आदेशों का पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं।'

'अब सिकन्दर की सेनाएँ कहाँ तक पहुँच चुकी हैं, इन्द्रदत्त!'

'क्षुद्रकों और मालवों से निबटकर सिकन्दर दक्षिण की ओर आगे बढ़ गया। वाहीक देश के अन्य गणराज्यों ने भी बड़ी वीरता के साथ उसका मुकाबिला किया। आग्रेयों के वार्ताशस्त्रोपजीवि गण ने यवनों का जिस वीरता से सामना किया, वह सचमुच अद्भुत था। उनकी अग्रोदक नगरी भस्मसात् हो गई, उनके वीर योद्धाओं ने हँसते-हँसते अपनी बलि चढ़ा दी। पर छोटा-सा आग्रेय गण कब तक विशाल यवन सेनाओं के सामने टिक सकता था। अन्त में वह परास्त हो गया।'

'अग्रोदक नगरी के ध्वंस का मुझे बहुत दुःख है। श्रेष्ठी धनदत्त आग्रेय गण का ही निवासी है। जब वह अग्रोदक की समृद्धि और वैभव का जिकर करता था, तो उसका हृदय गर्व से फूल उठता था। आग्रेयों के गगनचुम्बी प्रासाद और सुवर्ण-जटिल कलशों वाले उनके विशाल मन्दिर अब भूत के गर्भ में समा गए। पर आग्रेय लोगों में साहस है, वे अवश्य ही अपनी नगरी का पुनरुद्धार कर लेंगे।'

'दक्षिणी वाहीक के अम्बष्ठ, क्षत्रिय, वसाति, मुचिकर्ण आदि सब गण-राज्य अब यवनों के अधीन हो चुके हैं। सिकन्दर की सेनाएँ अब सिन्धु देश में पहुँच गई हैं, और वहाँ के जनपदों के साथ युद्ध में तत्पर हैं। सिन्धु देश के लोग भी उनसे वीरतापूर्वक युद्ध कर रहे हैं।'

'वाहीक देश के शासन की सिकन्दर ने क्या व्यवस्था की है?'

'वहाँ सिकन्दर ने अपना एक क्षत्रप नियत कर दिया है, जो आम्भि और पोरु जैसे आर्य राजाओं के सहयोग से इस आर्यभूमि पर शासन कर रहा है। अनेक यवन सेनापति भी अपनी सेनाओं के साथ उसकी सहायता के लिए नियुक्त हैं।'

'वाहीक देश में सिकन्दर का क्षत्रप अब कौन है?'

'उसका नाम फिलिप्पस है, आचार्य! वह न केवल कुशल शासक है, अपितु साथ ही सुयोग्य सेनापति भी है। सिन्धु देश को विजय कर सिकन्दर तो अपने देश को वापस लौट जाएगा, पर उसके विशाल साम्राज्य के इस पूर्वी प्रदेश पर यवन फिलिप्पस का शासन जारी रहेगा।'

'तो चलो, इन्द्रदत्त! अब हमारे उद्देश्य की पूर्ति का समय आ गया

है। वाहीक देश के वीर लोग विदेशी यवनों की अधीनता को कभी पसन्द नहीं कर सकते। उन्हें यवनों के विरुद्ध उकसाना होगा। वे जब सिकन्दर के शासन के जुए को अपने कन्धों से उतारकर फेंक देंगे, तभी हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण आर्यभूमि को एक शासन में ला सकना सम्भव होगा। अब हमारा कार्यक्षेत्र वाहीक देश में है। उसे यवनों से स्वतन्त्र करने के बाद ही मगध के राजकुल से निबटने का समय आएगा।'

'पर अब आपका कहाँ चलने का विचार है?'

'हमें मागध साम्राज्य से शीघ्र ही चले जाना चाहिए। वक्रनास के गूढ़पुरुष और सत्री हमारा पीछा करते होंगे। पाटलिपुत्र के आक्रमण में असफल होकर हम विन्ध्याचल के महाकान्तार में छिपकर ही अपने को बचा सके हैं। पर कौशाम्बी जैसी महानगरी में वक्रनास के सत्रियों से बचकर रह सकना असम्भव है। इस समय न हमारे पास धन है और न सेना। हमें बड़े नगरों से बचकर चलना चाहिए और शीघ्र-से-शीघ्र मागध साम्राज्य से बाहर चले जाना चाहिए।'

'मैं और व्याडि आपके साथ हैं, आचार्य!'

(२६)

यवनों के विरुद्ध विद्रोह की योजना

आचार्य विष्णुगुप्त अपने साथियों के साथ निरन्तर पश्चिम की ओर चलते गए। काशी, श्रावस्ती, अहिच्छत्र आदि प्रसिद्ध नगरियों से बचकर उन्होंने वह मार्ग ग्रहण किया, जो उत्तर में हिमालय की उपत्यका के साथ-साथ जाता था। कौशाम्बी से वे पहले पश्चिम की ओर गए और सङ्किसा, काम्पिल्य और शूकरक्षेत्र होते हुए उत्तर की ओर मुड़ गए। कुछ दिन गोविषाण में विश्राम कर वे मायापुरी पहुँचे और वहाँ से शिवालिक पर्वत के साथ-साथ होते हुए स्रुघ्न जनपद में आ गए।

कुरु जनपद को अपनी अधीनता में ले आने के कारण मागध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा यमुना नदी से आ लगी थी। पर कुरु के उत्तर में शिवालिक के साथ-साथ जो स्रुघ्न जनपद था, वह अभी मगध के अधीन नहीं हुआ था। मागध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पर सम्राट् महापद्म नन्द ने एक शक्तिशाली सेना स्थापित की हुई थी, जो अन्तपाल भीमवर्मा

की अधीनता में वाहीक जनपदों के आक्रमणों से सीमान्त की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहती थी। यमुना नदी के साथ-साथ अनेक दुर्गों का निर्माण किया गया था, जिनमें मागध सेना के स्कन्धावार स्थापित थे। पश्चिम से पूर्व की ओर या पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाले यात्रियों के लिए यह आवश्यक था कि वे अन्तपाल के दुर्ग के दण्डधरों को अपनी अभिज्ञान-मुद्राएँ प्रदर्शित करें। इन दण्डधरों की निगाह से बचकर किसी भी मनुष्य के लिए कुरु देश में से होकर यमुना को पार कर सकना सम्भव नहीं था। इसी कारण आचार्य विष्णुगुप्त ने मागध साम्राज्य से बाहर जाने के लिए उस मार्ग को ग्रहण किया था, जो गोविषाण से होकर शिवालिक के साथ-साथ जाता था। यह मार्ग सेनाओं के आवागमन के लिए उपयुक्त नहीं था; पर तीर्थयात्री लोग बहुधा इसका उपयोग किया करते थे। विष्णुगुप्त और उसके साथियों ने भी तीर्थयात्रियों का भेस बनाया और वे मायापुरी होकर स्रुघ्न देश में जा पहुँचे। मायापुरी में भगवान् दक्ष के मन्दिर का दर्शन कर भगवती शाकम्भरी देवी के दर्शनों के लिए जाने वाले तीर्थयात्रियों पर मगध की अन्तपाल सेना के सैनिक कोई विशेष ध्यान नहीं देते थे।

शाकम्भरी देवी का मन्दिर स्रुघ्न देश का सबसे बड़ा तीर्थस्थान था। शिवालिक की उपत्यका में स्थित यह मन्दिर उस युग में बड़ा पवित्र माना जाता था और भगवती शाकम्भरी के दर्शन के लिए लाखों यात्री वहाँ प्रति-वर्ष जाया करते थे। इस मन्दिर के चारों ओर घनघोर जंगल था और दिन के समय में भी वहाँ आना-जाना भय से शून्य नहीं समझा जाता था। यही कारण है कि शाकम्भरी के यात्री 'बृहद्हट्ट' नामक नगरी में ठहरा करते थे, और दिन के समय टोली बनाकर शाकम्भरी के दर्शन के लिए जाया करते थे। बृहद्हट्ट नगरी शाकम्भरी के मन्दिर से एक योजन की दूरी पर उस राजमार्ग पर स्थित थी, जो कुरु देश से उत्तर की ओर जाता था। हिमालय के पार्वत्य नगरों के साथ व्यापार के लिए इस मार्ग का बड़ा उपयोग था और बृहद्हट्ट इस व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। यद्यपि विष्णुगुप्त और उसके साथी अब मागध साम्राज्य की पश्चिमी सीमा पार कर चुके थे, पर उन्होंने बृहद्हट्ट में निवास करना उचित नहीं समझा। वहाँ मगध के सैनिक और व्यापारी बहुधा आते-जाते रहते थे और पश्चिमी अन्तपाल के सत्री भी वहाँ रहकर भगवती शाकम्भरी के दर्शन के लिए आने-जाने वाले यात्रियों पर निगाह रखा करते थे। यद्यपि मगध का सम्राट् सुमाल्य नन्द भोग-विलास में मस्त रहने के कारण अपने कर्तव्य से विमुख हो गया था, पर उसके सेनापति और अन्तपाल अपने

कर्तव्यों का ध्यान रखते थे, और राज्यकार्य में शिथिलता नहीं आने देते थे।

आचार्य विष्णुगुप्त ने शाकम्भरी देवी के मन्दिर में जाकर आसन जमाया। अब वे मागध साम्राज्य की सीमा से बाहर जा चुके थे, और उन्हें मगध के सैनिक और सत्रियों का विशेष भय नहीं रहा था। उन्होंने अनुभव किया कि यह स्थान अपनी भावी योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। मगध की पश्चिमी सीमा यहाँ से बहुत समीप है, और वाहीक देश के विविध जनपद भी यहाँ से अधिक दूर नहीं हैं। बृहद्हट्ट पत्तन और शाकम्भरी के मन्दिर यमुना के पूर्वी तट से दो योजन के अन्दर-अन्दर थे, और स्रुघ्न नगरी यमुना के पश्चिम में कोई डेढ़ योजन की दूरी पर थी। स्रुघ्न जनपद के निवासी बड़े वीर योद्धा थे और सिकन्दर के आक्रमण का कोई असर उन पर नहीं पड़ा था। वाहीक देश के मद्रक, ग्लुचुकायन, कठ, मालव आदि जिन जनपदों पर सिकन्दर की सेनाओं ने अपना अधिकार कर लिया था, उनसे भागकर बहुत-से वीर सैनिकों ने अब स्रुघ्न में आश्रय ग्रहण किया हुआ था और इनके कारण स्रुघ्न देश में बहुत-से ऐसे वीर पुरुष थे, जो सैनिक सेवा का अवसर प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। अतः आचार्य विष्णुगुप्त ने स्रुघ्न को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया और शाकम्भरी के मन्दिर में अड्डा जमाकर अपने साथियों से भावी कार्यक्रम के विषय में विचार किया।

'देखो इन्द्रदत्त ! अब हमें वाहीक देश में कार्य करना है। वहाँ के विविध जनपदों में स्वतन्त्रता की भावना का अभी लोप नहीं हुआ है। सिकन्दर से वे परास्त हो गए, क्योंकि अकेले-अकेले उनमें इतनी शक्ति नहीं थी, जो वे यवन सेनाओं के सम्मुख टिक सकते। वे वीरता के साथ लड़े और उनके लाखों नर-नारियों ने वीरगति प्राप्त की। पर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर यवनों के लिए इस देश में टिक सकने को असम्भव बना देने की सामर्थ्य वे अब भी रखते हैं। जब हम उन्हें एक सूत्र में संगठित कर देंगे, तब किसी भी विदेशी के लिए इस आर्यभूमि पर कदम रख सकना असम्भव हो जाएगा।'

'यह तो ठीक है, आचार्य ! पर कितने ही जनपदों की शक्ति अब सर्वथा क्षीण हो गई है। कठों में एक भी ऐसा वीर पुरुष जीवित नहीं बचा है, जो सिकन्दर के विरुद्ध विद्रोह कर सके। यही दशा मालवों की है। उनके तो बच्चे तक भी सिकन्दर ने कतल करा दिए थे। आग्रेयगण का भी यवन सेनाओं के आक्रमण के कारण बुरी तरह से ध्वंस हो गया है।'

'पर मद्रक, क्षुद्रक, शिवि, क्षत्रिय आदि गणों की शक्ति तो अभी अवशिष्ट है। गान्धार जनपद में युद्ध बिल्कुल भी नहीं हुआ। केकयराज की शक्ति भी अभी नष्ट नहीं हुई है। वितस्ता के तट पर पोरु और सिकन्दर में जो युद्ध हुआ, उसमें केकय की शक्ति का सर्वनाश नहीं हुआ।'

'पर यह न भूलिए, आचार्य ! कि गान्धार देश निर्वीर्य है। वहाँ के निवासी भोग-विलास और नाच-रंग में मस्त रहते हैं। आम्भि का नीति ने उन्हें और भी पौरुषशून्य बना दिया है। केकय में शक्ति है, पर राजा पोरु यवनराज की मित्रता में ही गौरव अनुभव करता है। क्षुद्रक आदि गण-राज्यों के लोग शूर हैं, पर उन्हें सम्पूर्ण वाहीक देश की कोई चिन्ता नहीं है। वे इतने से ही सन्तुष्ट हैं कि उनके गणराज्य अभी सुरक्षित हैं।'

'देखो, इन्द्रदत्त ! राज्य में सर्वप्रधान स्थान जनता का होता है। यदि जनता में जीवन है, तो राज्य में जीवन की ज्योति को जगा देना जरा भी कठिन नहीं होता। गान्धार को ही लो, वहाँ के लोग मरे नहीं हैं, वे केवल नींद में पड़े सो रहे हैं। यदि एक बार हम उन्हें जगा सकें, तो वे यवनों के विरुद्ध शस्त्र उठाने में जरा भी विलम्ब नहीं करेंगे। आम्भि की बात न कहो, वह मूर्ख है। पर आम्भि ही तो गान्धार नहीं है। गान्धार के लिए, वाहीक देश के लिए, आर्यभूमि के लिए हजारों आम्भियों की बलि दी जा सकती है। हमें गान्धार, केकय, मद्रक आदि जनपदों में जातीय गौरव की भावना को उद्बुद्ध करना होगा। इसी से हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे।'

'तो इसके लिए आपकी क्या योजना है, आचार्य !'

'मैं स्वयं तक्षशिला जाऊँगा। छिपकर नहीं, अपितु अपने असली रूप में। तक्षशिला में विद्यार्थियों की संख्या हजारों में है। गुरुजन भी वहाँ सैकड़ों की संख्या में हैं। मैं उन सब को प्रेरित करूँगा कि पढ़ना-लिखना स्थगित कर वाहीक देश में सर्वत्र फैल जाओ, जनता में नवजीवन के उद्बोधन के लिए, विदेशी यवनशासन के विरुद्ध प्रजा में विद्रोह का प्रादुर्भाव करने के लिए। मैं उन्हें कहूँगा कि इस समय सबसे बड़ा विद्याभ्यास यही है कि जनता को यवनशासन के विरुद्ध अस्त्र उठा लेने के लिए तैयार करो। इन्द्रदत्त ! जातियों और जनपदों के इतिहास में ऐसे भी समय आते हैं, जब विद्या का अध्ययन छोड़कर विद्यार्थियों को कार्यक्षेत्र में उतरना पड़ जाता है। तक्षशिला के आचार्यों और विद्यार्थियों में उत्साह है, साहस है, और आदर्श के लिए मर-मिटने की क्षमता है। उन्हें केवल मार्ग दिखाने की आवश्यकता है, और यह कार्य मैं स्वयं करूँगा।'

'पर आचार्य ! यवन लोग आपके उद्देश्य से भलीभाँति परिचित हैं। यदि तक्षशिला पहुँचते ही उन्होंने आपको गिरफ्तार कर लिया, तो क्या होगा ?'

'इसका मुझे कोई भय नहीं है। बन्दीगृह में कैद हुआ विष्णुगुप्त और भी प्रचण्ड शक्ति होगा, इन्द्रदत्त ! तक्षशिला के विद्यार्थी अपने आचार्य की गिरफ्तारी को कभी सहन नहीं कर सकेंगे। अच्छा, व्याडि ! तुम्हारी औशनस नीति यवनों के विरुद्ध भी प्रयोग में आ सकती है या नहीं ?'

'आप जो आदेश दें, उसे मानने के लिए मैं उद्यत हूँ।' व्याडि ने उत्तर दिया।

'देखो, व्याडि ! यवन लोग स्वभाव से ही कामुक होते हैं। उन्हें अपने देश से चले हुए सालों बीत गए। इस बीच में उन्हें अपने परिवारों के साथ रहने का अवसर नहीं मिला। उनके विरुद्ध तुम अपनी रूपाजीवाओं का प्रयोग करो। वे यवन सेनापतियों और सैनिकों से मेलजोल पैदा करें, उन्हें अपने रूप और यौवन पर मुग्ध कर लें। रूपाजीवाओं के साथ अपने विश्वस्त और साहसी सैनिकों को वादक और नर्तक का भेस बनाकर भेज दो। जब विद्रोह प्रारम्भ हो, तो ये सैनिक कामुक यवनों पर आक्रमण कर दें। क्या तुम यह कर सकोगे ?'

'क्यों नहीं, आचार्य ! मेरे जिन सत्रियों की सहायता से केकयराज पोरु ने गान्धार को विजय किया था, वे सब अभी विद्यमान हैं। मैं उन सब को फिर से संगठित कर लूँगा। पर इसके लिए धन कहाँ से आएगा, आचार्य !'

'धन की चिन्ता तुम न करो, व्याडि ! जो विष्णुगुप्त नन्दराज के विरुद्ध सेना को संगठित करने के लिए करोड़ों कार्षापणों का प्रबन्ध कर सकता है, वह केकय के सत्रियों के लिए कुछ लाख कार्षापणों की सुगमता से व्यवस्था कर देगा। हाँ, व्याडि ! एक काम और करो। वैदेहक, दास, भिक्षुक आदि के रूप में अपने बहुत-से गूढ़पुरुषों को यवनों के स्कन्धावारों में भेज दो। जो गूढ़पुरुष वैदेहक के रूप में वहाँ जाएं, वे वस्त्र, रत्न, माँस, अन्न, मदिरा आदि पण्यों को बहुत सस्ते मूल्यों पर यवनों को बेचना शुरू करें। इससे यवन लोग बहुत प्रसन्न होंगे। वे इन छद्मवेषधारी वैदेहकों से माल खरीदने लग जाएँगे, और यवन स्कन्धावारों में इनका प्रवेश अप्रतिहत रूप से हो जाएगा। सुन्दर रूप और बलिष्ठ शरीर वाले गूढ़पुरुष दासों के रूप में यवनों के स्कन्धावारों में चले जाएँ। तुम्हारा कोई विश्वस्त सत्री वैदेहक बनकर उन्हें विक्रय के लिए वहाँ ले जाए। वह यवनों से कहे, ये

दास मागध साम्राज्य के हैं, जिन्हें मैं बहुत सस्ती कीमत पर खरीद लाया हूँ। यवन उन्हें अवश्य खरीद लेंगे और वे उनके स्कन्धावारों में रहने लगेंगे। कुछ सत्रियों को भिक्षुक के रूप में भी यवनों के स्कन्धावारों में भेज दो। ये गाकर, नाचकर, तमाशे दिखाकर और देवमूर्तियों की प्रेक्षा करके भीख माँगा करें। यवनों को इन पर कोई सन्देह नहीं होगा। जिस दिन विद्रोह शुरू हो, ये सब स्कन्धावारों के अन्दर यवन सैनिकों पर आक्रमण कर दें। व्याडि! तुम्हारी कूटनीति और मन्त्र-युद्ध का चमत्कार दिखाने का असली अवसर अब उपस्थित हुआ है।'

'जो आज्ञा, आचार्य!'

'अच्छा, इन्द्रदत्त! तुम्हें केकय जाना होगा। वहाँ के लोग तुमसे भलीभाँति परिचित हैं। तुम वहाँ के प्रधानमन्त्री रह चुके हो, अतः तुम्हारा प्रभाव वहाँ कम नहीं है। तुम उसे अपना कार्यक्षेत्र बनाओ।'

'पर आचार्य! केकयराज पोरु तो अब मुझसे द्वेष करता है। जब उसने यवनराज सिकन्दर से मित्रता स्थापित कर कठों पर आक्रमण किया था, तो मैंने उसका विरोध किया था।'

'तुम इसकी चिन्ता न करो, इन्द्रदत्त तुम जाकर पोरु से भेंट करना। यवन सेनापतियों के व्यवहार से वह अब ग्लानि अनुभव करने लगा होगा। उसे समझाना कि यवनों के आधिपत्य के विरुद्ध एक भारी विद्रोह की तैयारी हो रही है। इस विद्रोह में वाहीक देश के सब जनपद एक साथ मिलकर कार्य करने को उद्यत हैं। वाहीक देश जब स्वतन्त्र हो जाएगा तो उसका राजा कौन हो, यह प्रश्न उठने पर सब की दृष्टि पोरु पर ही जाती है। वाहीक देश के सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् बनने का यह सुवर्णीय अवसर है। यवन क्षत्रप फिलिप्पस का वशवर्ती बनकर रहने की अपेक्षा यह हजार गुना अधिक अच्छा है कि वाहीक चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया जाए। पोरु बहुत महत्त्वाकांक्षी है, वह तुम्हारी बात को अवश्य ध्यान से सुनेगा। हाँ, पोरु से यह भी कहना कि विष्णुगुप्त मगध के राजकुल का मूलोच्छेद करने की प्रतिज्ञा कर चुका है। वाहीक देश को यवनों की अधीनता से मुक्त कर वह पाटलिपुत्र पर आक्रमण करेगा और राजा नन्द का घात कर देगा। आर्यभूमि में और कौन ऐसा कुलीन व्यक्ति है, जिसे मगध के राज-सिंहासन पर बिठाया जा सके। सम्पूर्ण भारतवर्ष का एकच्छत्र सम्राट् बनने की कल्पना से पोरु का हृदय उल्लास से भर जाएगा और वह अवश्य ही तुम्हारी सहायता करेगा।'

'आपके आदेश का मैं अविकल रूप से पालन करूंगा, आचार्य!'

'चन्द्रगुप्त ! अब तुम अपने काम को भलीभाँति समझ लो। तुम्हें आचार्य शकटार के साथ स्रुघ्न देश में ही रहना होगा। शिवालिक की उपत्यका में तुम एक नई भृत सेना का संगठन करो। यहाँ ऐसे वीर पुरुषों की कमी नहीं है, जो भृति के आकर्षण से तुम्हारी सेना में शामिल हो जाएँगे। यवनों को वाहीक देश से बाहर निकालने के लिए हम केवल जनता के विद्रोह और व्याडि के मन्त्रयुद्ध पर ही निर्भर नहीं कर सकते। वाहीक देश के जनपदों की सेनाएँ यवनों के आक्रमण के कारण छिन्न-भिन्न दशा में हैं। उन्हें हमें बाहर से भी सहायता पहुँचानी होगी।'

'नन्द के राजकुल का तो उच्छेद हो जाएगा, आचार्य। पर क्या मोरियगण की स्वतन्त्रता की भी पुन:स्थापना हो सकेगी ? मेरे हृदय को तो यही विचार सदा उद्विग्न करता रहता है।'

'चन्द्रगुप्त ! तुम अभी किशोर आयु के हो, राजनीति की गहन बातों को नहीं समझते। मेरी आज्ञा का पालन करो। यदि तुमने अपने को योग्य सेनापति सिद्ध किया, तो तुम बहुत उन्नति कर सकते हो। अपनी दृष्टि को मोरियगण तक ही सीमित न रखो, उसे विशाल बनाने का यत्न करो।'

'जो आज्ञा, आचार्य ! मैंने अपना सर्वस्व आपके चरणों में समर्पित कर दिया है।'

'अच्छा, भाई शकटार ! तुम चन्द्रगुप्त के साथ रहो। यह अभी बालक है। तुम्हारे मार्ग प्रदर्शन से ही यह स्रुघ्न देश में अपना कार्य कर सकेगा।'

'क्या बताऊँ, विष्णुगुप्त ! मैं तो जीवन से ही निराश हो गया हूँ। न मुझमें उद्यम शेष बचा है, और न साहस। पार्वती की याद मुझे सदा सताती रहती है। मैं हर समय यही सोचता रहता हूँ कि वक्रनास पार्वती और बच्चों के साथ कैसा निर्दयतापूर्ण व्यवहार कर रहा होगा। मेरे बदले उसने उन्हें बन्दीगृह में डाल दिया होगा। वहाँ वे एक-एक टुकड़े के लिए तरस रहे होंगे। मैं सोचता हूँ, तुमने मुझे बन्दीगृह से छुड़ाकर अच्छा नहीं किया। मैं कैद था, पर बच्चे तो सुखी थे। मैं बहुधा सोचता हूँ कि क्यों न पाटलिपुत्र जाकर वक्रनास के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दूं। इससे पार्वती और बच्चों की जिन्दगी को तो बचा सकूंगा।'

'अपने हृदय में क्लैव्य की भावना को स्थान न दो, शकटार ! राज-नीति उन लोगों के लिए नहीं है, जो जीवन से मोह रखते हों। राजनीति तो एक ऐसा खेल है, जिसमें अपने जीवन को, अपनी पत्नी को, अपने बच्चों

को, अपने सर्वस्व को बाजी पर लगा देना होता है। तुमने राजनीति में प्रवेश किया था, तुम मगध के महामन्त्री बने थे, क्या सुखभोग के लिए ? मगध की सेनाओं ने कितने जनपदों को तुम्हारी आज्ञा से विजय किया ? कितने राजकुल तुम्हारी आज्ञा से मिट्टी में मिला दिए गए ? स्रुघ्न के पड़ोस में जो कुरु जनपद है, उसका राजकुल कितना गौरवशाली था ! भीम और अर्जुन के जो वंशज इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते थे, वे तुम्हारे ही कारण तो आज अपना नाम और निशान तक खो बैठे हैं। उस समय तुम्हें यह ध्यान क्यों नहीं आया कि इनके भी बच्चे हैं, इनके भी परिवार हैं। तुमने राजनीति के खेल को खुलकर खेला। अब तक तुम जीतते रहे। पर अब तुमने वक्रनास से पछाड़ खाई है। राजनीति में तो यह होता ही है। दिल में साहस रखो, फिर एक बार तुम विजयी होगे। यदि हृदय में साहस नहीं था, तो मेरी तरह तुम्हें भी तक्षशिला में वटुकों को पढ़ाते हुए ही जीवन व्यतीत कर देना चाहिए था।

'मैं सब समझता हूँ, विष्णुगुप्त ! पर पार्वती और बच्चों की दुर्दशा की कल्पना मेरे मन को निरन्तर व्यथित करती रहती है। वक्रनास बड़ा भयंकर मनुष्य है।'

'पर शकटार ! क्या कुरु, पाञ्चाल, कोशल आदि के राजकुल और अमात्यकुल तुम्हें भी इतना ही भयंकर नहीं समझते होंगे ? जब राजनीति के खेल में पड़े हो, तो एक खिलाड़ी की तरह से खेलो। लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख—सब को एक दृष्टि से देखो !'

'अच्छा, भाई विष्णुगुप्त ! अब तो तुम्हारा सहारा ले ही लिया है। उसे अन्त तक निभाऊँगा। मैं यहाँ स्रुघ्न देश में ही रहूँगा और चन्द्रगुप्त को मार्ग प्रदर्शन करूँगा।'

'मुझे तुमसे यही आशा है, शकटार ! रात के बाद दिन आता है। तुम्हारे भाग्य-सूर्य के उदय होने में अधिक समय नहीं है, मित्र !'

'विराधगुप्त ! अब तुम भी अपने कार्य को भलीभाँति समझ लो। तुम्हें कुलूत देश को जाना होगा। वाहीक देश के उत्तर में हिमालय की पर्वतमाला में स्थित यह जनपद बहुत शक्तिशाली है। पार्वत्य लोग बड़े वीर और साहसी होते हैं। सिकन्दर के आक्रमण का कुलूत पर कोई असर नहीं पड़ा है। उसकी शक्ति अभी अक्षुण्ण है। वहाँ के राजा चित्रवर्मा से जाकर मिलो, और उसे यवनों को आर्यभूमि से बाहर निकाल देने के कार्य में सहयोग देने के लिए तैयार करो।'

'जो आज्ञा, आचार्य !' विराधगुप्त ने उत्तर दिया।

'और सुनो, विराधगुप्त ! मगध के जो अन्य विश्वस्त राजपुरुष तुम्हारे साथ हैं, उन्हें कुलूत से भी आगे काश्मीर भेज दो। वे काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करें।'

'मैं भानुवर्मा को काश्मीर भेज दूंगा, आचार्य !'

'बहुत ठीक ! अब केवल एक बात की व्यवस्था करना शेष है। हमें पार्स साम्राज्य में भी यवनों के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि प्रदीप्त करनी होगी। यदि पार्स देश में शान्ति रही, तो जब हम वाहीक देश में यवनों का उच्छेद कर रहे होंगे, तो वहाँ से एक बड़ी सेना आर्यभूमि में प्रविष्ट हो जाएगी। यह बात हमारे उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होगी। यदि वाहीक देश के साथ-साथ पार्स में भी यवनों के विरुद्ध विद्रोह हो जाए, तो बहुत उत्तम होगा। अस्तु, इसकी व्यवस्था मैं तक्षशिला पहुँचकर कर दूंगा। वहाँ ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो इस कार्य के लिए खुशी के साथ मैदान में उतर पड़ेंगे। हम कल सुबह ही भगवती शाकम्भरी की पूजा करके अपने-अपने कार्य में जुट जाएँगे। स्रुघ्न देश का यह मन्दिर ही हमारा केन्द्र रहेगा और यहाँ ही हम अपने-अपने कार्य की सूचना भेजते रहेंगे। समाचार पहुँचाने का कार्य हम गृह-कपोतों से लेंगे, जो यहाँ से सब जगह आते-जाते रहेंगे। शाकम्भरी देवी का पुजारी मेरा पुराना सहपाठी और सखा है। उस पर आप पूरा-पूरा विश्वास कर सकते हैं।'

(२७)

सिकन्दर की भारत से बिदा

यवनराज सिकन्दर को अपनी दिग्विजय शुरू किए अनेक वर्ष हो चुके थे। उसके सैनिक अब थकान अनुभव करने लगे थे। वाहीक और सिन्धु देशों को जीतकर सिकन्दर ने अब यवन देश को वापस लौट जाने का निश्चय किया। भारत की विजय-यात्रा में जिस जनपद को उसने सबसे अन्त में जीता, उसका नाम पातानप्रस्थ था। सिन्धु नदी समुद्र में जा मिलने से पूर्व जहाँ अपनी दोनों बाहुओं को अलग-अलग फैलाकर आगे बढ़ती है, वहीं यह पातानप्रस्थ स्थित था। सिकन्दर ने यहाँ अपने एक विशाल स्कन्धावार की स्थापना की, और एक नई नगरी बसाई।

इस नगरी की आधार-शिला रखने के समय एक बड़ा महोत्सव हुआ। इसमें हजारों नर-नारी शामिल थे। यवन सेना के सेनापति, दण्डधर और

नायकों के अतिरिक्त सिन्धु देश के सब सम्भ्रान्त मनुष्यों को भी इसमें आमन्त्रित किया गया था। उत्सव के लिए एक विस्तीर्ण सभामण्डप का निर्माण किया गया था, जिसमें सब आमन्त्रित स्त्री-पुरुषों के बैठने के लिए अलग-अलग आसनों की व्यवस्था थी। मण्डप के उत्तरी भाग में एक ऊँचे आसन पर यवनराज सिकन्दर आसीन था।

धूमधाम के साथ उत्सव प्रारम्भ हुआ। सबसे पूर्व देवी-देवताओं की पूजा की गई, यवन देवताओं की भी और भारतीय देवताओं की भी। फिर खेल प्रारम्भ हुए, द्वन्द्वयुद्ध, पशुओं से युद्ध, और अरणे भैंसों, गैंडों और व्याघ्रों के युद्ध। खेल समाप्त हो जाने पर सहभोज हुआ, जिसमें यवनों और आर्यों ने एक साथ बैठकर भोजन किया। भोज के बाद सिकन्दर खड़ा हुआ और उसने अपना भाषण इस प्रकार शुरू किया—

यह आर्यभूमि भी कैसी अद्भुत है। इसका चमकता हुआ नीला आसमान, इसकी तारों-भरी रातें और इसके लहलहाते हुए खेत कितने आकर्षक हैं। यहाँ के निवासी भी कैसे वीर हैं, वे बलिदान को खेल समझते हैं और जीवन और मृत्यु में कोई भेद नहीं मानते। मैं भारत के लोगों का आदर करता हूँ, उनके देवी-देवताओं का सम्मान करता हूँ, उनके धर्म, चरित्र और व्यवहार की प्रतिष्ठा करता हूँ। मैंने उन्हें जीता है, उन्हें पददलित करने के लिए नहीं, उन्हें दास बनाने के लिए नहीं। अपने यवन देश में भी मैंने इसी प्रकार कितने ही जनपदों को जीता था। आज वे सब यवनराज की अधीनता में रहने में गौरव अनुभव करते हैं। सारी यवन-भूमि के एक शासन में आ जाने का ही यह परिणाम है कि आज यवन सैनिक अपनी मातृभूमि से सैकड़ों योजन दूर सिन्धु नदी के तट पर अपनी विजय-पताका फहरा रहे हैं। यदि एथन्स, स्पार्टा, कोरिन्थ आदि यवन जनपद पृथक्-पृथक् रहते, तो क्या आज उनके वीर पुरुष सिन्धु, वितस्ता, असिक्नी और इरावती के तटों पर अपनी कीर्ति के स्तम्भ स्थापित कर सकते? क्या पार्स सम्राट् उनके सम्मुख सिर झुकाकर खड़ा हो सकता? क्या केकय और गान्धार के राजा उनसे भेंट कर अपने को गौरवशाली अनुभव करते? पर मैं अपने विशाल साम्राज्य की इस गरिमा को केवल यवनों तक ही सीमित नहीं रखना चाहता। भारत के आर्य वीरों का मैं आदर करता हूँ। मैं चाहता हूँ, यवन और आर्य मिलकर एक हो जाएँ, उनका धर्म, उनकी सभ्यता और उनकी संस्कृति मिलकर एक हो जाएँ। पूर्व और पश्चिम के इस सम्मिश्रण से एक नई संस्कृति का जन्म हो, एक विश्व-सभ्यता का प्रादुर्भाव हो। पर इसके लिए यह आवश्यक है कि आर्य

और यवन अपने भेद-भाव को मिटा दें, वे परस्पर मिलकर एक परिवार के अंग बन जाएँ। विश्व की विजय करते हुए मैंने शुरू से इसी नीति का अनुसरण किया है। मिस्र देश में नील नदी की घाटी में, हिन्दूकुश पर्वत की उपत्यका में, हरउवती में, पंजशीर नदी के तट पर, कुभा और वंक्षु नदियों के तीर पर मैंने कितनी ही नई नगरियों की स्थापना की है, इसी विश्वसंस्कृति के प्रादुर्भाव के उद्देश्य को अपने सामने रखकर। इन सब सिकन्दरिया नगरियों में यवन लोग वहाँ के निवासियों के साथ मिलकर एक हो गए हैं। हजारों यवनों ने विदेशी और विधर्मी महिलाओं से विवाह किए हैं, इसी विश्वसंस्कृति के प्रादुर्भाव के लिए। मैं चाहता हूँ, भारत में भी यही हो। मेरे इस 'विजित' में हजारों यवन सैनिक निवास करेंगे। पर मेरी इच्छा है कि वे अपने को भारतीय समझें, और इस आर्यभूमि का आदर करें। यह तभी सम्भव है, जब वे यहाँ की स्त्रियों से विवाह कर लें। उनकी सन्तान में यवन और आर्य रक्त का मिश्रण हो। वाहीक और सिन्धु देशों के भावी शासक और सैनिक जहाँ यवन पिता की सन्तान होने के कारण यवनराज के प्रति भक्ति रखते हों, वहाँ आर्य माता की सन्तान के नाते वे इस देश के प्रति भी अनुराग रखते हों। मैंने सर्वत्र इसी नीति का अनुसरण किया है और भारत में भी मैं इसी नीति को अपनाना चाहता हूँ। यवन साम्राज्य की शक्ति का आधार यही नीति है, और इसी के कारण मैं विपाशा से यवन सागर तक विस्तीर्ण विशाल यवन साम्राज्य को एकता के सूत्र में ग्रथित कर सकूँगा। भारत से अपने देश को लौट जाने से पूर्व मैं यहाँ भी इस नीति का सूत्रपात करना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि आप इस शुभ कार्य में मुझे सहायता देंगे।'

पातानप्रस्थ के इस महोत्सव में आम्भि, पोरु आदि वे भारतीय राजा और गणमुख्य भी सम्मिलित थे, जिन्होंने भारत की विजय में यवनराज को सहयोग प्रदान किया था। सिकन्दर ने उन्हें पहले से ही यह आदेश दे रखा था, कि वे यवन सैनिकों से विवाह के लिए आर्य नारियों को तैयार रखें।

सिकन्दर के भाषण के बाद गान्धारराज आम्भि खड़ा हुआ। उसने कहा—मेरे जनपद की दो सौ नारियाँ यवनों के साथ विवाह के लिए उद्यत हैं। वे सब अभिजात कुल की हैं, युवती और रूपवती हैं। वे यहाँ सभा-मण्डप में उपस्थित हैं।

केकयराज पोरु ने भी इसी प्रकार की घोषणा की। दो सौ के लगभग केकय नारियाँ भी यवनों से विवाह करने के लिए पातानप्रस्थ में विद्यमान

थीं। मद्रक, शिवि, अम्बष्ठ, वसाति आदि अन्य अनेक जनपदों के राजाओं और मुख्यों ने भी यवनराज की योजना में सहयोग देने की सूचना दी।

अब सात सौ के लगभग भारतीय नारियों को सभामण्डप में बनी हुई यज्ञवेदी के सम्मुख लाया गया। दूसरी ओर से इतने ही यवन युवक भी यज्ञवेदी के समीप आ गए। अब इनके सामूहिक विवाह की विधि प्रारम्भ हुई। यवन और आर्य दोनों विधियों से विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। यवनराज सिकन्दर और उनके सहयोगी वाहीक राजा परम प्रसन्न थे, क्योंकि इसे वे यवनों और आर्यों के सान्निध्य और चिर-सम्बन्ध का सूत्रपात समझ रहे थे।

सामूहिक विवाह की विधि होते-होते साँझ हो गई। अब एक बृहत् सहभोज प्रारम्भ हुआ। इसके मुख्य अतिथि वे यवन और भारतीय दम्पति थे, जिनके उसी दिन विवाह हुए थे। भोज की समाप्ति पर पातानप्रस्थ का वह सभामण्डप एक विशाल नृत्यशाला के रूप में परिणत हो गया। नव-विवाहित दम्पतियों ने साथ मिलकर नृत्य किया, सुरापान किया और खूब आनन्द मनाया। यवनराज सिकन्दर और भारतीय राजा उन्हें बधाई दे रहे थे, उनके नाच-रंग में सम्मिलित होकर उनके उल्लास और उत्साह को बढ़ा रहे थे। नृत्यशाला में उपस्थित सब लोग अनुभव करते थे कि आज एक नए युग का सूत्रपात हो रहा है, एक नई संस्कृति का प्रादुर्भाव हो रहा है, जाति और जनपद के प्रति भक्ति की तंग दीवारें आज खण्ड-खण्ड हो रही हैं, और उनके भग्नावशेषों पर एक ऐसे विशाल प्रासाद का निर्माण किया जा रहा है, जिसमें सब जनपदों के लोग एक होकर रहेंगे, मनुष्य-मनुष्य का भेद जहाँ कोई महत्त्व नहीं रखेगा और जहाँ धर्म, भाषा और संस्कृति मनुष्य को एक-दूसरे से अलग करनेवाली न होकर उन्हें परस्पर मिलकर एक हो जाने की प्रेरणा देंगी। वह युग कितना सुवर्णीय होगा, जब आर्य और यवन का भेद मिट जाएगा, जब विपाशा से यवन सागर तक के विशाल भूखण्ड के सब निवासी अपने को एक अनुभव करने लगेंगे।

आधी रात तक यह नृत्य उत्सव जारी रहा। जब सब लोग नाच, संगीत और सुरापान से थक गए, तब वे अपने-अपने शिविरों में विश्राम के लिए चले गए। आम्भि आज बहुत प्रसन्न था। वह सोचता था, यवनराज की कृपा से उसकी स्थिति अब कितनी ऊंची उठ गई है। वह न केवल गान्धार देश का अधिपति है, अपितु सिन्धु नदी के पश्चिमी तट के कितने ही नए प्रदेश भी उसके शासन में दे दिए गए हैं। यवन देश के बड़े-बड़े

सेनापति उसका आदर करते हैं। पर केकयराज पोरु आज बहुत प्रसन्न नहीं दिखाई देता था। जिस समय नवविवाहित दम्पति और अन्य लोग नाच-रंग में मस्त थे, पोरु को ग्लानि अनुभव हो रही थी। वह सोचता था, क्या विधर्मी यवनों को इस प्रकार आर्य युवतियाँ प्रदान कर देना आर्य-मर्यादा के अनुकूल है? यवनों ने तो अपनी कन्याओं का विवाह आर्य युवकों के साथ नहीं किया। यह ठीक है कि यवन देश यहाँ से बहुत दूर है। पर क्या सिकन्दर कतिपय यवन युवतियों को वाहीक देश मे आमन्त्रित नहीं कर सकता था? यह भी सम्भव था कि वह अपनी सेना में सम्मिलित कुछ आर्य युवकों को अपने साथ यवन देश ले जाता, वहाँ के शासन-कार्य में सहयोग देने के लिए और यवन कुमारियों के साथ उनका विवाह कराने के लिए। विश्व-संस्कृति का प्रादुर्भाव तो तभी सम्भव होता। विजेता यवनों के साथ आर्य कन्याओं का विवाह करना तो अपनी हीन भावना का परिचय देना है। ये यवन सैनिक भारतीयों के प्रति उद्दण्डता का व्यवहार करते हैं, अपने को इस देश का विजेता और शासक समझते हैं। यह ठीक है कि सिकन्दर ने मेरे साथ मैत्री स्थापित की है। मेरे राजसिंहासन को भी उसने कायम रखा है, अनेक नए प्रदेश भी मुझे शासन के लिए दिए हैं। पर क्या मैं अब एक स्वतन्त्र राजा हूँ? मैं यवनराज का दास मात्र हूँ। मुझे उसके साथ रहना पड़ता है, क्योंकि इससे यवनराज के गौरव में वृद्धि होती है। जब वह अपने देश को वापस लौट जाएगा, तब भी उसका क्षत्रप यहाँ रहेगा। हम सब को उसके सम्मुख झुकना पड़ेगा, उसके आदेशों को स्वीकार करना होगा। शायद आचार्य इन्द्रदत्त की बात ही सही थी। जब सिकन्दर असिक्नी पार कर मद्रक देश पर आक्रमण कर रहा था, यदि मैं तब विद्रोह कर देता, तो कितना उत्तम होता। तब मुझे एक दास के समान सिकन्दर के साथ-साथ भटकते फिरने की आवश्यकता न होती।

पोरु इसी प्रकार संकल्प-विकल्प में लगा था कि एक यवन दण्डधर उसके पास आया और बोला—'यवनराज की आज्ञा है कि आप इसी क्षण उनकी सेवा में उपस्थित हों।'

'क्या इस समय, आधी रात बीत जाने पर?'

'हाँ, यवनराज की यही आज्ञा है।'

पोरु सिकन्दर के शिविर में गया और सात बार दाएँ हाथ से भूमि को स्पर्श कर उसके सम्मुख खड़ा हो गया। आम्भि वहाँ पहले से ही उपस्थित था।

'देखो, पोरु! अब हम अपने देश को वापस लौट रहे हैं।'

'मुझे ज्ञात है, यवनराज !'

'देखो, पोरु ! सेनापति फिलिप्पस मेरी ओर से वाहीक देश में क्षत्रप के पद पर नियुक्त किया गया है। तुम्हें उसके आदेशों का उसी प्रकार पालन करना होगा, जैसे तुम अब तक मेरी आज्ञाओं का पालन करते रहे हो। एक यवन सेना भी वाहीक देश में रहेगी, शान्ति और व्यवस्था कायम रखने के लिए। तुम्हारी सब सेना परिप्लस के अधीन रहेगी। वाहीक में स्थित यवन सेना का सेनापतित्व मैंने परिप्लस के सुपुर्द किया है। वाहीक देश में केकय की राजधानी राजगृह मुझे बहुत पसन्द है। वितस्ता नदी के तट पर स्थित यह नगरी क्षत्रप फिलिप्पस और सेनापति परिप्लस के निवास के लिए सर्वथा उपयुक्त है। वे दोनों अपने राजकर्मचारियों के साथ वहीं निवास करेंगे। तुम सब बातें समझ गए न, पोरु !'

'आपका आदेश मुझे शिरोधार्य है, यवनराज !'

'एक बात और। यवन साम्राज्य के क्षत्रप को राजगृह में अपनी स्थिति के अनुरूप प्रासाद में ही निवास करना चाहिए। क्या तुम अपने राजप्रासाद को क्षत्रप फिलिप्पस के लिए खाली कर सकोगे ? तुम राजकुमार पर्वतक के प्रासाद में निवास कर सकते हो।'

'पर इससे पर्वतक को बहुत असुविधा होगी, यवनराज ! उसकी आयु भी इस समय चालीस वर्ष से ऊपर है। उसका अपना अन्तःपुर है, और अपने सेवक।'

'मेरी बात को काटने की हिम्मत न करो, पोरु ! यह मत भूलो, कि मेरे एक इशारे से तुम्हारा यह राजमुकुट धूल में लोटता हुआ दिखाई दे सकता है।'

'जो आज्ञा, यवनराज !' पोरु ने सिर झुका कर कहा। पर उस समय उसका मुख म्लान था और हृदय ग्लानि से भरा हुआ। सिकन्दर का आदेश पाकर वह अपने शिविर को वापस लौट आया। रात-भर उसे नींद नहीं आई। वह यही सोचता रहा कि आचार्य विष्णुगुप्त और इन्द्रदत्त का साथ न देकर मैंने भारी भूल की है। अब इस भूल का प्रतिशोध करना ही होगा। राजगृह लौटकर मैं इन्द्रदत्त की तलाश करूँगा और उसके साथ आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट करूँगा।

अगले दिन यवनराज सिकन्दर ने अपनी सेना के साथ पश्चिम की ओर प्रस्थान कर दिया। वह स्वयं स्थल-मार्ग से गया और अपने नावध्यक्ष नियार्कस को समुद्र-मार्ग से यवन देश पहुँचने का आदेश देकर पीछे छोड़ गया। समुद्र-तट के साथ साथ यवनों की स्थल-सेना पश्चिम की ओर चल पड़ी।

(२८)

विद्रोह का सूत्रपात

तक्षशिला पहुँचकर आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने पुराने शिष्यों को एकत्र किया। अन्य अनेक आचार्यों के शिष्य भी उनके विचारों को सुनने के लिए उत्सुक थे। वे भी वहाँ आ गए। अपनी पुरानी कुटी के खुले आँगन में बैठकर विष्णुगुप्त ने इस प्रकार प्रवचन प्रारम्भ किया—

'क्या तुम्हारे हृदयों में इस बात से ग्लानि उत्पन्न नहीं होती कि विदेशी यवन इस आर्यभूमि पर शासन कर रहे हैं। हमारे वीर क्षत्रिय उनके दास बन गए हैं, और उनके आदेशों का पालन करना ही अपना कर्तव्य समझते हैं। आर्यों का यह घोर पतन है। क्या तुम इसको सहन करने के लिए तैयार हो? अब वह समय आ गया है, जब तुम अपने पोथी-पत्रों को सँभालकर रख दो और कार्यक्षेत्र में उतर पड़ो। विद्या किस लिए पढ़ी जाती है? क्या केवल शोभा के लिए? वह विद्या किस काम की, जो अर्थ-करी न हो, जो विमुक्ति के लिए न हो? और दास लोग क्या कभी अर्थ के स्वामी हो सकते हैं? वाहीक के क्षत्रियों की निर्बलता के कारण ही आज इस देश के लोग दास्य-जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो गए हैं। पर यह स्मरण रखो कि आर्य कभी दास बनकर नहीं रह सकते। क्या तुम सब विद्यार्थी मेरे साथ काम करने के लिए उद्यत हो? हम यवनों को वाहीक देश से बाहर निकाल देंगे और इस आर्यभूमि के गौरव की पुनःस्थापना करेंगे।'

आचार्य के प्रवचन को सुनकर तक्षशिला के विद्यार्थियों का हृदय उमङ्ग और उत्साह से परिपूर्ण हो गया। वे एक साथ बोल उठे—'हम सब आपके साथ कार्य करने को उद्यत हैं।'

'पर यह कार्य सुगम नहीं है। हमें आग के साथ खेलना है। यवन बड़े क्रूर और नृशंस हैं। क्या तुम्हें मालूम है कि उन्होंने सांकल नगरी को श्मशानभूमि के रूप में परिवर्तित कर दिया, मालवगण की स्त्रियों और बच्चों को तलवार के घाट उतार दिया, और सिन्धु देश में श्रोत्रियों और पुरोहितों तक को शूली पर चढ़ा दिया। यवन तुम्हारे साथ भी इसी प्रकार का बरताव करेंगे, तुम्हें घोर-से-घोर कष्ट देंगे और फिर बाजार के बीच में शूली पर चढ़ा देंगे। क्या तुम आर्यभूमि के गौरव के लिए यह सब खुशी-खुशी सहन कर सकोगे?'

'हम इस सबके लिए तैयार हैं, आचार्य !' शिष्यमण्डली ने चिल्लाकर कहा।

'तो आओ, हम सब मिलकर रणक्षेत्र में उतर पड़ें। जो काम गान्धार और केकय के क्षत्रियों को करना चाहिए था, वह अब हमें करना है। तक्षशिला के ये विद्यापीठ सदियों से सम्पूर्ण आर्यभूमि को मार्ग प्रदर्शित करते रहे हैं। आज भी हमें मार्ग दिखाना है, वह मार्ग जो स्वतन्त्रता की ओर ले जाता है, वह मार्ग जो दास्य जीवन का अन्त करता है, वह मार्ग जो मनुष्यों को अपने सर्वस्व की बलि देना सिखाता है।'

'हमें आदेश दीजिए, आचार्य ! हम आँख मूँदकर आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।'

'साधु, साधु ! मुझे तुमसे यही आशा थी। तो सुनो, तुम सब गान्धार, केकय, मद्रक, कठ, शिवि, आग्रेय, क्षुद्रक, मालव आदि वाहीक जनपदों में फैल जाओ। वहाँ जाकर जनता को उसकी दुर्दशा का बोध कराओ। लोगों को बताओ कि दास होकर जीवन बिताने की अपेक्षा हँसते-हँसते जान दे देना कहीं ज्यादा अच्छा है। यवनों के विरुद्ध विद्रोह की भावना उत्पन्न करो।'

'पर खुले तौर पर यह प्रचार करने पर तो यवन सैनिक हमें तुरन्त गिरफ्तार कर लेंगे, आचार्य !' एक विद्यार्थी ने दबी जबान से कहा।

'मैंने तुम्हें पहले ही कहा था कि तुम्हें आग के साथ खेलना होगा। यह सच है कि यवन सैनिक तुम्हें गिरफ्तार कर लेंगे, तुम्हें मर्मान्तिक कष्ट देंगे और फिर खुले बाजार में शूली पर चढ़ा देंगे। जिन्हें अपने प्राणों का भय हो, वे मेरे साथ न चलें। वे तक्षशिला के अपने आश्रमों में रहते हुए पठन-पाठन में तत्पर रहें। पर यह स्मरण रखो कि बलिदान के बिना स्वतन्त्रता कभी प्राप्त नहीं की जा सकती। यह भी याद रखो कि विद्या का एकमात्र उद्देश्य विमुक्ति है, विमुक्ति इन्द्रियों की दासता से, विदेशी आक्रान्ताओं की दासता से और दैन्य भावना से। यदि तुम अपनी मातृभूमि को दासता से मुक्त कराने के लिए अपने सुख और जीवन की बलि नहीं दे सकते, तो तुम्हारी विद्या बिलकुल व्यर्थ है।'

'हम अपने जीवन की बलि देने के लिए उद्यत हैं, आचार्य !' सहस्रों कण्ठ एक साथ ही बोल उठे।

'यह मत समझो कि मैं तुम्हारे जीवनों के साथ खिलवाड़ करना चाहता हूँ। तुम अपने कर्तव्यों का पालन करो। मेरे गूढ़पुरुष, सत्री और सैनिक सब तुम्हारी सहायता करेंगे। बात-की-बात में यवन लोगों का

विनाश हो जाएगा और इस आर्यभूमि में ऐसी शक्ति का संचार होगा कि कोई भी विदेशी इसकी ओर उँगली नहीं उठा सकेगा।'

तक्षशिला के हजारों विद्यार्थी आचार्य विष्णुगुप्त के साथ कार्यक्षेत्र में उतर आए। बहुत-से आचार्यों और उपाध्यायों ने भी उनका साथ दिया। तक्षशिला के राजमार्गों, पण्यहट्टों, क्रीड़ागृहों और पण्यशालाओं में सर्वत्र युवक विद्यार्थी घूमते फिरते दिखाई पड़ने लगे। सब के मुख पर एक ही बात थी—यवनों के विरुद्ध विद्रोह कर दो, आर्यभूमि के लुप्त गौरव की पुनः स्थापना करो। विद्यार्थियों की बहुत-सी मण्डलियाँ अन्य जनपदों में भी गईं, और सर्वत्र विद्रोह का प्रचार करने में तत्पर हो गईं।

विद्यार्थियों के प्रचार से तक्षशिला में सर्वत्र जोश फैल गया। लोग अपने काम छोड़कर राजमार्ग पर एकत्र होने लगे। वैदेहक, शिल्पी, कर्मकर, श्रेष्ठी सब प्रकार के लोग हथियार उठाकर मैदान में आ गए और नागरिकों की यह भीड़ यवनों के स्कन्धावार की ओर चल पड़ी। तक्षशिला के स्कन्धावार में यवन सैनिकों की संख्या चार सौ से अधिक नहीं थी। शुरू में उन्होंने डटकर मुकाबिला किया, पर जब पचास सैनिक तलवार के आघात से धराशायी हो गए, तो यवनों ने हथियार डाल दिए। जोश में भरी हुई भीड़ ने यवन स्कन्धावार में आग लगा दी, और नागरिकों ने हर्ष से उन्मत्त होकर नाचना प्रारम्भ कर दिया।

बचे हुए यवन सैनिकों को रस्सियों से बाँधकर तक्षशिला के नागरिक जुलूस बनाकर चल पड़े। उन्होंने गान्धार जनपद के राजप्रासाद का घेरा डाल दिया। आम्भि एक ऊँची अट्टालिका पर बैठा हुआ यह दृश्य देख रहा था। लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे, इस देशद्रोही की वही गति करेंगे जो इन यवनों की हुई है। आम्भि परेशान था और भय से थर-थर काँप रहा था। जान बचाने के लिए उसने भाग निकलने का प्रयत्न किया, पर नागरिकों ने उसे पकड़ लिया। राजप्रासाद के द्वार को चकनाचूर कर नागरिकों की भीड़ अन्दर प्रविष्ट हो गई। शिवशर्मा नाम का एक युवक विद्यार्थी इस भीड़ का नेतृत्व कर रहा था। जोश से पागल हुए लोग जब राजप्रासाद को भी अग्निदेव को समर्पित कर देने के लिए उद्यत हुए, तो उसने चिल्लाकर कहा—'भाइयो, यह क्या करते हो? यह प्रासाद गान्धार जनपद का है, आम्भि की निजी सम्पत्ति नहीं है। इसे नष्ट न करो!' शिवशर्मा की बात लोगों की समझ में आ गई। पर वे एक साथ बोल उठे—'तो अब क्या करें?' शिवशर्मा ने फिर चिल्लाकर कहा—'चलो, अब तक्षशिला के पौर भवन की ओर चलें। देशद्रोही कुलमुख्यों को बाहर निकाल-

कर तक्षशिला के शासन को हमें अपने हाथों में ले लेना है।'

सब लोग शिवशर्मा के पीछे-पीछे चल पड़े। उस समय पौर सभा का अधिवेशन हो रहा था। कुलमुख्य लोग इस प्रश्न पर विचार कर रहे थे कि विष्णुगुप्त के भड़काने से विद्यार्थियों ने जो उत्पात शुरू किया है, उसका क्या उपाय करना चाहिए। उन्मत्त नागरिकों ने पौर भवन को घेर लिया। कुछ लोग सभाभवन के अन्दर घुस गए और उन्होंने कुलमुख्यों को आदेश दिया—'आप लोग चुपचाप अपने-अपने घर चले जाइए। यहाँ अब आपका कोई काम नहीं है।'

एक पौर मुख्य ने साहस करके प्रश्न किया—'आपको यह आदेश देने का अधिकार किसने दिया है?'

'आचार्य विष्णुगुप्त ने। यदि आप उनके अधिकार को स्वीकृत नहीं करते, तो गान्धारराज आम्भि स्वयं अपने श्रीमुख से आपको यह आदेश देने का कष्ट स्वीकार करेंगे।'

सब लोग यह सुनकर हँस पड़े। नागरिकों ने आम्भि को धकेलकर आगे कर दिया।

'यदि इनका आदेश भी आपके लिए पर्याप्त नहीं है, तो यवनराज के तक्षशिला-स्थित प्रतिनिधि, यवन स्कन्धावार के वीर सेनापति क्लाइटार्कस भी यहाँ उपस्थित हैं। आइए, यवन सेनापति! पौरमुख्य को आप ही आज्ञा प्रदान कीजिए।'

सब लोग एक बार फिर खिलखिलाकर हँस पड़े। पौरमुख्य और कुलमुख्य सब चुपचाप सभाभवन से बिदा हो गए। अब तक्षशिला के राजप्रासाद और पौर भवन पर जनता का अधिकार हो गया था। यवनों के विरुद्ध क्रान्ति का यह श्रीगणेश था।

(२६)

व्याडि का नीतिजाल

जिस दिन तक्षशिला में यवनों के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात हुआ, उसी दिन केकय की राजधानी राजगृह में एक जटिल तापस ने पदार्पण किया। उसके साथ सौ से भी अधिक अन्तेवासी थे। नगर के बाहर एक पुराने मन्दिर में उन्होंने अपना डेरा जमाया। सुबह के समय जब अन्तेवासी लोग भिक्षा माँगते हुए नगर में आए, तो लोगों ने उनसे पूछा—'महाराज!

आप कहाँ से पधारे हैं ?'

'हम लोग कैलाश से आए हैं। हमारे गुरु बड़े सिद्ध हैं। उनकी आयु चार सौ वर्ष की है। जब वे सौ वर्ष के हो जाते हैं, तो अग्नि में प्रवेश कर फिर से युवा बन जाते हैं। उन जैसा सिद्ध पुरुष इस समय संसार में और कोई नहीं है।'

'अब वे चौथी बार अग्नि-प्रवेश कब करेंगे, महाराज ?'

'अब से ठीक तीन दिन बाद। तुम लोगों का अहोभाग्य है, जो इस समय वे राजगृह पधारे हुए हैं। चलो, उनके दर्शन करो। जिस किसी पर गुरु महाराज की कृपा होगी, वह अपनी आँखों से यह भी देख सकेगा कि वे अग्नि-प्रवेश करके किस प्रकार पुनः किशोर बन जाते हैं।'

अन्तेवासियों की बात सुनकर राजगृह के निवासियों को बड़ा कौतूहल हुआ। साँझ के समय बहुत से श्रद्धालु नर-नारी जटिल तापस के दर्शनों के लिए एकत्र हुए। जटिल गुरु ने उनसे कहा—'आज से ठीक चौथे दिन रात के समय मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा। तुम सब आना और योग का यह चमत्कार देखना।' एक पहर रात गए तक लोग तापस बाबा के पास बैठे रहे और उनसे कैलाश के सम्बन्ध में बातचीत करते रहे। तापस ने कहा, मैंने इन्हीं आँखों से शिव और पार्वती के दर्शन किए हैं। उनका नन्दी कितना ऊँचा है, ठीक कैलाश के समान ही शुभ्रवर्ण का। कुछ दिन की बात है, जब मैं कैलाश की एक गुफा में ध्यानमग्न बैठा था, पार्वती जी मेरे पास आईं और कहने लगीं—वाहीक देश के लोग अब हमें भूलते जा रहे हैं। वहाँ तो यवनों का राज हो गया है, और वहाँ की स्त्रियाँ यवनों से विवाह भी करने लग गई हैं। कुछ दिनों में वे यवन देवी-देवताओं की भी पूजा करने लगेंगे। मैंने पार्वतीजी से कहा—नहीं, माँ ! मैं वाहीक देश जाता हूँ, और अपने योग का चमत्कार वहाँ के लोगों को दिखाता हूँ। क्या यवन देश में कोई ऐसा आदमी है, जो हर सौ साल बाद अग्नि में प्रवेश कर फिर से युवा हो जाए। यह शिव-पार्वती की आराधना का ही परिणाम है, जो मुझे यह सिद्धि प्राप्त हुई है। मेरी योग विद्या के चमत्कार को देखकर भी क्या वाहीक देश में कोई ऐसा आर्य होगा, जो यवनों के धर्म को अपनाए। पार्वतीजी ने मुझे आशीर्वाद दिया, तुम्हारी एक सहस्र वर्ष की आयु हो। जाओ, और वाहीक देश को यवनों का धर्म ग्रहण करने से बचाओ।

जटिल तापस की बात सुनकर नर-नारियों ने श्रद्धा से अपने सिर झुका दिए। तापस ने फिर कहा—देखो, भूलना मत, आज से चौथे दिन

सूर्यास्त होते ही यहाँ आ जाना।

जिस समय राजगृह के नर-नारी तापस बाबा के दर्शन करके वापस लौटने लगे, तब घोर अन्धकार छा चुका था। अमावस की काली रात में वे धीरे-धीरे चल रहे थे, कि एक अद्भुत दृश्य देखकर रुक गए। मार्ग में एक बड़ा तड़ाग था, जो गहरे जल से परिपूर्ण था। इस तड़ाग के ठीक बीच में मानुष आकृति के कोई जीव खड़े थे, जिनके शरीर से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। इनके मुख कृष्णनाग के समान काले थे और ये नाग के समान ही फूत्कार कर रहे थे। आग की लपटों से घिरे हुए इनके काले मुख-मण्डल बड़े भयंकर प्रतीत होते थे। कुछ देर में इन जीवों ने अपने हाथ ऊपर उठाए और लोहे के मूसलों को चारों ओर घुमाना शुरू कर दिया। मूसल घुमाते हुए वे जोर-जोर से चिल्लाने लगे—'केकय के लोगो, हम तुम्हें कच्चा चबा जाएँगे। तुमने नाग देवता को रुष्ट कर दिया है। हम यहाँ किसी को भी नहीं छोड़ेंगे। तुम्हारे राजा, अमात्य, सेनापति आदि सभी को निगल जाएँगे। नाग देवता तुम सब पर क्रुद्ध हैं, तुममें से कोई भी उनके कोप से नहीं बच सकेगा।'

सब लोग इस दृश्य को देखकर डर गए। वे अभी राजगृह की प्राचीर के समीप पहुँचे ही थे कि गीदड़ों की आवाज सब ओर से सुनाई देने लगी। साथ ही, उन्होंने एक और वीभत्स दृश्य देखा। रीछ की आकृति के बहुत-से जीव राजगृह की प्राचीर के समीप घूम रहे थे। उनके मुखों से आग की लपटें निकल रही थीं और वे जोर-जोर से चिल्लाकर कह रहे थे—'केकय के लोगो! हम तुम्हें कच्चा ही चबा जाएँगे, एक को भी जीता नहीं छोड़ेंगे। तुमने नगरदेवता को रुष्ट कर दिया है। हम उसके रक्षक हैं, तुम्हें खाकर उन्हें सन्तुष्ट करेंगे।'

तापस बाबा के दर्शन करके लौटते हुए जो वीभत्स दृश्य दिखाई दिए थे, अगले दिन सारे राजगृह में उन्हीं की चर्चा होती रही। राजमार्गों पर, पण्यशालाओं में, मन्दिरों में सब जगह लोग इकट्ठे होकर इसी विषय पर बातें करने लगे। कोई कहता, राजगृह पर घोर विपत्ति आने वाली है, शीघ्र ही उसका प्रतिकार करना चाहिए। दूसरा कहता, ऐसा तो राजगृह में पहले कभी नहीं हुआ, चलो देवमन्दिर में जाकर किसी मौहूर्तिक (ज्योतिषी) से इसका फल पूछें। सब लोग उद्विग्न थे, और चिन्ताग्रस्त होकर यही सोच रहे थे कि राजगृह पर कोई भयंकर संकट उपस्थित होने वाला है।

कुछ लोग सुबह होते ही भगवान् शिव के मन्दिर में गए। वहाँ एक

वृद्ध मौहूर्तिक विराजमान थे। उन्हें प्रणाम करके एक नागरिक ने प्रश्न किया—'महाराज ! राजगृह में यह क्या हो रहा है? ये किस भावी संकट के चिह्न प्रकट हो रहे हैं ?'

मौहूर्तिक ने उत्तर दिया—'क्या तुमने भगवान् शिव की पूजा कर ली है? जाओ, पहले शिव को अर्घ्य दे आओ। तब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा।'

लोग पत्र-पुष्प लेकर भगवान् शिव के मन्दिर में प्रविष्ट हुए। वहाँ का दृश्य देखकर वे स्तब्ध रह गए। शिवलिंग के सम्मुख जो नन्दी खड़े थे, उनके उदर से रक्त प्रवाहित हो रहा था और उससे मन्दिर की वेदी पर सर्वत्र खून ही खून नजर आने लगा था। यह दृश्य देखकर लोग भय के मारे चिल्लाने लगे। कुछ स्त्रियाँ तो वहीं मूच्छित होकर गिर पड़ीं।

पूजा किए बिना ही लोग मौहूर्तिक के पास वापस लौट आए और बोले—'महाराज यह सब क्या हो रहा है? शिव के मन्दिर में यह कैसा वीभत्स काण्ड हो गया है!'

मौहूर्तिक आँखें बन्द कर कुछ क्षण चुप बैठे रहे। फिर धीरे-धीरे बोले—'मुझे साफ-साफ दिखाई दे रहा है। शीघ्र ही इस केकय देश में भगवान् रुद्र का ताण्डव नृत्य होगा। उस समय यह राजगृह नष्ट हो जाएगा। जहाँ आज गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ खड़ी हैं, वहाँ राख के ढेर लग जाएँगे। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध कोई भी यहाँ सुरक्षित नहीं रहेगा।'

'यह सब किसलिए, महाराज ! हम लोगों ने क्या अपराध किया है, जो हमें यह दिन देखना पड़ेगा ?'

'केकय से भगवान् शिव कुपित हो गए हैं।'

'पर ऐसा क्यों, महाराज !'

'क्योंकि इस आर्यभूमि में म्लेच्छ यवनों का पदार्पण हो गया है। भगवान् शिव यह सहन नहीं कर सकते कि यह पवित्र आर्यभूमि म्लेच्छों द्वारा पदाक्रान्त हो।'

'तो हमें क्या करना चाहिए, महाराज ! भगवान् के प्रकोप को शान्त करने के लिए हमें क्या-कुछ करना होगा ?'

'तुम सब को इसके लिए प्रायश्चित्त करना होगा।'

'वह किस प्रकार, महाराज !'

'तुम्हें इसके लिए एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान करना होगा। यह यज्ञ सात दिन तक चलेगा। इसमें तुम्हें बलि देनी होगी। बहुत कीमती बलि होगी यह, क्या यह बलि दे सकोगे ?'

'आप व्यवस्था कीजिए, महाराज ! आप जिस किसी पशु की बलि का विधान करेंगे, हम उसे यज्ञकुण्ड के समीप लाकर खड़ा देंगे। हम भगवान् शिव के प्रकोप को शान्त करने के लिए कोई भी कसर उठा नहीं रखेंगे। इस कार्य में जितना भी द्रव्य खर्च हो, हम उसकी परवाह नहीं करेंगे।'

'अरे मूर्खो ! इस यज्ञ में पशुओं की बलि नहीं देनी होगी और न धन ही खर्च होगा।'

'फिर किसकी बलि देनी होगी, महाराज ?'

'यवनों की, यवन सेनापतियों की। राजगृह के यवन स्कन्धावार में पचास हजार से भी अधिक सैनिक विद्यमान हैं। वाहीक देश में यवनों के आधिपत्य को स्थापित रखने के लिए ही ये सैनिक राजगृह में रखे गए हैं। भगवान् शिव ने इस समय रुद्र का रूप ग्रहण कर लिया है। वे बलि चाहते हैं, बलि। मनुष्यों की बलि, म्लेच्छ यवनों की बलि। समझ गए ?'

'पर क्या हम नागरिक इतने यवन सैनिकों के सम्मुख खड़े हो सकेंगे, महाराज ! यवनों ने हमें निःशस्त्र कर दिया है। हम उनके विरुद्ध लड़ाई कैसे लड़ सकते हैं ?'

'तो फिर रुद्र के ताण्डव नृत्य के लिए तैयार हो जाओ। जब भगवान् अपना नृत्य शुरू करेंगे, तो न तुममें से कोई जीवित रहेगा और न यह राजगृह ही बच रहेगा। तुमने देखा नहीं, नन्दी से किस प्रकार रक्त का प्रवाह बह रहा है। भगवान् इस समय रक्त चाहते हैं, रक्त; और कुछ नहीं। नन्दी ने अपना पेट फाड़कर उन्हें रक्त प्रदान किया, पर इससे भी वे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्हें नर-रक्त की प्यास है, हजारों मनुष्यों का रक्तपान करके ही उनकी प्यास शान्त होगी।'

'हमें मार्ग प्रदर्शन कीजिए, महाराज !'

मौहूर्तिक ने कुछ क्षणों के लिए फिर अपनी आँखें बन्द कर लीं। अत्यन्त गम्भीर स्वर में उन्होंने फिर कहना शुरू किया—'पश्चिम की ओर से कुछ वटुक चले आ रहे हैं। मुझे उनकी पद-चाप साफ-साफ सुनाई दे रही है। वे परसों सुबह तक यहाँ पहुँच जाएँगे। उनके साथ में एक आचार्य भी है, बड़ा प्रसिद्ध आचार्य, विश्वविख्यात आचार्य। वह तुम्हें मार्ग प्रदर्शित करेगा।'

'हम तैयार रहेंगे, महाराज ! भगवान् रुद्र का ताण्डव नृत्य हमसे नहीं देखा जाएगा। उनके कोप को तो हमें शान्त करना ही होगा, महाराज !'

दो दिन बाद आचार्य विष्णुगुप्त अपने शिष्यों के साथ तक्षशिला से राजगृह पहुँच गए। तक्षशिला यवनों की अधीनता से मुक्त हो चुका था। वहाँ की छोटी-सी यवन सेना नागरिकों के विद्रोह को कुचल सकने में असमर्थ रही थी। पर वाहीक देश में यवनों की शक्ति का असली केन्द्र राजगृह था। क्षत्रप फिलिप्पस और सेनापति परिप्लस अपनी विशाल यवन सेना के साथ वहीं पर निवास कर रहे थे। राजगृह के महाद्वार पर जो सैनिक नियुक्त थे, वे केकय देश के ही थे। तक्षशिला के प्रसिद्ध आचार्य को अपने शिष्यों के साथ राजगृह में प्रविष्ट होते देखकर उन्होंने कोई सन्देह नहीं किया। तक्षशिला के विद्रोह का समाचार अभी राजगृह नहीं पहुँचा था। विष्णुगुप्त विद्रोह शुरू होने से पूर्व ही वहाँ से चल चुके थे। तक्षशिला का कार्य उन्होंने शिवशर्मा के सुपुर्द कर दिया था।

विष्णुगुप्त और उनके साथियों ने राजगृह की जनता को यवनों के विरुद्ध उकसाना प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शिव के मन्दिर में और अन्यत्र जो भयंकर लक्षण प्रकट हो रहे थे, उनसे जनता पहले ही उद्विग्न थी। अब विष्णुगुप्त और उनके शिष्यों की बातें सुनकर उसमें यवनों के विरुद्ध भावना उद्बुद्ध होने लगी। लोग सोचने लगे कि वाहीक देश में यवनों की सत्ता सचमुच अनुचित है, और उसका अन्त करके ही देवताओं के प्रकोप को शान्त किया जा सकता है।

जब क्षत्रप फिलिप्पस को ज्ञात हुआ कि राजगृह में विद्रोह के लक्षण प्रकट हो रहे हैं, तो उसने सेनापति परिप्लस को बुलाया—'क्यों परिप्लस, तुम्हारे सैनिक क्या कर रहे हैं ? इन वटुकों को क्यों वश में नहीं लाते ?'

'भारत में आचार्यों और वटुकों का बड़ा मान है, क्षत्रप ! यदि इन्हें गिरफ्तार किया गया, तो जनता विद्रोह कर देगी।'

'फिर तुम्हारे ये पचास हजार यवन सैनिक यहाँ किसलिए हैं ?'

'यह भी असम्भव नहीं कि केकयराज की सेना इन विद्रोहियों के साथ मिल जाए।'

'तो इससे क्या हुआ ? विश्वविजयी यवनराज की सेना क्या इन वटुकों को वश में ला सकने में असमर्थ है ? यदि जनता ने विद्रोह किया, तो हम राजगृह को भस्म कर देंगे। केकय की सेना को वश में लाने के लिए यवन सेना पर्याप्त होगी।'

'तो फिर आप आज्ञा दीजिए, क्षत्रप !'

'अभी जाओ, अपने दण्डधरों और सैनिकों को आदेश दो कि इन वटुकों को चुन-चुनकर गिरफ्तार कर लें। जो मुकाबिला करें, उन्हें तलवार

के घाट उतार दिया जाए।'

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, क्षत्रप !'

'और सुनो, राजगृह में मुनादी करा दो कि यदि नागरिकों ने विद्रोह किया, तो इस नगर को आग लगा दी जाएगी। राजगृह के सब महाद्वारों को बन्द करा दो। न कोई आदमी इसमें प्रविष्ट होने पाए और न कोई इससे बाहर निकल सके। यदि नागरिक विद्रोह करें, तो न केवल राजगृह को ध्वंस कर दो, अपितु सब स्त्री-पुरुषों और बच्चों को भी कतल कर दो।'

'मैं अभी सब व्यवस्था कर देता हूँ, क्षत्रप !'

परिप्लस के सैनिकों ने दस वटुकों को गिरफ्तार कर लिया।

गिरफ्तार वटुकों को फिलिप्पस के सम्मुख पेश किया गया। यवन क्षत्रप ने उनसे पूछा—'तुम लोग कौन हो ?'

'हम तक्षशिला के विद्यार्थी हैं, और आचार्य विष्णुगुप्त के शिष्य हैं।'

'तुम तक्षशिला से क्यों आए हो ?'

'वाहीक देश से यवनों के शासन का अन्त करने के लिए, आर्यभूमि को विदेशी म्लेच्छों की अधीनता से मुक्त कराने के लिए।'

'तुम जानते हो, तुम राजद्रोही हो और तुम्हें यह भी ज्ञात है कि राजद्रोह का क्या दण्ड है ?'

'हमें सब ज्ञात है। पर हम जान-बूझकर आग के साथ खेलने के लिए ही यहाँ आए हैं।'

'तो फिर सजा भुगतने के लिए तैयार हो जाओ।'

फिलिप्पस ने तीन बार ताली बजाई। तीन सशस्त्र सैनिक वहाँ आकर उपस्थित हो गए। फिलिप्पस ने आज्ञा दी—'इन वटुकों को राजगृह के चौराहे पर ले जाओ, और सब को वृक्ष-पंक्ति के साथ कीलों से गाड़ दो।'

दसों वटुक राजमार्ग के चौराहे पर ले जाए गए। यवन सैनिकों ने उन्हें वृक्षों के साथ खड़ा किया, और उनके हाथों व पैरों में लोहे की मोटी-मोटी कीलें ठोक दीं। हजारों नागरिक इस वीभत्स दृश्य को देखने के लिए वहाँ एकत्र हो गए। तक्षशिला के ये वटुक उन्हें सम्बोधन कर कहने लगे—'भाइयो, हम खुशी-खुशी मृत्यु का आलिङ्गन कर रहे हैं, ताकि आप सब जीवित रहें। हम अपने जीवन की बलि दे रहे हैं, ताकि आप सब स्वाधीन और गौरवमय जीवन बिता सकें। हमें प्रसन्नता है कि हम आर्य-भूमि को घृणित यवनों की अधीनता से मुक्त कराने के लिए अपने सर्वस्व

को स्वाहा कर रहे हैं।'

राजगृह के कुछ नागरिक इस दृश्य को देखकर भड़क गए। उन्होंने यवन सैनिकों पर आक्रमण शुरू कर दिया। पर वटुकों ने चिल्लाकर कहा—'भाइयो, अभी इसका समय नहीं आया है। अभी प्रतीक्षा करो। आप लोगों का जीवन बहुमूल्य है, आपके घर हैं, स्त्री हैं, सन्तान हैं। व्यर्थ में अपने जीवनों की आहुति मत दो। इसका समय भी शीघ्र ही आएगा। यज्ञकुण्ड में आहुति देने की भी एक विधि होती है, एक समय होता है।'

वटुकों की बात सुनकर नागरिक लोग शान्त हो गए। साँझ तक वटुक इसी प्रकार वृक्षों पर लटके रहे। उनके हाथों और पैरों से खून की धाराएँ बह रही थीं। धीरे-धीरे उनकी जीवन-ज्योति मन्द पड़ती गई, और रात्रि के प्रथम प्रहर में उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

राजगृह के हजारों नर-नारियों ने किशोर वय के इन दस वटुकों को तड़प-तड़पकर प्राण देते हुए देखा। अन्त समय तक उनके चेहरों पर मुसकान थी। उनके मुखमण्डल पर एक ऐसी शान्ति विराज रही थी, जो किसी ऊँचे आदर्श के लिए अपने जीवन की आहुति देकर ही प्राप्त हो सकती है। इन वटुकों की जीवन-ज्योति बुझ गई थी, पर उन्होंने राजगृह के हजारों नरनारियों के हृदय में एक ऐसी अग्नि को प्रदीप्त कर दिया था, जिसके सम्मुख संसार की किसी भी शक्ति के लिए ठहर सकना असम्भव था।

(३०)

पोरु की इन्द्रदत्त से भेंट

कैलाशवासी जटिल तापस के राजगृह पधारने का समाचार जब राजा पोरु ने सुना, तो वह भी उनके दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो उठा। उसने सोचा, इतनी दूर से एक महात्मा उसके राज्य में आए हैं, उनके दर्शन का पुण्य तो प्राप्त करना ही चाहिए। यह सुना तो था कि आर्यभूमि में ऐसे-ऐसे सिद्ध पुरुष निवास करते हैं, जो हजारों वर्षों तक जीवित रहते हैं, और सौ वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने पर अग्नि-प्रवेश कर फिर से युवा हो जाते हैं। पर ऐसे महात्मा के दर्शन का सौभाग्य पूर्व-संचित पुण्य के प्रताप से ही प्राप्त होता है। जिस दिन जटिल तापस को अग्नि में प्रवेश करना था, राजा पोरु भी उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। राजा के आगमन

की सूचना पाकर सर्वसाधारण नागरिकों ने उनके लिए रास्ता छोड़ दिया और पोरु ने पैर छूकर जटिल तापस को प्रणाम किया। तापस बाबा आँखें बन्द किए ध्यानमग्न बैठे थे। राजा और रंक सब के प्रति उनकी समदृष्टि थी। उनके शिष्यों ने कहा—'महाराज! केकयराज पोरु आपको प्रणाम कर रहे हैं।' तापस उसी प्रकार बैठे रहे। हाथ उठाकर उन्होंने राजा को आशीर्वाद दिया—'तुम्हारा राजकुल आर्यभूमि के गौरव की पुनःस्थापना में सहायक हो।'

जटिल तापस की आवाज राजा पोरु को कुछ परिचित-सी जान पड़ी। इतने में एक शिष्य ने कहा—'केकयराज! आप मन्दिर के गर्भगृह में चलकर विश्राम कीजिए। योगिराज के अग्नि-प्रवेश करने में अभी चार मुहूर्त शेष हैं। आपकी उपस्थिति के कारण हजारों नर-नारी उनके दर्शन-लाभ से वञ्चित हो रहे हैं।' पोरु उठकर मन्दिर के भीतर चले गए। कुछ देर बाद जटिल तापस के एक शिष्य ने मंन्दिर के गर्भगृह में प्रवेश करके कहा—'इन्द्रदत्त आपको प्रणाम करता है, केकयराज।'

'आचार्य! आप यहाँ कहाँ? जटिल तापसों का यह भेस आपने कब धारण किया?'

'यदि ऐसा न करता, तो आपसे भेंट करने का अवसर कैसे प्राप्त होता? आप तो यवनराज की मित्रता में फँसकर हम सबको एकदम भुला बैठे हैं।'

'ऐसा न कहिए, आचार्य! जिस दिन से आप गए हैं, मैं आपको एक क्षण के लिए भी नहीं भुला सका हूँ। मैं अनुभव करता हूँ कि यवनों से सहयोग कर मैंने भारी भूल की थी। मेरा हृदय ग्लानि से परिपूर्ण है। यवनराज सिकन्दर ने मेरे साथ एक दास का-सा व्यवहार किया, और यह फिलिप्पस तो अपने को ही वाहीक देश का अधिपति समझता है।'

'यदि दिन-भर का भटका हुआ मनुष्य साँझ को भी अपने घर आ जाए, तो उसे भटका हुआ नहीं माना जाता, केकयराज! मुझे खुशी है कि आप अपनी भूल को अनुभव करने लगे हैं।'

'आचार्य! मैं केवल अपनी भूल को अनुभव ही नहीं करता, अपितु उसके प्रतिशोध के लिए भी उत्सुक हूँ। आपसे क्या छिपाऊँ, आचार्य! मेरा हृदय आत्मग्लानि से हर समय व्याकुल रहता है। यहाँ कोई सुन तो नहीं रहा, आचार्य! यवनों के गूढ़पुरुष बड़े चतुर हैं। वे रात-दिन छाया के समान मेरे साथ-साथ रहते हैं।'

'पर वे व्याडि से अधिक चतुर नहीं हैं, केकयराज! जटिल तापस

गुरु का भेस बनाकर जो यह वृद्ध योगिराज अग्नि-प्रवेश की तैयारी कर रहा है, वह व्याडि ही है।'

'ओह, मैं अब समझा। तभी मुझे तापस बाबा की आवाज कुछ परिचित-सी जान पड़ी थी।'

'यहाँ जितने जटिल अन्तेवासी विद्यमान हैं, वे सब व्याडि के गूढ़पुरुष हैं। यवनों का कोई भी सत्री उनकी निगाह से बचकर यहाँ नहीं आ सकता।'

'तो आप लोगों का अब क्या विचार है, आचार्य?'

'हम लोग आर्यभूमि को यवनों की दासता से मुक्त कराने के लिए यत्न कर रहे हैं। तक्षशिला की यवन सेना गिरफ्तार की जा चुकी है। गान्धार यवनों की अधीनता से स्वतन्त्र हो गया है। अब केकय की बारी है। हम यहाँ मन्त्र-युद्ध शुरू कर चुके हैं, शस्त्र-युद्ध में भी अब देर नहीं है।'

'आपकी नीति-कुशलता पर मुझे पूरा विश्वास है, आचार्य! पर फिलिप्पस बड़ा नृशंस व्यक्ति है। उसके साथ यहाँ जो यवन सेना अपनी छावनी डाले पड़ी है, उसमें पचास हजार सैनिक हैं। इस शक्तिशाली सेना का मुकाबिला आप कैसे कर सकेंगे?'

'हमने इसका सब प्रबन्ध कर लिया है। आचार्य विष्णुगुप्त अपने शिष्यों के साथ राजगृह आ चुके हैं। वे नागरिकों को यवनों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भड़का रहे हैं।'

'पर निहत्थे नागरिक सशस्त्र यवन सैनिकों का मुकाबिला कैसे कर सकेंगे?'

'आचार्य विष्णुगुप्त जनता की शक्ति में अगाध विश्वास रखते हैं। दण्डनीति की शिक्षा देते हुए वे अपने शिष्यों को सदा यह समझाते हैं कि जनता का कोप संसार के सब कोपों की अपेक्षा अधिक भयंकर होता है। जब जनता राजा के खिलाफ उठ खड़ी होती है, तो सेना या राजा की कोई भी शक्ति उसके सम्मुख खड़ी नहीं रह सकती।'

'पर राजगृह की जनता के पास तो शस्त्र भी नहीं हैं। यवनों ने उसे निःशस्त्र कर दिया है।'

'मुझे मालूम है, केकयराज! पर समय आने पर हम सेना द्वारा भी यवनों का मुकाबिला करेंगे। कुमार चन्द्रगुप्त स्रुघ्न देश में भृत सेना का संगठन करने में तत्पर हैं। गृह-कपोतों द्वारा मुझे आज ही सूचना मिली है कि उन्होंने एक लक्ष सैनिक एकत्र कर लिए हैं। आचार्य शकटार जैसा

नीति-कुशल व्यक्ति चन्द्रगुप्त के साथ है। यह सेना शीघ्र ही यवनों पर आक्रमण करेगी।'

'यह चन्द्रगुप्त कौन है, आचार्य !'

'आचार्य विष्णुगुप्त का एक प्रिय शिष्य है। वह बड़ा उद्दण्ड और साहसी युवक है। विष्णुगुप्त को उसकी प्रतिभा और शक्ति में अगाध विश्वास है। देखिए, केकयराज ! हमें इस समय आपकी सहायता की अत्यन्त अधिक आवश्यकता है। आपसे भेंट करने के लिए ही हम लोगों ने जटिल तापसों का भेस बनाया था। अपनी योजना की सफलता पर हमें बहुत सन्तोष है।'

'आप मुझसे क्या कार्य लेना चाहते हैं, आचार्य !'

'आप फिलिप्पस के पास तो आते-जाते रहते हैं न ?'

'हाँ, राज्यकार्य के लिए मुझे उससे बहुधा मिलना होता है। पर मुझे उससे मिलना जहर का घूंट पीने के समान मालूम पड़ता है। वह मेरे साथ बहुत उद्दण्डता का व्यवहार करता है।'

'क्या आप फिलिप्पस से एकान्त में मिल सकते हैं, केकयराज ?'

'नहीं आचार्य ! वह सदा अपने विश्वस्त यवन सैनिकों से घिरा रहता है। केकय का कोई दण्डधर या सैनिक उसके समीप तक भी नहीं पहुंच सकता। वह यहाँ के राजपुरुषों पर विश्वास नहीं करता।'

'क्या वह प्रकृति से कामुक है? काम-वासना का शिकार तो वह अवश्य होगा ?'

'पर उसे ज्ञात है कि वाहीक देश की रूपाजीवाओं से अपनी काम-वासना को तृप्त करना आशंका से खाली नहीं है। इस विषय में आम्भि उसे सब-कुछ बता चुका है।'

'उसे दास-दासियों की आवश्यकता तो रहती ही होगी। यवन देश में तो दास-दासियों का मूक पशुओं के समान क्रय-विक्रय होता है। यहाँ वाहीक देश में इस प्रथा का अभी सूत्रपात नहीं हुआ है। आर्यों को दास बनाकर बेचने का रिवाज अभी यहाँ नहीं है, और अनार्य जातियों की यहाँ सत्ता नहीं है। यवन लोग वाहीक में रहते हुए दास-दासियों के अभाव को तो अनुभव करते ही होंगे ?'

'हाँ, यह सम्भव है, आचार्य !'

'पाटलिपुत्र का एक समृद्ध श्रेष्ठी कल राजगृह आएगा। बहुत-से दास और दासियाँ उसके साथ होंगी, जिन्हें उसने पाटलिपुत्र के दासहट्ट से क्रय किया था। वह राजगृह में उन्हें बेचने का प्रयत्न करेगा। पर केकय के

नागरिकों में तो दास रखने की परम्परा है नहीं। अतः वे उसके दासों को नहींखरीदेंगे। फिर वह यवनों के स्कन्धावार में जाएगा। उसके साथ बहुत-सी पेशलरूपा दासियाँ भी होंगी। यवन सैनिक उन्हें शौक से खरीदेंगे। आप फिलिप्पस से मिलकर यह प्रबन्ध कर देना कि वह रूप-यौवन-सम्पन्ना मागध दासियों को देखने के लिए स्कन्धावार में चला आए या उन्हें अपने राजप्रासाद में ही बुला ले। श्रेष्ठी का भेस बनाकर जो व्यक्ति दासियों के साथ जाएगा, वह मेरा अत्यन्त विश्वस्त गूढ़पुरुष है। वह वीर और साहसी भी है। एक बार उसे फिलिप्पस के सामने आने का अवसर मिल जाए बस यही पर्याप्त है। शेष काम वह स्वयं कर लेगा। मुझे विश्वास है, कि इस कार्य में आप हमारी सहायता करेंगे, केकयराज!'

'मैं आपका आदेश मानने के लिए तैयार हूँ, आचार्य! पर इतने दिनों तक यवनों के सामने घुटने टेकते रहने के कारण मुझमें हीन भावना उत्पन्न हो गई है। मेरा सब साहस और तेज लुप्त हो गया है। इस समय मेरी आयु भी साठ साल से ऊपर हो गई है। इच्छा होती है कि युवराज पर्वतक को राज्य-कार्य सौंपकर स्वयं वन में चला जाऊँ!'

'पर कुमार पर्वतक को क्या आप राज्यश्री का शव सौंपना चाहते हैं, केकयराज! यह आपके गौरव और मर्यादा के अनुरूप नहीं है। पहले केकय को यवनों की अधीनता से मुक्त कीजिए, फिर प्राचीन आर्य मर्यादा का अनुसरण कर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कीजिए। इसी में आपका गौरव है। अन्यथा भावी आर्य सन्तति आपका नाम एक ऐसे व्यक्ति के रूप में स्मरण करेगी, जिसने केकय देश को यवनों का दास बना दिया था।'

'मैं आपके परामर्श के अनुसार कार्य करूँगा, आचार्य!'

जटिल तापस के अग्नि-प्रवेश का समय हो गया था। मन्दिर के विशाल प्राङ्गण में हजारों नर-नारी उपस्थित थे। एक विशाल कुण्ड बनाया गया। उसमें अग्नि की स्थापना होने के साथ ही अन्तेवासियों ने उच्च स्वर से मन्त्र पाठ शुरू कर दिया। वृद्ध तापस धीरे-धीरे उठे और धधकती हुई अग्नि के ऊपर आसीन हो गए। राजगृह के नागरिकों ने आश्चर्यचकित होकर इस चमत्कार को देखा। कुछ देर बाद यज्ञकुण्ड से पीले रंग के धुएँ का एक बादल-सा उठा, और उसने सारे आकाशमण्डल को व्याप्त कर लिया। इस धुएं के कारण दर्शकों की आँखें क्षण-भर के लिए बन्द-सी हो गईं। जब उनकी आँखें खुलीं, तो यज्ञकुण्ड की अग्नि मन्द पड़ गई थी, वृद्ध तापस के स्थान पर एक युवा पुरुष धीरे-धीरे कुण्ड से बाहर निकल रहा था और

श्रद्धालु लोग उसके आगे सिर झुका रहे थे।

पोरु ने भी इस अद्भुत दृश्य को अपनी आँखों से देखा। उसने विनय के साथ कहा—'तापस बाबा, मैं आपकी चरणधूलि को सिर पर धारण करना चाहता हूँ।'

'मन्दिर के राजगृह में चलिए, केकयराज ! यहाँ हजारों नर-नारियों की भीड़ है। यदि सब लोग आपका अनुसरण कर मेरी चरणधूलि को लेने के लिए आगे बढ़ने लगें, तो इस पैर का तो नाम-निशान भी शेष नहीं रह जाएगा।' युवा तापस ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

महाराज पोरु तापस बाबा के साथ मन्दिर के गर्भगृह में प्रविष्ट हुए।

'क्यों व्याडि ! योग की यह सिद्धि कहाँ से सीख ली है, तुमने ?'

'आचार्य विष्णुगुप्त से, केकयराज ! वे औपनिषदिक प्रयोगों में बड़े सिद्धहस्त हैं। उन्होंने मुझे एक ऐसा चूर्ण बनाकर दिया है, जिसे शरीर पर मल लेने से अग्नि का जरा भी असर नहीं होता।'

'क्या कोई ऐसा चूर्ण सचमुच होता है, व्याडि !'

'क्यों नहीं, केकयराज ! अभी तो आपने अपनी आँखों से देखा है। मैं कितनी देर अग्निकुण्ड में खड़ा रहा, पर अग्नि ने मेरा बाल तक भी बाँका नहीं किया। यह तो बड़ा साधारण प्रयोग है, केकयराज ! आचार्य विष्णुगुप्त तो ऐसे-ऐसे प्रयोग जानते हैं, जिनसे मनुष्य दिन में भी अदृश्य होकर जहाँ चाहे घूम-फिर सकता है। उनके पास एक ऐसा चूर्ण है, जिसे शरीर पर मल लेने से मनुष्य छायापुरुष बन जाता है। एक अन्य चूर्ण को आँखों में डाल लेने से मनुष्य रात्रि के घोर अन्धकार में भी देख सकता है। आचार्य विष्णुगुप्त की विद्या अगाध है, और उनकी कार्यशक्ति अनुपम है। वे एक ऐसा चूर्ण भी बनाते हैं, जिसे अग्नि में डाल देने से ऐसा धूम्र निकलता है, जिससे शत्रु-सेना बेहोश हो जाती है।'

'यह आचार्य विष्णुगुप्त वस्तुतः अद्भुत पुरुष हैं, व्याडि !'

'इस समय वे केकय जनपद में ही निवास कर रहे हैं, महाराज ! आपको शीघ्र ही उनकी अलौकिक शक्ति को प्रत्यक्ष देखने का अवसर प्राप्त होगा।'

जटिल तापस के अग्नि-प्रवेश द्वारा फिर से युवा हो जाने की बात सारे राजगृह में फैल गई। लोग परस्पर बातें करते हुए कहने लगे—इस आर्यभूमि में सचमुच ऐसे सिद्ध महात्मा निवास करते हैं, जो अलौकिक शक्ति रखते हैं। पर ये जो अपशकुन राजगृह में सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इनका क्या परिणाम होगा। तड़ाग में खड़े हुए नाग देवता का वह

भयंकर शाप, ऋक्षरूपी देवताओं का वह वीभत्स वचन और भगवान् शिव के मन्दिर का वह रक्त-प्रवाह—ये सब क्या परिणाम उत्पन्न करेंगे ? सचमुच राजगृह पर कोई भयंकर विपत्ति आने वाली है। अन्य नागरिक कहते, डर की क्या बात है ? जब जटिल तापस जैसे सिद्ध योगी यहाँ पधारे हुए हैं, तो हमें किसी बात का भय नहीं होना चाहिए। वे अवश्य हमारी रक्षा करेंगे।

(३१)

फिलिप्पस की हत्या

राजगृह के पण्यहट्ट में उस दिन लोगों की असाधारण भीड़ थी। विक्रय के लिए लाए गए दासों को देखने के लिए नागरिक लोग बहुत बड़ी संख्या में एकत्र थे। राजगृह के लिए यह बिलकुल नई बात थी। पशुओं के समान स्त्री-पुरुषों का भी क्रय-विक्रय होता है, यह केकय के निवासियों ने सुन तो रखा था, पर इसे अपनी आँखों से देखने का उन्हें पहले कभी अवसर नहीं मिला था।

पण्यहट्ट के बीच के खुले मैदान में तीन सौ के लगभग स्त्री-पुरुष आँखें नीचे किए हुए खड़े थे। वक्रोदर नाम का एक स्थूलकाय श्रेष्ठी उनके सामने की ओर घूम-घूमकर कह रहा था—'यह पण्य अंग, बंग और मगध से लाया गया है। ऐसा बढ़िया पण्य केकय देश में विक्रय के लिए पहले कभी नहीं आया था। नागरिकों के कितने काम की चीजें हैं ये। यह दास ज्योतिष जानता है, गणित विद्या का पण्डित है, हिसाब-किताब में प्रवीण है, और औपनिषदिक प्रयोगों का भी ज्ञाता है। इसका मूल्य केवल पचास निष्क है। बोलो, इसे कौन खरीदता है ?···अरे कोई बोली नहीं बोलता। आओ, दास, आगे बढ़ो। देखो नागरिको, इसके हाथ-पैर कैसे मजबूत हैं। अभी इसकी आयु ही क्या है, अभी तो यह तीस साल का भी नहीं हुआ है। कम-से-कम पचास वर्ष और जिएगा। इसकी कीमत है, एक निष्क प्रतिवर्ष। क्या यह भी कोई कीमत है। एक निष्क के बदले में सौ निष्क का काम करेगा यह।···अरे, अब भी सब चुप हैं ! यहाँ के लोग कितने हृदयहीन हैं, गुणी का कदर करना जानते ही नहीं।···अच्छा, समझा। केकय के नागरिकों की आँखें तो इन दासियों पर लगी हैं। देखो, इस दासी को देखो। कैसी रूप-यौवन सम्पन्न है ! चाँद का-सा मुखड़ा, काली घटा-से केश,

साक्षात् रति की प्रतिमा है। दासी, आगे बढ़ो, मुँह ऊपर को तो उठाओ। नागरिको, देखा इसका मुख, चन्द्रमा को मात करता है या नहीं ? और इसकी टाँगे, कदली स्तम्भ हैं या कुछ और ? यह सब कामों में प्रवीण है, भोजन बना सकती है, बस्त्र सी सकती है, नाचना जानती है, संगीत में प्रवीण है। इसका मूल्य है, केवल साठ निष्क। आगे बढ़ो, कौन इसे खरीदता है ?···अरे कितने नीरस हैं, केकय के लोग ! यदि इसी पण्य को चम्पा, पाटलिपुत्र या श्रावस्ती में ले जाता, तो कम-से-कम सौ निष्क में बिकता। पर यहाँ तो साठ निष्क में भी इसका कोई खरीदार नहीं।'

भीड़ को एकत्र देखकर अनेक यवन दण्डधर वहाँ आ गए थे। दासी के रूप और यौवन पर आकृष्ट होकर एक यवन आगे बढ़ा और दासी के कुच, नितम्ब, केश आदि को छूकर बोला, माल तो बुरा नहीं है। एथन्स के बाजार में यह पचास निष्क से कम में न बिकता। यवन दण्डधर की बात सुनकर श्रेष्ठी वक्रोदर ने कहा—'ये हैं पण्य के पारखी। केकय के लोग क्या खाकर इस पण्य की कदर करेंगे। क्यों सेनापति, यदि मैं यह पण्य यवन स्कन्धावार में ले चलूं, तो आपको कोई विप्रतिपत्ति तो न होगी ? अरे आप लोग राजा हैं, राजा। यह पण्य राजाओं के काम का है, केकय के लोग इसे क्या खरीदेंगे ! इस पण्य को राजगृह लाकर मैंने बड़ी भूल की। बीसों दास-दासी तो मार्ग की थकान से ही मर गए। इन्हें भोजन खिलाते-खिलाते तो मेरा दिवाला ही निकल गया। सस्ता-महँगा जैसा बिकेगा, बेचकर इनसे अपना पिण्ड छुड़ाऊँगा। क्या आज्ञा है, सेनापति ?'

'तुम इन सब को साथ लेकर यवन स्कन्धावार के बाहर मेरी प्रतीक्षा करो। सेनापति परिप्लस से अनुमति लेकर मैं तुम्हें अन्दर ले चलूंगा। पर एक शर्त रहेगी। यह दासी तुम्हें मुझे मुफ्त भेंट करनी पड़ेगी। स्वीकार है यह ?'

'मैं तो बिना मौत के मर जाऊँगा, माई बाप ! इसे मैंने चालीस निष्क में खरीदा था। सात महीने जो इसे खिलाया-पिलाया, उसका खर्च अलग। पर आप मुझ पर कृपालु हैं, सेनापति, आपको मैं इसे चालीस निष्क में ही दे दूंगा।'

'तो फिर तुम यवन स्कन्धावार में प्रवेश नहीं पा सकोगे।'

'अरे, आप तो नाराज हो गए, सेनापति ! चलिए एक दासी मुफ्त ही सही। मुझे आपकी शर्त स्वीकार है। पर बड़े सेनापति से मेरी सिफारिश अवश्य कर दीजिएगा। और देखिए, यह दासी भी आपने देखी ? कहिए, क्षत्रप के योग्य है या नहीं ? करभिका, आगे तो आ, अपने को निरावरण

तो कर दे। देखिए, सेनापति, इसके रूप को देखिए। कंचन का-सा रंग, रेशम के-से केश। ऐसी सुन्दरी आपने वाहीक देश में कहीं न देखी होगी। अरे, तूने अभी अपने को पूरी तरह से निरावरण नहीं किया। कोड़ों की मार को भूल गई, दासी होकर भी संकोच करती है। तुरन्त निरावरण हो जा, अन्यथा कोड़े मार-मारकर लहूलुहान कर दूँगा।...हाँ, अब ठीक है। देख लिया, सेनापति! है न यह क्षत्रप के लायक? वे तो इसके लिए एक सहस्र निष्क निछावर कर देंगे। नजदीक आइए, मेरी बात सुनिए। कान में सुनिए, हाँ इस तरह। इसकी जो कीमत क्षत्रप देंगे, उसमें आधी आपकी रही। है न स्वीकार, बस ना न कीजिए।...तो फिर चलिए, मैं अभी इस सारे पण्य को साथ लेकर स्कन्धावार के पूर्वी द्वार पर आपकी प्रतीक्षा करूँगा। इस राजगृह की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। लोग कहते थे, वाहीक देश की यह सब से समृद्ध नगरी है। यहाँ बड़े धनी लोग निवास करते हैं। पर यहाँ के नागरिकों ने एक कार्षापण तक का माल नहीं खरीदा। पर मुझे तो अपना पण्य बेचना ही है। यवन खरीदेंगे, तो उन्हीं को बेच दूँगा।'

बहुत-से दास-दासी बिकने के लिए आए हैं, यह जानकर यवन सैनिक बहुत प्रसन्न हुए। उस युग में यवन देश के सभी नगरों में दासों के पण्यहट्ट हुआ करते थे। वहाँ कोई भी सम्पन्न गृहस्थ ऐसा नहीं होता था, जिसके पास दो-चार दास-दासी न हों। यवन सैनिकों ने सोचा, हमें वाहीक देश में तो रहना ही है, क्यों न दास खरीद लें। इस देश में ऐसा मौका कब मिलता है, जब दास-दासी बिकने के लिए आये हों। सेनापति परिप्लस ने श्रेष्ठी वक्रोदर को यवन स्कन्धावार में आकर अपना पण्य प्रदर्शित करने की अनुमति प्रदान कर दी।

क्षत्रप फिलिप्पस राजगृह के राजप्रासाद में बैठे हुए पोरु से बातचीत कर रहे थे। तक्षशिला के वटुकों के उत्पात से वे बहुत उद्विग्न थे।

'क्यों केकयराज! राजगृह में यह कैसा उत्पात शुरू हुआ है? आपके सत्री विष्णुगुप्त को गिरफ्तार करने में अब तक समर्थ नहीं हुए। यह क्या बात है? मुझे तो प्रतीत होता है, कि आपके सत्री और राजपुरुष भी विद्रोहियों के साथ मिले हुए हैं। यदि आपने शीघ्र ही इस उत्पात का शमन न किया, तो मैं राजगृह के शासन-सूत्र को पूर्ण रूप से अपने हाथों में ले लूँगा। राज्य-प्रबन्ध के जो अधिकार आपको प्रदान किए गए थे, वे सब आपसे छीन लिए जाएँगे।'

'मेरे सत्री विद्रोहियों का पता करने के लिए पूर्ण रूप से प्रयत्नशील हैं। पर

इस देश में आचार्यों और श्रोत्रियों को बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वटुकों के शूली पर चढ़ाए जाने के कारण नागरिकों में बहुत असन्तोष है। आचार्य विष्णुगुप्त का वाहीक देश की जनता में बहुत आदर है। मुझे भय है कि उनके गिरफ्तार हो जाने पर नागरिक लोग विद्रोह न कर दें।'

'इसका अभिप्राय यह हुआ कि आप स्वयं विष्णुगुप्त की गिरफ्तारी के विरुद्ध हैं। कान खोलकर सुन लीजिए, केकयराज ! यदि कल प्रातः तक आपके दण्डधरों और सत्रियों ने इस राजद्रोही को न पकड़ लिया, तो यवन सैनिक राजगृह के शासन को अपने हाथों में ले लेंगे।'

'मैं पूरा-पूरा प्रयत्न करूँगा, क्षत्रप ! आपकी आज्ञा मेरे सिर-माथे पर है।'

एक यवन दण्डधर ने आकर सूचना दी कि सेनापति परिप्लस क्षत्रप से मिलना चाहते हैं।

'उन्हें यहीं आकर मिलने को कहो।' फिलिप्पस ने आज्ञा दी।

'क्षत्रप ! मगध का एक श्रेष्ठी दास-दासियों को बेचने के लिए राजगृह आया है। उसके पण्य में चार दासियाँ आपके योग्य हैं। करभिका नाम की एक दासी तो सचमुच गज़ब की है, क्षत्रप ! आप उसे देखकर प्रसन्न हो जाएँगे। वाहीक देश में आए हमें दो साल से अधिक हो गए, इस प्रकार का पण्य पहले कभी देखने को नहीं मिला। आज्ञा हो, तो इन दासियों को सेवा में उपस्थित करूँ ?' सेनापति परिप्लस ने कहा।

'वटुकों के इस उत्पात से मैं बहुत परेशान हो गया हूँ, परिप्लस ! पहले इन राजद्रोहियों की व्यवस्था कर लूँ। फिर किसी और बात पर ध्यान देने का अवसर मिलेगा।'

'आप भी किस चिन्ता में हैं, क्षत्रप ! ये निहत्थे वटुक यवन शासन का क्या बिगाड़ सकते हैं ? मैंने कल ही मुनादी करा दी थी कि यदि किसी नागरिक ने विद्रोह किया, तो राजगृह में आग लगा दी जाएगी और सब स्त्री-बच्चों को तलवार के घाट उतार दिया जाएगा। इस सूचना को सुनकर राजगृह के नागरिक बहुत भयभीत हो गए हैं। उनमें इतना साहस कहाँ है, जो यवनराज के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर सकें। विष्णुगुप्त और उसके साथियों को गिरफ्तार करने के लिए मैंने अपने सत्री और दण्डधर नियत कर दिए हैं। बहुत-से नागरिक भी उनकी सहायता कर रहे हैं। उन्हें धन का लोभ देकर मैंने अपने साथ मिला लिया है।'

'तो फिर देखें, वक्रोदर का यह पण्य कैसा है। कुछ मनोरंजन ही होगा।'

श्रेष्ठी वक्रोदर चार दासियों के साथ बाहर खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। उसे अन्दर बुला लिया गया। सात बार जमीन पर लेटकर और दाएँ हाथ को मस्तक से छूकर वक्रोदर ने क्षत्रप फिलिप्पस को प्रणाम किया। फिर दासियों को सामने कर उसने कहना शुरू किया—देखिए, क्षत्रप ! मेरा पण्य देखिए। सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में इनसे अधिक सुन्दर दासियाँ यदि कहीं मिल जाएँ, तो अपना सिर अपने हाथों से काटकर आपके चरणों में पेश कर दूँ। करभिका ! यवनराज को अपना शरीर तो दिखाओ, आगे पीछे सब तरह से। ये असली पारखी हैं। इन्होंने पसन्द कर लिया, तो तू निहाल हो जाओगी। कहोगी, किसी अच्छे भाग्यवान् श्रेष्ठी के पल्ले पड़ी थी। कहिए, यवनराज ! पसन्द है न यह?'

'कुछ शिल्प और कला भी जानती है, या केवल देखने-भर की है ?'

'करभिका ! यवनराज को अपना नृत्य दिखाओ। बड़े अद्भुत नृत्य जानती है यह। मयूरनृत्य, नागनृत्य, मुझे तो इसके नृत्यों के नाम तक भी याद नहीं रह पाते, यवनराज ! नंगी तलवार को मुँह में लेकर जब यह नृत्य करने लगती है, तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो साक्षात् दुर्गा मानव शरीर धारण करके रंगस्थली पर उतर आई हो।'

'तलवार को मुँह में लेकर नाचना, ऐसा तो हमने पहले कभी नहीं देखा।' परिप्लस ने कहा।

'तो अब अपनी आँखों से देख लीजिए, सेनापति ! हम श्रेष्ठी लोग अस्त्र-शस्त्र की कदर क्या जानें। हमें तो नंगी तलवार देखते ही भय लगने लगता है। आप अपनी तलवार दे दें, सेनापति ! आप इसके खड्गनृत्य को देखकर आश्चर्यचकित रह जाएँगे।'

परिप्लस ने अपनी तलवार करभिका को दे दी। उसने नंगी तलवार को मुँह से पकड़कर नृत्य करना शुरू किया। कैसा अद्भुत नृत्य था वह ! उसके हाथों और पैरों का संचालन, उसके हावभाव, उसके कटाक्ष, उसकी भ्रूभंगिमा, और इन सबके साथ लय देती हुई नंगी तलवार, जिसे वह अपने मुख से पकड़े हुए थी। करभिका के नृत्य को देखकर क्षत्रप फिलिप्पस और सेनापति परिप्लस मन्त्र-मुग्ध से रह गए। उसके नृत्य-कौशल के साथ-साथ वे देख रहे थे, उसके उरोजों को, उसके नितम्बों को और उसकी केशराशि को—जो उसके साथ-साथ स्वयं भी नाच रहे थे, उसके नृत्य में तान-सी मिलाते हुए।

करभिका के नृत्य के बीच में अकस्मात् बिजली-सी चमक उठी। उसने तलवार हाथ में ली, और फिलिप्पस पर इस प्रकार अचानक आक्रमण

कर दिया कि उसे सँभलने का मौका ही नहीं मिला। उसका सिर कटकर धड़ से अलग जा पड़ा।

इसी समय श्रेष्ठी वक्रोदर ने विद्युत् गति से परिप्लस पर आक्रमण कर दिया, और उसे नीचे गिरा दिया। परिप्लस उठने की कोशिश में ही था कि करभिका ने एक हाथ में ही उसका सफाया कर दिया। जो यवन दण्डधर राजप्रासाद के बाहर पहरा दे रहे थे, वे यह नहीं जान सके कि अन्दर क्या हो रहा है। केकयराज पोरु आश्चर्यचकित हुए इस दृश्य को देख रहे थे। श्रेष्ठी वक्रोदर ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'केकयराज की जय हो। केकय देश का पुराना सेनापति व्याघ्रपाद आपको प्रणाम करता है।' पोरु कुछ कहना ही चाहते थे कि वक्रोदर ने कहा—'आप तुरन्त यहाँ से चले जाइए, महाराज! यवन दण्डधरों को अभी इस काण्ड का पता नहीं चला है। कल सायंकाल मैं आपके दर्शन करूँगा।'

पोरु के चले जाने के दो मुहूर्त बाद श्रेष्ठी वक्रोदर दासियों के साथ राजप्रासाद से बाहर निकला। यवन दण्डधरों को उसने झुककर प्रणाम किया।

'क्षत्रप फिलिप्पस सचमुच राजाओं का हृदय रखते हैं, सेनापति! राजा हों, तो ऐसे हों। इन मामूली-सी दासियों के लिए उन्होंने तीन हजार निष्क दे दिए। किसका हृदय इतना उदार होता है, भाई! केकय के लोग तो इनके लिए दस-बीस कार्षापण भी दिवाल नहीं थे। जब तक सूर्य और चाँद आकाश में चमकते हैं, यवनों का राज इस देश में स्थिर रहेगा। लो भाई, अपना इनाम लो। मगध के श्रेष्ठी कभी झूठ नहीं बोलते। ये लो एक हजार सुवर्ण निष्क। गिन लो भाई! यदि एक भी कम हुआ, तो एक की जगह दस जुरमाना देने को तैयार हूँ। मैं साँझ को फिर आऊँगा, इन दासियों को साथ लेकर। आज की रात क्षत्रप क्रीड़ागृह में बिताएँगे। अब मैं चला, सेनापति! मेरा सब पण्य बिक गया। यवनराज की जय हो।'

एक सहस्र निष्क पाकर यवन दण्डधर प्रसन्न हो गए। वक्रोदर उन्हें प्रणाम करता हुआ और यवनराज की जय-जयकार करता हुआ राजप्रासाद से दूर निकल गया।

(३२)

केकय की स्वाधीनता

जिस समय करभिका खड्गनृत्य द्वारा क्षत्रप फिलिप्पस का मनोरंजन कर रही थी, कुमार चन्द्रगुप्त की सेना असिक्नी नदी को पार कर केकय जनपद की राजधानी राजगृह के समीप पहुँच गई थी। उसके कुछ अश्वारोही सैनिकों ने यवन स्कन्धावार को घेर लिया था, और उसपर आक्रमण शुरू कर दिया था।

श्रेष्ठी वक्रोदर के जिन दास-दासियों को यवन सैनिकों ने क्रय किया था, वे सब विकट योद्धा थे। चन्द्रगुप्त की सेना के पहुँचते ही उन्होंने यवन स्कन्धावार में मार-काट शुरू कर दी। दासवेशधारी तीन सौ सैनिकों के लिए यह सम्भव नहीं था, कि वे पचास हजार यवनों का मुकाबिला कर सकते। पर यवनों को स्वप्न में भी यह खयाल नहीं था कि उन पर इस प्रकार अचानक हमला हो जाएगा। वे बेसुध थे और अपने क्रीत दासों के गुण-दोषों का विवेचन करने में मग्न थे। अन्दर की मार-काट और बाहर के हमले से वे घबरा गए और यवन स्कन्धावार में भगदड़ मच गई। कतिपय यवन सैनिक भागे-भागे फिलिप्पस के राजप्रासाद में गए। पर वहाँ जाकर जो दृश्य उनकी आँखों के सामने आया, वह अत्यन्त वीभत्स था। फिलिप्पस और परिप्लस खून में लथपथ पड़े थे, और उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। क्षत्रप और सेनापति की हत्या की बात क्षण-भर में यवन स्कन्धावार में फैल गई। यवन सैनिक परेशान थे। नायक के अभाव में वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए थे।

इसी समय समाचार मिला कि केकय में विद्रोह हो गया है और आचार्य विष्णुगुप्त के वटुक राजगृह में आकर नागरिकों को भड़का रहे हैं। राजमार्ग और पण्यवीथियों में जगह-जगह नर-नारियों की भीड़ एकत्र हो गई थी, और वटुक उनके सामने व्याख्यान दे रहे थे। एक वटुक कह रहा था—

'नागरिको! केकयराज पोरु ने यवनराज की अधीनता स्वीकार कर जो भारी भूल की थी, आज उसका प्रतिशोध हो गया है। फिलिप्पस और परिप्लस अब इस संसार में नहीं हैं। अब केकय देश स्वतन्त्र है। क्या आपको ज्ञात है कि महाराज पोरु की इस भूल का प्रतिशोध किसने किया है? कठ गण की एक वीराङ्गना ने। वही देवी, जो आज सुबह श्रेष्ठी

वक्रोदर के पण्य के साथ यहाँ उपस्थित थी। हाँ, भाई, वही रूप-यौवन-सम्पन्ना दासी, जिसके लिए आप लोगों में से कोई पचास निष्क भी देने के लिए तैयार नहीं था। क्या कहा! वह तो एक दासी थी, पेशलरूपा गणिका। नहीं, भाई, वह वीर कठ जाति की एक वीराङ्गना है, जो आर्य-भूमि को यवनों की अधीनता से मुक्त कराने के लिए सिर पर कफन बाँधे घूम रही है। यवनों ने कठों की सांकल नगरी का ध्वंस कर दिया था। पर क्या कठ जाति कभी नष्ट हो सकती है? कठ लोग मृत्युञ्जय होते हैं, हँसते-खेलते अपने जीवन की बलि दे देना उनके लिए मामूली बात है। जो काम इस विशाल केकय जनपद के पुरुष नहीं कर सके, वह कठ गण की एक महिला ने कर दिखाया। आओ, नागरिको! हम उस वीर महिला के जय-जयकार से आकाश को गुँजा दें। बोलो, वीराङ्गना करभिका की जय! और जोर से कहो, वीराङ्गना करभिका की जय! पर भाइयो, अभी हमारा कार्य समाप्त नहीं हुआ। राजगृह में अभी बहुत-से यवन सैनिक विद्यमान हैं। यवनों के स्कन्धावार पर हमारी सेना ने आक्रमण कर दिया है। यवन शीघ्र ही परास्त हो जाएँगे। पर इस नगरी में जो बहुत-से यवन दण्डधर हैं, आप लोगों को उन्हें खतम करना है। किस प्रकार? ठीक वैसे ही जैसे कि कल यवनों ने हमारे दस बटुकों को तड़पा-तड़पाकर मारा था—वृक्षों पर लटकाकर, हाथों और पैरों में कीलें गाड़-कर। राजगृह में जहाँ-कहीं जो कोई भी यवन सैनिक या दण्डधर दिखाई पड़े, उसे पकड़ लो। उसे वृक्ष पर लटका दो, उसके हाथों और पैरों में लोहे की मोटी-मोटी कीलें ठोंक दो। एक काम और करना है, भाई! केकय देश अब स्वतन्त्र है, पर सिन्धु नदी के पार यवनों की बहुत बड़ी सेना डेरा डाले पड़ी है। ज्यों ही उसे फ़िलिप्पस की हत्या का समाचार मिलेगा, वह केकय देश पर आक्रमण कर देगी। हमें एक बार फिर यवनों के साथ युद्ध करना पड़ेगा। पिछली बार जब वितस्ता के तट पर यवनराज और केकयराज में युद्ध हुआ था, तो यवन विजयी हुए थे। पर इस बार? इस बार वे परास्त होंगे। पर इसके लिए हमें सैनिकों की आवश्यकता है। केकय देश वीरभूमि है। यहाँ वीरों की कमी नहीं है। आप हमारी सेना में भरती हों। आओ, नागरिको! वाहीक देश की स्वतन्त्रता के लिए, आर्य-भूमि के गौरव के लिए सेना में नाम लिखवाओ।'

'पर हमारे पास हथियार नहीं हैं। हमें यवनों ने निःशस्त्र कर दिया है। हम लोग सेना में भरती होकर क्या करेंगे?' एक नागरिक ने प्रश्न किया।

'इसकी चिन्ता न करो, भाई ! जानते हो, असिक्नी नदी को पार कर जिस सेना ने राजगृह के यवन स्कन्धावार को नष्ट किया है, उसमें कितने सैनिक हैं ? बीस हजार से भी अधिक। अस्सी हजार के लगभग अन्य सैनिक असिक्नी को पार कर तेजी के साथ आगे बढ़ रहे हैं; यवनों का सर्वनाश करने के लिए, आर्यभूमि को यवनों की अधीनता से मुक्त कराने के लिए। हमारे पास न धन की कमी है, और न अस्त्र-शस्त्रों की। हमारे पास कमी है, तो केवल सैनिकों की। वाहीक और पुष्करावती के विभिन्न प्रदेशों में जो यवन सेनाएँ अभी विद्यमान हैं, उनके सैनिकों की संख्या ढाई लाख से कम नहीं है। हमें उन सब को नष्ट करना है, हिन्दुकुश पर्वत-माला से परे ढकेल देना है। इसके लिए हमें सैनिक चाहिएँ। मैं आप सब को निमन्त्रित करता हूँ, देवी करभिका के पदचिह्नों पर चलने के लिए, आर्यभूमि की रक्षा के निमित्त अपना सर्वस्व समर्पित कर देने के लिए और वाहीक देश के गौरव की पुनःस्थापना के लिए। आइए, सेनापति व्याघ्र-पाद के झण्डे के नीचे एकत्र हो जाइए, और आचार्य विष्णुगुप्त के आदेशों का पालन कीजिए।'

वटुकों के व्याख्यानों से राजगृह में जोश फैल गया। नर-नारी उत्साह और उमंग में उन्मत्त हो गए। जो यवन जहाँ-कहीं दिखाई दिया, उसे पकड़ लिया गया। जगह-जगह यवनों की लाशें तड़पती हुई दिखाई देने लगीं। कितने ही यवन सैनिक और दण्डधर वृक्षों से लटका दिए गए, उनके हाथों और पैरों में कीलें गाड़ दी गईं। नागरिक लोग उन्हें तड़पता हुआ देखकर हँस रहे थे। बात-की-बात में राजगृह स्वतन्त्र हो गया था।

दो प्रहर रात बीत जाने पर आचार्य विष्णुगुप्त शिवमन्दिर के गर्भ-गृह में बैठे हुए इन्द्रदत्त, चन्द्रगुप्त, व्याडि, व्याघ्रपाद आदि के साथ बातें कर रहे थे।

'व्याघ्रपाद ने तो आज कमाल कर दिया। उसके साहस और कार्य-कुशलता की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। व्याघ्रपाद ! तुम्हें बधाई है।' व्याडि ने कहा।

'मैंने क्या किया, आचार्य ! कमाल तो करभिका ने किया। मैं क्या वर्णन करूँ, आचार्य ! जब यह कठ वीराङ्गना खड्ग को मुँह में लिए नृत्य कर रही थी, तो ऐसा प्रतीत होता था, मानो भगवती दुर्गा मानव तन धारण करके प्रकट हो गई हैं।' व्याघ्रपाद ने कहा।

'कठ लोग क्या नहीं कर सकते ! वे तो सचमुच मृत्युञ्जय होते हैं।' आचार्य विष्णुगुप्त ने कहा।

'पर अब हमें आगे के कार्यक्रम पर विचार करना चाहिए। सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर स्थित यवन सेना का सेनापति युथिदमस बड़ा वीर है। वह शीघ्र ही केकय देश पर आक्रमण करेगा।' आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने कथन को जारी रखा।

'हाँ, आचार्य ! हमें सेना द्वारा उसके मार्ग को रोकना होगा।'

'क्यों चन्द्रगुप्त ! स्रुघ्न देश से कितनी सेना एकत्र हुई है ?'

'एक लाख के लगभग, आचार्य !'

'यह संख्या तो बहुत कम है, कुमार ! जब तक हमारी सेना में कम-से-कम दो लाख सैनिक न हों, हम यवनों को परास्त नहीं कर सकते। क्यों व्याडि ! राजगृह में आज कितने नागरिकों ने सेना में नाम लिखवाया ?'

'दस हजार नागरिकों ने, आचार्य।'

'पर यह तो पर्याप्त नहीं है। क्यों चन्द्रगुप्त ! कुलूत, काश्मीर और पार्स देशों में जो दूत हमने भेजे थे, उनका कोई समाचार मिला ?'

'नहीं, आचार्य ! अभी वहाँ से कोई समाचार नहीं मिला।'

'तो अभी गृह-कपोतों को कुलूत और काश्मीर भेज दो। उन द्वारा जो पत्र भेजो, उसमें लिख दो कि जो भी सैनिक सहायता प्राप्त हो सके, उसे लेकर तुरन्त वितस्ता-तट पर पहुँच जाओ।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

अभी इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि एक वटुक ने आकर सूचना दी—'केकयराज पोरु आचार्य के दर्शन के लिए बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'उन्हें यहीं ले आओ।' आचार्य विष्णुगुप्त ने आदेश दिया।

'पोरु आचार्य के चरणों में प्रणाम निवेदन करता है।' केकयराज ने सिर झुकाकर कहा।

'चिरजीवी हों, केकयराज ! तुम्हारे राजकुल द्वारा आर्यभूमि का उत्कर्ष हो।' आचार्य ने आशीर्वाद दिया।

'मुझे अब चिरजीवी होने की इच्छा नहीं है, आचार्य ! यवनराज का साथ देकर जो भारी पाप मैंने किया था, वह हर समय शूल की तरह मेरे हृदय में चुभता रहता है। अब तो केवल यह आशीर्वाद दीजिए, आचार्य ! कि मेरे मन को सान्त्वना मिले और जीवन के शेष दिन मैं शान्ति से गुजार सकूँ।'

'अपने हृदय से क्लैव्य-भावना को दूर कर दो, केकयराज ! अभी मुझे तुमसे बहुत काम लेना है। केकय की स्वतन्त्रता के साथ ही हमारे

कार्य की इतिश्री नहीं हो गई है। अभी हमें सम्पूर्ण आर्यभूमि को यवनों की अधीनता से मुक्त करना है, और फिर मगध के पतित राजकुल का विनाश कर हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस भारत देश को एक शासन की अधीनता में लाना है, ताकि विदेशी यवन इस आर्यभूमि की ओर आँख उठाकर भी न देख सकें। इस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुझे तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता है, केकयराज!'

'पर मैं तो जीवन से बिलकुल थक गया हूँ, आचार्य! आज उस कठ वीराङ्गना को खड्गनृत्य करते हुए देखकर मैं क्या सोच रहा था, आचार्य! जो कार्य एक रमणी ने कर दिखाया, क्या वह मैं नहीं कर सकता था? कितनी ही बार फिलिप्पस से मेरी एकान्त में भेंट हुई। उसने सदा मेरा अपमान किया। पर मेरा खून तो हिम के समान ठण्डा पड़ गया है। मैं सोचता हूँ, महाराज भरत का उष्ण रक्त मेरी नसों में आकर क्यों इतना निर्वीर्य हो गया? क्यों न मैंने उस नीच फिलिप्पस का गला घोंट दिया? यही तो होता कि यवन दण्डधर मुझे मार देते, मेरे शरीर को खण्ड-खण्ड कर देते। पर नीच यवनों द्वारा किए गए अपमान का तो मैं प्रतिशोध कर देता। अब तो मुझे कोई ऐसा मार्ग दिखाइए, आचार्य! जिससे मेरे हृदय को शान्ति मिले।'

'तो फिर तुम उस मार्ग को ग्रहण करो, केकयराज! जिसे आर्य राजा अनादिकाल से अपनाते रहे हैं। कुमार पर्वतक के हाथों में राजपाट को सौंपकर तुम वन का आश्रय लो। मैंने सुना है, पर्वतक वीर है, साहसी है और साथ ही महत्त्वाकांक्षी भी है। वह मेरे उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य सहायक हो सकेगा।'

'मुझे यह स्वीकार है, आचार्य!'

'तो उसे कहिए, कल सुबह वह मुझसे आकर मिले।'

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आचार्य!'

'नहीं, पोरु! पर्वतक को यहाँ आने का कष्ट न दो। कल तुम सत्र केकय जनपद के राजप्रासाद में फिर से प्रवेश करोगे। पर पहले यवनों द्वारा अपवित्र हुए आर्यप्रासाद को शुद्ध करना होगा। अभी जाकर व्यवस्था करो कि कल प्रातः ही राजप्रासाद में एक महान् यज्ञ हो। प्रजा-जन को इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करो। मैं स्वयं इस यज्ञ का पौरोहित्य करूँगा। यज्ञ की समाप्ति पर पर्वतक के राज्याभिषेक की घोषणा भी कर देना।'

'जो आज्ञा, आचार्य!'

आचार्य विष्णुगुप्त को प्रणाम कर पोरु वहाँ से चला गया।

'कहो, व्याडि ! गान्धार जनपद की रक्षा का सब प्रबन्ध तुमने ठीक कर लिया है न? यवन सेनापति युथिदमस सिन्धु नदी को पार कर पहले गान्धार पर ही आक्रमण करेगा। इस बार यवन सेना सिन्धु के इस पार न उतर सके, इस बात की व्यवस्था करनी होगी।' विष्णुगुप्त ने कहा।

'जो सेनाएँ स्रुघ्न देश से कुमार चन्द्रगुप्त के साथ आई हैं, उन सब को सिन्धु के तट पर पहुँचने का आदेश देना होगा, आचार्य ! इस बीच मे हम लोग केकय, मद्रक, अभिसार आदि में नए सैनिकों को भरती करने का कार्य जारी रखेंगे।' व्याडि ने उत्तर दिया।

'तो फिर, चन्द्रगुप्त ! तुम कल सुबह ही पश्चिम की ओर प्रस्थान कर दो।'

'पर कुमार चन्द्रगुप्त तो इस समय कहीं चले गए हैं, आचार्य !'

'जरा देखो तो व्याडि ! चन्द्रगुप्त कहाँ है?'

'वह तो शिवमन्दिर के पिछले प्राङ्गण में देवी करभिका के साथ बात-चीत में लीन है, आचार्य !'

'ठीक है, भाई ! चन्द्रगुप्त और करभिका दोनों वीर हैं, दोनों में अनुपम साहस है। मणि का काञ्चन के साथ संयोग उचित ही है। उन्हें आपस में बातें करने दो। सुबह चन्द्रगुप्त को मेरा यह आदेश पहुँचा देना कि अविलम्ब पश्चिम की ओर प्रस्थान करना है।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

(३३)

यवनों से विवाहित आर्य युवतियाँ

अगले दिन प्रातःकाल आचार्य विष्णुगुप्त नित्यकर्मों से निवृत्त हो जब शिवमन्दिर में पूजा के लिए आए, तो एक वटुक ने आकर सूचना दी—'बहुत-सी रमणियाँ आपसे भेंट करने के लिए प्रतीक्षा कर रही हैं।'

'उन्हें मुझसे क्या कार्य है?'

'मैंने उनसे बहुत पूछा, आचार्य ! पर वे कुछ भी नहीं बतातीं। उनके मुखमण्डल उदास हैं, और नयनों से अजस्र अश्रुधाराएँ बह रही हैं।'

'उन्हें यहीं बुला लाओ।'

पचास के लगभग युवतियों ने आकर आचार्य विष्णुगुप्त को प्रणाम किया। सबको बैठ जाने का आदेश देकर विष्णुगुप्त ने प्रश्न किया—'देवियो ! आपने मेरे पास आने का कष्ट किसलिए किया है ?'

'आचार्य ! पातानप्रस्थ में यवन सैनिकों के साथ आर्य महिलाओं का सामूहिक विवाह हुआ था, यह तो आपने सुना ही होगा ?'

'हाँ, मुझे ज्ञात है।'

'हम सब उन स्त्रियों में सम्मिलित थीं। केकयराज पोरु और गान्धार-राज आम्भि के प्रयत्न से बहुत-सी वाहीक स्त्रियाँ इन सामूहिक विवाहों के लिए पातानप्रस्थ ले जाई गई थीं। हम भी उन्हीं में थीं। यवन सैनिकों के साथ हमारा विवाह कर दिया गया था।'

'अच्छा, तुम सब वे अभागिनी देवियाँ हो, मूक दासियों के समान यवनों के साथ जिनका गठ-बन्धन कर दिया गया था।'

'हाँ, आचार्य ! जब हमारे पति सेनापति परिप्लस के साथ राजगृह के यवन स्कन्धावार में भेज दिए गए, तो हम भी उनके साथ यहाँ चली आईं। अब केकय देश की यवन सेना नष्ट हो गई है। मेरे पति गिरफ्तार हो गए हैं, और ये जो बहुत-सी स्त्रियाँ रो रही हैं इनके पति कुमार चन्द्रगुप्त या श्रेष्ठी वेशधारी व्याघ्रपाद के सैनिकों द्वारा तलवार के घाट उतार दिए गए हैं। ये विधवा हो गई हैं।' एक स्त्री ने कहा।

'मुझे तुम सब से हार्दिक सहानुभूति है।'

'पर आचार्य ! क्या यह उचित हुआ है ? यवनराज सिकन्दर ने एक महान् उद्देश्य को सम्मुख रखकर यवनों और आर्यों में चिर एकता की स्थापना का प्रयत्न किया था। यवनों के साथ हमारा विवाह किया गया था, यवनों और आर्यों के भेद को मिटा देने के लिए, एक ऐसी संस्कृति का प्रादुर्भाव करने के लिए, जो आर्यों और यवनों के सम्मिश्रण द्वारा ही उत्पन्न हो सकती है। आपने केकय और गान्धार से यवनों का उच्छेद कर दिया ! अब हमारा क्या बनेगा ?'

'यवनराज सिकन्दर ने यवनों के उत्कर्ष के लिए तुम सब की बलि दी थी। क्या तुमने स्वेच्छापूर्वक इन विवाह-सम्बन्धों को स्वीकार किया था ? क्या तुम्हारे माता-पिता इससे सहमत थे ? पोरु और आम्भि के सैनिक तुम्हें पकड़कर ले गए, सिकन्दर की प्रसन्नता के निमित्त तुम्हारी बलि देने के लिए। इस प्रकार के विवाहों को मैं आर्य-मर्यादा के अनुकूल नहीं मानता।'

'तो क्या आप मनुष्य मात्र को एक नहीं मानते ? यवनों और आर्यों

में जो यह भेद है, वह केवल भाषा, धर्म और संस्कृति की भिन्नता के कारण ही तो है। विभिन्न देशों में निवास करने के कारण ही उनमें इस भेद का विकास हो गया है। पर मनुष्यता के नाते सब लोग एक हैं, आचार्य! हमारे यवन पति हमसे प्रेम करते थे, हमें वे वाहीक देश के पुरुषों के समान ही मनुष्य प्रतीत होते थे।'

'यह ठीक है, देवि! पर क्या एक विदेशी और विधर्मी सेना का इस प्रकार वाहीक देश पर आक्रमण करना और उसे अपनी अधीनता में ले आना उचित था? यवनों ने वाहीक देश के जनपदों की विजय की। क्या इस देश के हित और कल्याण के लिए? नहीं, अपने जातीय उत्कर्ष के लिए। यवनों द्वारा वाहीक देश की पराजय आर्य-जाति के लिए घोर अपमान की बात थी। आज हमने उस अपमान का प्रतिशोध कर दिया है। गान्धार और केकय अब स्वतन्त्र हैं। तुम आर्य-महिलाएँ हो, तुम्हें तो आर्यों की इस विजय से प्रसन्न होना चाहिए।'

'पर हम सब तो लुट गई हैं, आचार्य! हमारा सौभाग्य, सुख और समृद्धि सब यवनों के साथ बँधी हुई थी। आज तो हम पथ की भिखारिणी हो गई हैं, आचार्य!'

'यवनों के साथ आर्य देवियों के विवाह में यवनराज सिकन्दर का यही तो प्रयोजन था। वह इस देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर देना चाहता था, जो आर्यों के मुकाबिले में यवनों के उत्कर्ष में हर्ष अनुभव करता हो। तुम्हारी सन्तान में यवनों का रक्त होता, वे अपने यवन रक्त को अभिमान की बात समझते, क्योंकि यवन इस देश के शासक जो होते। सिकन्दर का उद्देश्य न विश्व-संस्कृति का प्रादुर्भाव करना था, और न मनुष्य-मनुष्य के भेद को नष्ट करना। वह वाहीक देश में अपने आधिपत्य को चिरस्थायी बनाना चाहता था। इसीलिए उसने इन विवाहों की व्यवस्था की थी। तुम सब आज यवनों की पराजय से दुखी हो, क्योंकि तुम यवनों की पत्नियाँ हो। तुम्हें तभी प्रसन्नता होती, जब यवन विजयी होते, जब उनका शासन इस देश पर स्थिर रहता। तुम्हारी सन्तान भी यही अनुभव करती। यही बात तो सिकन्दर को अभीष्ट थी। पर देवियो, क्या तुम यह नहीं समझतीं कि देश व्यक्ति से अधिक ऊँचा होता है। देश के हित और उत्कर्ष के लिए वैयक्तिक हितों को कुर्बान करना पड़ता है।'

'यह तो ठीक है, आचार्य! पर यवनों से विवाह हो जाने के बाद हम आर्य रह ही कहाँ गई हैं? पत्नी और पति के हित एक होते हैं, वे परस्पर मिलकर एक हो जाते हैं, उनमें भिन्नता रह ही नहीं जाती।'

'इसीलिए तो सिकन्दर ने यवनों के साथ तुम्हारे विवाहों की व्यवस्था की थी। पर देवियो ! तुम आर्य-कन्याएँ हो, आर्य-जाति का पवित्र रक्त तुम्हारी नसों में प्रवाहित हो रहा है। वाहीक देश के अन्न और जल से तुम्हारा पालन हुआ है। क्या विवाह-संस्कार सचमुच ऐसी बात है, जिसके कारण तुम्हारे हृदय से आर्य-जाति का गौरव ही मिट गया? तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि आज तुम्हारी मातृभूमि स्वतन्त्र है। राजनीतिक दासता का जो कलंक उसके माथे पर लगा था, वह अब मिट गया है।'

'पर यह वैधव्य जीवन तो बड़ा कष्टदायक है, आचार्य ! क्या आप हमारे दुःख को अनुभव नहीं करते ?'

'मैं मानता हूँ कि अपने पतियों की मृत्यु और गिरफ्तारी से तुम्हारे हृदय को कष्ट पहुँचा है। पर यह तुम्हारा वैयक्तिक दुःख है, और समाज तथा देश के हित के सम्मुख मैं व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं देता।'

'पर क्या आप हमारे दुःख को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं कर सकते, आचार्य !'

'यवनों के साथ तुम्हारा जो विवाह हुआ था, उसे मैं आर्य-मर्यादा के अनुकूल नहीं मानता। इस प्रकार के विवाह को 'राक्षस विवाह' कहा जाता है। जब न माता-पिता सहमत हों, न कन्या सहमत हो और कन्या को जबर्दस्ती ले जाकर उसका किसी से विवाह कर दिया जाए, तो उसे राक्षस विवाह कहते हैं। इस प्रकार के विवाह का मोक्ष (तलाक) शास्त्रों द्वारा विहित है। तुम स्वेच्छापूर्वक इस प्रकार के विवाह से छुटकारा पा सकती हो, और तुममें से जिनके पति मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं, उनके विवाह का मोक्ष तो भगवान् शिव ने स्वयं कर दिया है।'

'तो क्या ये विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती हैं, आचार्य ?'

'क्यों नहीं, मोक्ष के बाद विवाह के मार्ग में कोई बाधा नहीं रह जाती।'

'पर क्या आर्य लोग हमसे विवाह के लिए उद्यत हो जाएँगे ?'

'क्यों नहीं, इस प्रकार के विवाह शास्त्रसम्मत हैं। पर प्रत्येक कार्य विधि के अनुसार होना चाहिए। पहले तुम्हें धर्मस्थ (धर्मस्थीय न्यायालय के न्यायाधीश) से अनुमति प्राप्त करनी होगी। धर्मस्थ तुम्हें इसके लिए अनुमति प्रदान कर देंगे, क्योंकि इस प्रकार के विवाह से मोक्ष धर्म के अनुकूल है। उनसे अनुमति प्राप्त कर तुम पुनर्विवाह कर सकोगी।'

'पर आचार्य ! वाहीक देश के आर्य युवक विवाह के मामले में बहुत संकीर्ण विचार रखते हैं। जिन स्त्रियों का पहले यवनों से विवाह हो चुका

हो, क्या वे उनसे विवाह करने के लिए उद्यत हो जाएँगे ?'

'तुम इसकी चिन्ता न करो। तुम अभी युवतियाँ हों, तुम्हारा तीर्थ-काल अभी समाप्त नहीं हुआ। तीर्थवती स्त्री के लिए अविवाहित रहना अत्यन्त अनुचित है। मैं स्वयं तुम्हारे विवाह की व्यवस्था करूँगा। हमारी सेना में ऐसे वीर आर्य-सैनिकों की कमी नहीं है, जो तुमसे विवाह करने के लिए तैयार हो जाएँगे'।'

'आपके इस आश्वासन से हमारी चिन्ता दूर हुई, आचार्य !'

'तुम अभी भी आर्य हो, तुम्हें अपने आर्य-रक्त का अभिमान होना चाहिए। देश और जाति के लिए मनुष्य को कितनी कुर्बानी करनी पड़ती है। देवी करभिका का नाम तो तुमने सुना ही होगा। रूप-यौवन-सम्पन्ना दासी का भेस बनाकर वह राजगृह के राजमार्ग पर खड़ी हुई। निरावरण होकर उसने अपने रूप का प्रदर्शन किया। फिर वह यवनों के स्कन्धावार में गई। फिलिप्पस के सम्मुख उसने नृत्य किया। किस लिए ? आर्य-जाति के गौरव के लिए, आर्यभूमि की स्वतन्त्रता के लिए। तुम सब की नसों में भी वही आर्य-रक्त प्रवाहित है, जो देवी करभिका में है। तुम भी उसी के मार्ग का अनुसरण करो। हमें अभी बहुत काम करना है। आर्यभूमि अभी पूर्णतया यवनों के आधिपत्य से मुक्त नहीं हुई है। तुम यवनों की भाषा, धर्म, संस्कृति आदि से कुछ परिचय प्राप्त कर चुकी हो। तुम आर्यभूमि की स्वतन्त्रता के लिए बहुत उपयोगी कार्य कर सकती हो। यह भूल जाओ कि यवनों के साथ कभी तुम्हारा विवाह हुआ था। उस सामूहिक विवाह को मैं विवाह समझता ही नहीं। वह तुम्हारा अपमान था, घोर अपमान। एक नृशंस राजा की आज्ञा से सैकड़ों किशोरवय बालिकाओं को उनके घरों से उड़ा ले जाना और मूक पशुओं के समान एक पंक्ति में खड़ा कर विधर्मी और विदेशी सैनिकों के साथ उनका गठबन्धन कर देना—यह कहाँ का विवाह है ! तुम सब को कुर्बान किया गया था, एक महत्त्वाकांक्षी विजेता की गूढ़ योजना के लिए। तुम्हारा सौभाग्य है, जो आज तुम स्वतन्त्र हो। धर्मस्थ से अनुमति लेकर तुम आर्य-युवकों से विवाह करो। मैं तुम्हारी सहायता के लिए उद्यत हूँ। मुझे विश्वास है कि वाहीक देश के वीर आर्य युवक तुम्हें अपनाने में संकोच नहीं करेंगे। पर अभी विवाह का उपयुक्त समय नहीं है। क्या तुम देवी करभिका के मार्ग का अनुसरण करने के लिए तैयार हो ? कठ जाति के अपमान का करभिका ने कितनी सुन्दर रीति से प्रतिशोध किया ? तुम भी अपने अपमान का प्रतिशोध करो, यवनों के शासन का अन्त करने के पुनीत कार्य में सहायक होकर।

क्या तुम इसके लिए तैयार हो ?'

'मैं इसके लिए तैयार हूँ, आचार्य !' एक देवी ने उत्तर दिया।

'और तुम सब ?'

'हम सब भी आपके आदेश का पालन करने के लिए उद्यत हैं, आचार्य !' सब ने एक साथ उत्तर दिया।

'मुझे आर्य युवतियों से यही आशा थी।'

आचार्य विष्णुगुप्त ने ताली बजाई, और एक वटुक उनकी सेवा में उपस्थित हो गया।

'जाओ, शारङ्गरव ! व्याडि को तो बुला लाओ।'

'व्याडि आचार्य के चरणों में प्रणाम निवेदन करता है।' व्याडि ने आकर कहा।

'देखो, व्याडि ! ये सब आर्य युवतियाँ हमारे कार्य में सहयोग देने को तैयार हैं। ये तुम्हारे गूढ़पुरुषों के साथ मिलकर कार्य करेंगी। यवन भाषा से ये परिचित हैं। इन्हें अभी से अपने कार्य में लगा लो। इनके दुःख का अन्त करने का यही सर्वोत्तम उपाय है।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'ठहरो, व्याडि ! जरा करभिका को तो बुलाओ। इन देवियों से उस वीर महिला का परिचय तो करा दूँ।'

'करभिका और चन्द्रगुप्त की बातें तो खतंम होने में ही नहीं आतीं, आचार्य ! रात को वे एक क्षण के लिए भी नहीं सोए। अभी तक मन्दिर के पिछवाड़े में खड़े-खड़े बातें कर रहे हैं।'

'उन्हें बातें करने दो, व्याडि ! आर्य युवकों और युवतियों के प्रणय का यही ढंग है। क्यों व्याडि, क्या तुमने भी कभी किसी से प्रणय किया था ?'

'अब तो बूढ़ा हो गया हूँ, आचार्य ! पर कभी मैं भी युवा था। अब से कोई तीस साल पहले की बात है, जब देवी तिलोत्तमा से पहले-पहल मेरी भेंट हुई थी। सारी रात बातों में बीत गई, सुबह कब हुई और कब दिन ढल गया, इसका भी कुछ पता न चला। भूख, प्यास और नींद—प्रणय में किसी की भी सुध नहीं रह जाती, आचार्य ! मैं भी भुक्तभोगी हूँ।'

'तो इनको भी प्रणय का आस्वाद लेने दो, व्याडि ! चन्द्रगुप्त और करभिका की जोड़ी कैसी उत्तम है !'

'पर आज सुबह ही तो सिन्धुतट के लिए प्रस्थान करना है, आचार्य !'

'एक प्रहर की देर ही सही, व्याडि ! प्रणय में अद्भुत शक्ति होती है। प्रणय की सुधा का पान कर सच्चे वीर और भी अधिक वीर बन जाते हैं। मुझे निश्चय है कि करभिका का प्रेम चन्द्रगुप्त को मार्गभ्रष्ट नहीं करेगा, उससे प्रेरणा पाकर वह और भी अधिक शक्तिशाली हो जाएगा।'

इसी समय चन्द्रगुप्त और करभिका आचार्य विष्णुगुप्त की सेवा में उपस्थित हुए। आचार्य के चरण छूकर चन्द्रगुप्त ने कहा—'आपका आदेश मिल गया था, आचार्य ! मैं सिन्धुतट की ओर प्रस्थान करने के लिए तैयार हूँ। पर एक बड़ी कठिनाई पेश आ रही है, आचार्य !'

'वह क्या कठिनाई है, कुमार !' विष्णुगुप्त ने ईषत् स्मित के साथ कहा।

'करभिका भी मेरे साथ युद्धक्षेत्र में जाना चाहती है।'

'यह किस लिए ?'

'यह इसी से पूछिए, आचार्य !'

'क्यों, करभिका ! तुम क्यों चन्द्रगुप्त के साथ जाना चाहती हो ?'

'रणक्षेत्र में यवनों का संहार करने के लिए, सांकल नगरी के विध्वंस का बदला लेने के लिए।'

'क्या इसके लिए चन्द्रगुप्त पर्याप्त नहीं है ?'

'हैं क्यों नहीं, आचार्य ! पर कठ महिलाएँ क्या पुरुषों से कम वीर होती हैं ?'

'कौन कहता है कि कठ महिलाएँ वीरता में किसी से भी न्यून होती हैं। पर मैं तो तुमसे कुछ और काम लेना चाहता हूँ, करभिका ! इन आर्य महिलाओं को देखो, तुम्हें इन्हें मार्ग प्रदर्शित करना है। यवन राज्य को भारत में स्थिर रखने के लिए सिकन्दर ने इन देवियों की बलि दी थी। अब ये यवनों से आर्यभूमि को स्वतन्त्र कराने के लिए अपने जीवन की आहुति देने को तैयार हैं। तुम्हारे सिवा कौन इनका नेतृत्व करेगा ?'

'पर मुझे तो भय है, आचार्य ! कि मेरे अभाव में आपके ये वीर सेनापति रणक्षेत्र में एक क्षण भी नहीं टिक सकेंगे। युथिदमस को परास्त करने के लिए ही तो आप इन्हें सिन्धुतट पर भेज रहे हैं न ?'

'हाँ, करभिका !'

'और इनके बिना आर्य सेना सर्वथा पंगु रह जाएगी ?'

'बिलकुल ठीक, करभिका !'

'और मेरे बिना ये बिलकुल अपंग हो जाएँगे, आचार्य !

'तो बात यहाँ तक बढ़ गई है, करभिका ! एक रात में ही तुम दोनों एक-दूसरे के हो गए ?'

'कठ स्त्रियाँ किसी के सम्मुख यों ही सिर नहीं झुका देतीं। हम भगवती दुर्गा की उपासिका हैं, आचार्य ! केवल उसी पुरुष को हम अपना भर्ता स्वीकार करती हैं, जो हमारी अपेक्षा अधिक वीर हो, जो हमारे दर्प का व्यपोहन करने में समर्थ हो। कुमार चन्द्रगुप्त सचमुच वीर हैं। उनकी प्रणय-भिक्षा मेरे लिए गर्व की बात है, आचार्य !'

'तो तुमने चन्द्रगुप्त को अपना भर्ता स्वीकार कर लिया है ?'

'जी हाँ, आचार्य !'

'पर आर्य-मर्यादा के अनुसार तुम्हें पहले अपने माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी, करभिका !'

'मेरे माता-पिता तो यवनों के साथ युद्ध करते हुए काम आ गए थे, आचार्य !'

'तुम्हें इस कुमार के कुल और अभिजन का भी कुछ ज्ञान है ?'

'इसकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं, आचार्य ! ये वीर हैं, साहसी हैं, और महत्त्वाकांक्षी हैं। मेरे लिए यही पर्याप्त है। कठ स्त्रियाँ केवल वीरता और शौर्य को ही महत्त्व देती हैं, आचार्य !'

'कन्यादान का हमारे शास्त्रों में बड़ा पुण्य लिखा है, करभिका ! क्या तुम मेरी पुत्री बनना स्वीकार करोगी, जिससे योग्य पात्र को तुम्हें प्रदान कर मैं भी इस पुण्य का भागी बन सकूं ?'

'यह मेरा सौभाग्य होगा, आचार्य ! आपको देखकर मुझे अपने दिवंगत पिता का स्मरण हो आता है। वे भी आप जैसे ही त्रयी और आन्वीक्षकी के पण्डित थे, और राजशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान्। यवनों का आक्रमण होने पर उन्होंने शास्त्र को तिलाञ्जलि देकर शस्त्र को ग्रहण कर लिया था, और यवनों से लड़ते-लड़ते ही वे वीरगति को प्राप्त हुए थे।'

'तो फिर इस पुण्य की प्राप्ति का अवसर मुझे कब दोगी, करभिका ?'

'जब आर्यभूमि में यवनों का निशान तक भी शेष नहीं रह जाएगा, आचार्य ! जब आपका महान् उद्देश्य पूर्ण हो जाएगा, और हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण यह भारत-भूमि एक शासन में आ जाएगी। उस समय तक मैं कुमार चन्द्रगुप्त के साथ-साथ रहूँगी, उनके हृदय में स्फूर्ति को उत्पन्न करने के लिए, उन्हें कर्तव्य-पालन की निरन्तर

प्रेरणा देते रहने के लिए।'

'तुम्हारे कारण वह अपने कर्तव्य में शिथिलता तो न आने देगा?'

'यदि ऐसा हुआ, तो मैं अपनी छाती में छुरी भोंक लूंगी। कठ स्त्रियाँ मृत्यु से नहीं डरा करतीं, आचार्य! यम देवता की शरण प्राप्त कर उन्हें हर्ष और गौरव अनुभव होता है।'

'साधु, करभिका, साधु! तुम सच्ची आर्य नारी हो। तुम्हारी जैसी पुत्री पाकर मुझे गर्व है।'

(३४)

वाहीक देश में विजय-महोत्सव

विपाशा (व्यास) से कुभा (काबुल) तक सम्पूर्ण आर्यभूमि में विजय-उत्सव मनाने की तैयारियाँ की जा रही थीं। यवन लोग परास्त हो गए थे, और आर्य नर-नारियों के हृदय प्रसन्नता के मारे उछल रहे थे। राजगृह के शिवमन्दिर के विशाल प्राङ्गण में एक सभामण्डप का निर्माण किया गया था, जिसमें एक ऊँचे आसन पर आचार्य विष्णुगुप्त विराजमान थे। इन्द्रदत्त, व्याडि, निपुणक आदि उनके सामने अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए थे।

'कहो, व्याडि, सिन्धुतट से कोई समाचार आया?' विष्णुगुप्त ने प्रश्न किया।

'हाँ, आचार्य! बावेरु (बैबिलोन) में सिकन्दर की मृत्यु हो गई है। मालवगण के साथ युद्ध करते हुए यवनराज की छाती पर बरछी का जो घाव लगा था, वह घातक सिद्ध हुआ। यवन चिकित्सा में बहुत प्रवीण माने जाते हैं, पर अपने विश्वविजयी सम्राट् के इस घाव का इलाज करने में वे असमर्थ रहे। सुना है, अन्त समय में सिकन्दर बहुत व्याकुल था।'

'यह क्यों, व्याडि!'

'अपने साम्राज्य की दीवारों को ढहता हुआ देखकर। बावेरु पहुँचने से पहले ही उसे यह समाचार मिल गया था कि क्षत्रप फिलिप्पस की हत्या हो गई है, और वाहीक देश में सर्वत्र क्रान्ति का ज्वालामुखी फूट पड़ा है। फिलिप्पस की मृत्यु का समाचार मिलते ही सिकन्दर ने युथिदमस को वाहीक देश का भी क्षत्रप नियत कर दिया था, और कुछ अश्वारोहियों को यह आदेश देकर उसके पास भेजा था कि जिस किसी प्रकार भी सम्भव हो,

विद्रोही सेनाओं को सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर न उतरने दो। सिकन्दर ने यह भी सूचित किया था, कि एक बड़ी यवन सेना शीघ्र ही युथिदमस की सहायता के लिए भेजी जा रही है।'

'सिकन्दर की मृत्यु का मुझे दुःख है, व्याडि ! वह सचमुच वीर था। उसकी दिग्विजय इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगी। मुझे इस बात का और भी अधिक दुःख है कि अपने साम्राज्य का विनाश वह अपनी आँखों से नहीं देख सका। आर्यों की वीरता का कुछ परिचय उसे कठों, मालवों और आग्रेयों के युद्धों से मिल गया था। पर आर्यों में कितना जातीय अभिमान है, उनमें कितनी संगठन-शक्ति है, इसका परिचय उसे नहीं मिल सका। अच्छा, व्याडि ! यह तो बताओ कि कुमार चन्द्रगुप्त की सेना ने सिन्धुतट पर पहुँचकर क्या किया ?'

'स्रुघ्न देश के सैनिक बड़े वीर हैं, आचार्य ! गान्धार जनपद को पार कर सिन्धुतट तक पहुँचने में उन्हें कोई कठिनता नहीं हुई। इस बीच में कुलूत और काश्मीर की सेनाएँ भी वितस्ता के तट पर आ गई थीं। वे भी स्रुघ्न की सेनाओं के साथ ही सिन्धुतट पर पहुँच गईं। युथिदमस की सेनाएँ सिन्धु नदी के परले पार डेरा डाले पड़ी थीं। यवन क्षत्रप की सेना में दो लाख से भी अधिक सैनिक थे। पुष्करावती, हरउवती, बाख्त्री आदि के भी बहुत-से भृत सैनिक यवनों की सहायता के लिए आ गए थे। यवनों की युद्ध-नीति यह थी, कि हमारी सेना सिन्धु नदी के पार न उतर सके। सिन्धु के सब घाटों पर यवनों का पहरा था, और हजारों छोटी-बड़ी नौकाएँ हमारे सैनिकों का मार्ग रोकने के लिए तैनात थीं। पर सिन्धु नदी को पार करने में हमारी सेना ने जो वीरता प्रदर्शित की, उसका शब्दों द्वारा वर्णन कर सकना असम्भव है, आचार्य ! हमारे सैनिक इस तरह से लड़ रहे थे, मानो वे भैरव और रुद्र के अवतार हों। इस युद्ध में करभिका ने तो कमाल ही कर दिया, आचार्य ! प्रतीत होता था, साक्षात् दुर्गा मानव-शरीर धारण कर युद्धक्षेत्र में उतर आई है। उसके दोनों हाथों में तलवारें थीं। वह बिजली के समान चमकती हुई सैनिकों को प्रोत्साहित कर रही थी। उसे देखकर कुमार चन्द्रगुप्त तो आविष्ट-सा हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था, संसार की कोई भी शक्ति उसके मार्ग को नहीं रोक सकती। करभिका के साथ वह जिधर भी निकल जाता, यवनों की लाशें बिछ जातीं। उसके सामने आ सकने का किसी को भी साहस नहीं होता था। सिन्धु नदी को पार कर जब हमारी सेना ने यवन स्कन्धावार पर आक्रमण किया, तब तो गजब ही हो गया। करभिका और चन्द्रगुप्त सबके आगे-आगे चल रहे थे,

मूली-गाजर की तरह यवनों को काटते हुए। वे सीधे युथिदमस के शिविर में जा पहुँचे और तलवार की एक चोट से यवन सेनापति का सफाया कर दिया। मैं यह नहीं कह सकता, आचार्य ! कि युथिदमस करभिका की तलवार से मारा गया या चन्द्रगुप्त की तलवार से। पर सेनापति के मरते ही यवन सेना में भगदड़ मच गई।'

'साधु करभिका ! साधु चन्द्रगुप्त ! मुझे तुम दोनों से यही आशा थी।'

'अब आर्यभूमि यवनों के आधिपत्य से स्वतन्त्र हो गई है, आचार्य ! करभिका और चन्द्रगुप्त ने युथिदमस के स्कन्धावार को छिन्न-भिन्न करके ही अपने कार्य की समाप्ति नहीं कर दी। वे पश्चिम की ओर निरन्तर आगे बढ़ते गए। कुभा नदी के दक्षिणी तट पर उद्यानपुरी में आर्यों की विजय-पताका फहराकर ही उन्होंने विश्राम किया, आचार्य !'

'करभिका और चन्द्रगुप्त इस समय कहाँ हैं, व्याडि ?'

'वे अब उद्यानपुरी में हैं, और वहाँ आनन्द मना रहे हैं।'

'आर्यों के प्रणय का यही ढंग है, व्याडि ! पहले कर्तव्य-पालन और फिर प्रणय। वाहीक देश के अन्य जनपदों से भी कोई समाचार मिला ?'

'हाँ, आचार्य ! सर्वत्र यवन सेनाएँ परास्त हो गई हैं। आर्यभूमि अब स्वतन्त्र है। वाहीक देश में जहाँ-कहीं भी यवनों के स्कन्धावार थे, सब पर हमारे सैनिकों का कब्जा हो गया है।'

'पर अभी असली कार्य शेष है, व्याडि ! हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण यह आर्यभूमि जब तक एक संगठन में संगठित नहीं हो जाएगी, हमारा कार्य पूर्ण नहीं होगा। यवन लोग पुनः भारत पर आक्रमण कर सकते हैं। वे अपने खोए हुए साम्राज्य को पुनः प्राप्त करने का उद्योग अवश्य करेंगे।'

'पर यवनों के साम्राज्य में तो उत्तराधिकार के लिए झगड़े शुरू हो गए हैं, आचार्य ! सिकन्दर के विविध सेनापतियों ने अपने-अपने क्षेत्रों में अपने को स्वतन्त्र सम्राट् घोषित कर दिया है।'

'यह ठीक है, व्याडि ! पर यवनों का साम्राज्य बहुत विशाल है। उस साम्राज्य के पूर्वी भाग का सेनापति भी भारत-भूमि पर आक्रमण कर सकता है। यदि भारत एक न हुआ, तो उसके विविध जनपदों के लिए यवन-आक्रमण का मुकाबिला कर सकना सुगम नहीं होगा।'

'पर वाहीक देश की स्वतन्त्रता और हमारी सेनाओं की विजय का महोत्सव तो धूमधाम के साथ मनाया ही जाना चाहिए, आचार्य !'

'हाँ, यह ठीक है। इससे जनता में उत्साह की वृद्धि होगी, और लोगों को स्वतन्त्रता के गौरव की अनुभूति होगी। तो इसके लिए तैयारी शुरू कर दो।'

'इसके लिए कौन-सा दिन नियत करना उचित होगा, आचार्य ?'

'कठ गण की राजधानी सांकल नगरी को ध्वंस हुए कितना समय हुआ, व्याडि ?'

'उसे ध्वंस हुए अब पाँच साल पूरे होने वाले हैं, आचार्य ! अब से ठीक एक मास बाद पूर्णिमा के दिन सांकल के ध्वंस की पाँचवीं बरसी है।'

'तो वाहीक देश के विजय-महोत्सव के लिए वही दिन ठीक रहेगा, व्याडि ! यह उत्सव सम्पूर्ण वाहीक देश में मनाया जाएगा, और सिन्धु नदी के पार पुष्करावती और कपिश में भी।'

'राजगृह में इस उत्सव के लिए हमें क्या-कुछ करना होगा, आचार्य ?' इन्द्रदत्त ने प्रश्न किया।

'राजगृह का यह उत्सव केवल केकय जनपद का ही नहीं होगा। इसमें अन्य जनपदों के लोग भी सम्मिलित होंगे। यवनराज का क्षत्रप यहीं रहा करता था। यह नगरी वाहीक देश के ठीक मध्य में पड़ती है। अतः यहाँ उत्सव का विशेष रूप से आयोजन करो। कुमार पर्वतक का राज्याभिषेक भी इसी अवसर पर हो। वाहीक देश के सब जनपदों के राजकुलों को इस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रित करो।'

'जो आज्ञा, आचार्य ! पर इस महान् आयोजन का पुरोधा आपको ही बनना पड़ेगा। अब आप कृपा कर राजगृह के राजप्रासाद को अपनी चरण-रज से पवित्र करें।'

'यह किसलिए, इन्द्रदत्त ?'

'यहाँ शिवमन्दिर में निवास करते हुए आप केकय जनपद के राजपुरुषों के निकट सम्पर्क में नहीं आ सकेंगे, आचार्य ! राजपुरुषों को यहाँ आकर आपसे आदेश प्राप्त करने में बहुत असुविधा होगी। सम्पूर्ण वाहीक भूमि के इस महोत्सव के संचालन का कार्य-भार तो आपको ही वहन करना होगा, आचार्य !'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! राज्यश्री का उपभोग मेरे भाग्य में नहीं है। तुम और व्याडि मुझसे परामर्श लेते रहो, यही पर्याप्त है। केकय के महामन्त्री की स्थिति में इस महोत्सव का सब प्रबन्ध तुम्हारे ही हाथों में रहेगा। मुझे तो वटुकों को पढ़ाते हुए ही अपना जीवन व्यतीत करना है। वाहीक देश से यवनों के आधिपत्य का अन्त हो गया। मेरा आधा कार्य अब समाप्त

हो गया है। मगध के राजकुल का उच्छेद हो जाने पर जब सम्पूर्ण भारत-भूमि में राजनीतिक एकता स्थापित हो जाएगी, तो एक बार फिर में अपनी पर्णकुटी में जा बैठूंगा, वटुकों को त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति पढ़ाने के लिए।'

'पर इस समय तो आप राजप्रासाद में विराजिए, आचार्य! आर्य जाति के महान् नेता के लिए शिवमन्दिर के प्राङ्गण में स्थित इस पर्णकुटी में रहना शोभा नहीं देता।'

'ऐसा मत कहो, इन्द्रदत्त! भारत के ब्राह्मणों की शोभा इसी बात में है कि वे पर्णकुटी में रहें, भोग और वैभव से दूर भागें, त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करें और धन-ऐश्वर्य से बचकर रहें। जिस दिन भारत के आचार्य और श्रोत्रिय पर्णकुटी में रहना अपने लिए हीन बात समझने लगेंगे, आर्य-मर्यादा का लोप हो जाएगा और इस देश का पतन शुरू हो जाएगा।'

'मैं भी तो ब्राह्मण हूँ, आचार्य! ऋषिवंश में मेरा जन्म हुआ है।'

'पर तुमने ब्राह्मणवृति का त्याग कर क्षत्रियवृत्ति को अपना लिया है, इन्द्रदत्त! तुम विशाल केकय जनपद के महामन्त्री हो, तुम्हें रात-दिन राज-पुरुषों से काम पड़ता है, विविध जनपदों के दूत तुमसे भेंट करने के लिए आते रहते हैं, सेनाध्यक्ष और नावध्यक्ष जैसे वीर सेनापति तुम्हारे आदेश की प्रतीक्षा करते रहते हैं। राज्यकार्य का संचालन प्रभाव और गौरव को कायम रखे बिना सम्भव नहीं है। तुम्हें फिर से राजप्रासाद में चले जाना चाहिए। मेरी बात दूसरी है। न मुझे किसी राजपुरुष से काम है, न किसी दूत से। मेरे लिए तो तुम और व्याडि ही पर्याप्त हो। हाँ, तुमको यहाँ आने का कष्ट अवश्य उठाना पड़ा करेगा।'

'यह कष्ट नहीं है, आचार्य! यह हमारा सौभाग्य है जो आप जैसे लोकोत्तर पुरुष ने अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम अकिञ्चन व्यक्तियों का सहयोग लिया है। इस महोत्सव के लिए क़रभिका और चन्द्रगुप्त को भी निमन्त्रित करना होगा, आचार्य! यवनों की पराजय में सबसे बड़ा कर्तृत्व इन्हीं दोनों का है।'

'नहीं, इन्द्रदत्त! इन प्रेमियों को उद्यानपुरी में ही प्रणयक्रीड़ा करने दो। कुभा की घाटी का वह प्रदेश सचमुच ही आर्यभूमि का उद्यान है। भगरूप के पान्थागार में वे अपने प्रणय के दिन बिता रहे हैं, उनके मार्ग में बाधा न डालो। अभी मुझे उनसे बहुत काम लेना है। उन्हें कुछ दिन विश्राम कर लेने दो।'

'और आचार्य शकटार, उन्हें तो इस अवसर पर राजगृह पधारना ही चाहिए। स्रुघ्न देश से भृत सेना एकत्र करने में उनका बड़ा हाथ था। इसी सेना के कारण वाहीक देश आज स्वतन्त्र हो सका है। इस विजय-महोत्सव में शकटार की उपस्थिति आवश्यक है, आचार्य !'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! स्रुघ्न देश में शकटार का कार्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। मागध साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित इस जनपद का हमारे भावी कार्य की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। शकटार का वहाँ रहना बहुत आवश्यक है। हाँ, तुम कुलूत के राजा चित्रवर्मा, काश्मीर के राजा पुष्कराक्ष और पार्स के नेता मेघाक्ष के पास इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण भेज दो। युथिदमस की यवन सेना को परास्त करने में इन सबसे बहुत सहायता मिली थी। कुलूत और काश्मीर की सेनाएँ उस महायुद्ध में शामिल थीं, जो कुमार चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी के तट पर यवनों से लड़ा था। मेरी प्रेरणा से पार्स नेता मेघाक्ष ने ठीक उसी समय यवनों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया था, जब कि चन्द्रगुप्त सिन्धुतट की ओर बढ़ रहा था। इसी कारण पार्स साम्राज्य की यवन सेना युथिदमस की सहायता के लिए सिन्धुतट पर नहीं पहुँच सकी थी। मगध के राजकुल का विनाश करने के लिए भी मुझे इन सब के सहयोग की आवश्यकता होगी।'

यवनों की पराजय और आर्यभूमि की स्वतन्त्रता का महोत्सव सम्पूर्ण वाहीक देश में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया। इस महोत्सव के अवसर पर राजगृह में जो समारोह हुआ, उसका वर्णन कर सकना सम्भव नहीं है। दूर-दूर से लाखों नर-नारी इस अवसर पर राजगृह आए और उनसे केकय देश की इस राजधानी के सब पान्थागार और मन्दिर आदि परिपूर्ण हो गए। कोई दस दिन तक यह महोत्सव जारी रहा। जनता ने खूब खुशियाँ मनाईं, बहुत-से नाटक खेले गए, देव-प्रतिमाओं की प्रेक्षा की गई, समाज हुए, यात्राएँ निकलीं और क्रीड़ागृहों में तो स्थान मिल सकना भी कठिन हो गया। केकयराज पर्वतक का राज्याभिषेक भी बड़ी धूमधाम से हुआ। गंगा, यमुना, सरस्वती, विपाशा, सिन्धु, नर्मदा और गोदावरी आदि सब पवित्र नदियों के जलों से पर्वतक का अभिषेक किया गया और वाहीक देश के सब जनपदों ने उन्हें अपना सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकृत किया।

अपने पुत्र के राज्याभिषेक को देखकर वृद्ध पोरु उल्लास और गर्व से पुलकित हो रहे थे। अपने पुराने मित्र और महामन्त्री इन्द्रदत्त के साथ बैठे हुए वे इस नयनानन्दवर्धक दृश्य को देख रहे थे। गौरव-भावना से पुलकित

होकर उन्होंने इन्द्रदत्त से कहा—'आचार्य ! आज मेरे जीवन की साध पूरी हो गई। पिता जो पद प्राप्त नहीं कर सका, वह पुत्र ने प्राप्त कर लिया। शास्त्रों में लिखा है, पुत्र से पराजय की इच्छा करे। पर्वतक द्वारा पराजित होकर आज मेरे हर्ष की सीमा नहीं है। मैं वाहीक देश का चक्रवर्ती सम्राट् बनना चाहता था। मेरी इच्छा थी कि वाहीक देश के सब राजकुल मेरी राजसभा में उपस्थित हों, मुझे अपना अधिपति स्वीकार करें। इसी लिए मैंने यवनराज सिकन्दर का साथ दिया था। जो पद मैं यवनराज की अधीनता में प्राप्त नहीं कर सका, वह आज पर्वतक ने स्वतन्त्र वाहीक देश में प्राप्त कर लिया है। इसके लिए तुम्हें धन्यवाद है, आचार्य ! तुम्हारी राजनीति आज सफल हो गई है।'

'इसके लिए आचार्य विष्णुगुप्त को धन्यवाद दीजिए, केकयराज ! यह उन्हीं की नीति का प्रताप है, जो आज यह दृश्य अपनी आँखों से देखने का अवसर हमें मिला है। वाहीक देश आज स्वतन्त्र है, और उसके विविध जनपद केकयराज पर्वतक को अपना अग्रणी तथा अधिपति स्वीकृत कर रहे हैं।'

'पर आचार्य विष्णुगुप्त मगध के राजकुल के विनाश की चिन्ता में हैं। वाहीक देश की सेनाओं से ही वे मगध की विजय करेंगे। यदि पर्वतक ही सम्पूर्ण आर्यभूमि का सम्राट् पद पा सके, तो कैसा उत्तम हो, आचार्य !

'यह तो आचार्य विष्णुगुप्त की इच्छा पर ही निर्भर करता है, केकयराज !'

'पर क्या यह भी सम्भव है कि कोई अन्य व्यक्ति मगध के राज-सिंहासन पर आरूढ़ हो ? उस दशा में क्या पर्वतक को भी उस व्यक्ति के सम्मुख सिर झुकाना पड़ेगा ? उसको अपना अधिपति मानना होगा ?'

'आचार्य विष्णुगुप्त की तो यही योजना है, केकयराज !'

'पर यह तो बहुत अनुचित होगा, आचार्य ! वाहीक सम्राट् पर्वतक किसी अन्य व्यक्ति के सम्मुख सिर झुकाए, यह मैं कभी सहन नहीं कर सकूँगा।'

'आचार्य विष्णुगुप्त के नीति-चक्र में दखल न दीजिए, केकयराज !'

'यह न भूलिए, आचार्य ! आप केकय देश के महामन्त्री हैं, और उसके गौरव की रक्षा एवं वृद्धि आपका प्रधान कर्तव्य है। क्या आप यह सहन कर सकेंगे कि केकयराज मागध सम्राट् के अधीन रहे ?'

'केकय के उत्कर्ष को दृष्टि में रखकर आप पहले कितनी भयंकर भूलें कर चुके हैं, केकयराज ! हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस विशाल आर्यभूमि की रक्षा और उत्कर्ष के लिए यदि केकय जनपद

और उसके राजकुल की बलि देनी पड़े, तो उसमें भी आचार्य विष्णुगुप्त संकोच नहीं करेंगे।'

'और आप, आचार्य इन्द्रदत्त ?'

'आप जानते ही हैं कि मैं आचार्य विष्णुगुप्त का सहपाठी और अनुगामी हूँ।'

'तो आप यह यत्न क्यों नहीं करते कि पर्वतक ही मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो। मगध के बाद सम्पूर्ण भारतवर्ष में केकय ही सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य है। उसका राजकुल अत्यन्त प्राचीन और गौरवशाली है। क्या कोई अन्य राजकुल है, जो केकय की बराबरी कर सके ?'

'नहीं, केकयराज !'

'तो क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जिसे आचार्य विष्णुगुप्त पर्वतक की अपेक्षा अधिक योग्य समझते हों ?'

'शायद है।'

'वह कौन ?'

'कुमार चन्द्रगुप्त, जिसकी वीरता और साहस के कारण ही केकय देश को आज यह दिन देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।'

'तो इस चन्द्रगुप्त को अपने मार्ग से हटाना होगा, आचार्य !'

'आप आग के साथ न खेलिए, केकयराज ! आचार्य विष्णुगुप्त की इच्छा के सम्मुख आपका और मेरा कोई बस नहीं चल सकता। पर यह न समझिए, कि वे चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर बिठाने का निश्चय कर चुके हैं। करभिका को आचार्य विष्णुगुप्त अपनी पुत्री मानते हैं, और चन्द्रगुप्त उनका शिष्य है। पर उनकी दृष्टि में व्यक्ति का कोई महत्त्व नहीं है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे अपने प्रिय-से-प्रिय आत्मीय की बलि दे सकते हैं। स्नेह-भावना से वशीभूत होकर वे चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर बिठाएँगे, यह क्षण-भर के लिए भी ध्यान में न लाइए।'

'तो फिर किस लिए ?'

'केवल चन्द्रगुप्त और करभिका के साहस और वीरता के कारण।'

'तो क्या पर्वतक चन्द्रगुप्त की अपेक्षा वीरता में कम है ?'

'यह तो मैंने नहीं कहा, केकयराज ! पर पर्वतक को अपनी वीरता का प्रमाण देना होगा।'

'वह किस प्रकार, आचार्य ?'

'मगध पर आक्रमण के समय यदि केकयराज पर्वतक ने अपने को चन्द्रगुप्त की अपेक्षा अधिक योग्य और वीर सिद्ध कर दिया, तो यह निश्चित समझिए कि मगध का राजसिंहासन उसे ही प्राप्त होगा। पर्वतक का कुल अत्यन्त प्राचीन है, और उसे राज्यकार्य का अनुभव भी है, आचार्य विष्णुगुप्त इस बात को अवश्य महत्त्व देंगे।'

'तो क्या पर्वतक के उत्कर्ष का अन्य कोई मार्ग नहीं है?'

'नहीं, केकयराज!'

'क्या व्याडि की औशनस नीति इसके लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती? क्या उसके सत्री करभिका और चन्द्रगुप्त का काम तमाम नहीं कर सकते? न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी। यदि इन दोनों को अपने मार्ग से हटा दिया जाए, तो पर्वतक के मागध सम्राट् बनने में कोई भी सन्देह नहीं रह जाएगा।'

'मैं पहले ही कह चुका हूँ, केकयराज! आग से न खेलिए। औशनस नीति की अपेक्षा भी एक अधिक ऊँची दण्डनीति है, और आचार्य विष्णुगुप्त उसी के प्रयोक्ता हैं।'

'पर क्या यह सम्भव नहीं, कि पर्वतक वाहीक देश का स्वतन्त्र राजा बना रहे। यदि विष्णुगुप्त उसे सम्पूर्ण भारत का सम्राट् बनने के योग्य न भी समझें, तो भी कम-से-कम वाहीक देश पर तो उसका आधिपत्य अक्षुण्ण रहे। भारत बहुत विशाल देश है, आचार्य! क्या उसे दो भागों में नहीं बाँटा जा सकता?'

'इन सब बातों का निर्णय तो आचार्य विष्णुगुप्त के हाथों में ही है, केकयराज!'

'तो क्या आप सब उसके हाथों में कठपुतली के समान हैं? क्या वाहीक देश के राजनीतिज्ञों की अपनी स्वतन्त्र सम्मति कोई है ही नहीं?'

'वास्तविक बात यही है, केकयराज!'

(३५)

वक्रनास की कूट योजना

आचार्य विष्णुगुप्त और कुमार चन्द्रगुप्त के कारण वाहीक देश में जो उथल-पुथल मच गई थी, मागध साम्राज्य के महामन्त्री वक्रनास उससे अपरिचित नहीं थे। उनके गूढ़पुरुष और सत्री न केवल साम्राज्य के

पश्चिमी सीमान्त में ही नियुक्त थे, अपितु वाहीक देश में भी सर्वत्र विद्यमान थे। वहाँ की सब घटनाओं की सूचना वे वक्रनास को देते रहते थे। जब विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त पाटलिपुत्र के आक्रमण में असफल होकर पश्चिम की ओर चले गए, तो वक्रनास ने शान्ति की साँस ली थी। पर जब शकटार और चन्द्रगुप्त ने स्रुघ्न देश में सेना एकत्र करनी शुरू की, तो उसका चिन्तित होना सर्वथा स्वाभाविक था। पर जब उसे ज्ञात हुआ कि यह सेना वाहीक देश में यवनों के साथ युद्ध करने के लिए है, तो वह बहुत-कुछ निश्चिन्त हो गया था। फिलिप्पस की हत्या और सिन्धुतट पर स्थित यवन स्कन्धावार के विनाश से वह बहुत प्रसन्न था, क्योंकि शक्तिशाली यवनों का अपने साम्राज्य के इतने समीप होना उसके लिए उद्वेग का कारण था। पर यवनों को परास्त कर जब विष्णुगुप्त ने वाहीक देश के विविध जनपदों को केकयराज पर्वतक की अधीनता में ला दिया, तो वक्रनास बहुत चिन्तित हुआ। वह चाणाक्ष राजनीतिज्ञ था, और उसे यह समझने में देर नहीं लगी कि विष्णुगुप्त का उद्देश्य क्या है।

पाटलिपुत्र के राजप्रासाद के सुन्दर उद्यान में बैठा हुआ महामन्त्री वक्रनास इसी समस्या पर विचार कर रहा था कि एक दण्डधर ने आकर उसे प्रणाम किया।

'प्रियंवदक आपके दर्शन के लिए अनुमति की प्रतीक्षा कर रहे हैं।' दण्डधर ने हाथ जोड़कर कहा।

'उन्हें यहीं भेज दो।'

'जो आज्ञा, महामन्त्री जी!'

कुछ क्षण बाद प्रियंवदक ने आकर वक्रनास को प्रणाम किया।

'कहो, प्रियंवदक! क्या समाचार है?'

'विष्णुगुप्त के नीति-बल से एकत्र वाहीक सेनाएँ मागध साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए पूर्व की ओर प्रस्थान कर चुकी हैं, आचार्य!'

'यह तो कोई नया समाचार नहीं है। मैं पहले ही यह सुन चुका हूँ।'

'इस सेना में पाँच लाख के लगभग सैनिक हैं, आचार्य! केकय, गान्धार, मालव, क्षुद्रक, आग्रेय, मद्रक, कुलूत आदि वाहीक जनपदों के अतिरिक्त पुष्करावती, पार्स और काश्मीर की सेनाएँ भी विष्णुगुप्त के साथ हैं, आचार्य! यह सेना आँधी के समान पूर्व दिशा की ओर बढ़ रही है। अन्तपालों के लिए इस शक्तिशाली सेना का मुकाबिला कर सकना सुगम नहीं होगा, आचार्य!'

'मागध साम्राज्य के पश्चिमी सीमान्त पर हमारी कितनी सेना होगी, प्रियंवदक ?'

'अधिक-से-अधिक एक लाख, आचार्य !'

'तो मगध की सेना को पश्चिमी सीमान्त पर भेज देना उचित होगा।'

'पर पाटलिपुत्र की रक्षा के लिए भी तो सेना की आवश्यकता होगी, आचार्य ! पाराशर नीति के अनुसार राजधानी की रक्षा सबसे अधिक आवश्यक है। यदि राजधानी सुरक्षित रहे, तो राज्य के अन्य प्रदेशों को तो बाद में भी अधिगत किया जा सकता है।'

'तुम्हें इतना नीतिज्ञान कब से हो गया, प्रियंवदक ? सेना की समस्या पर विचार करना तुम्हारा काम नहीं है। तुम यह बताओ कि तुम्हारे गूढ़पुरुष और सत्री इस समय क्या कर सकते हैं ?'

'इस पर भी मैंने विचार किया है, आचार्य ! मेरे सत्रियों ने सूचना दी है कि केकयराज पर्वतक चन्द्रगुप्त को ईर्ष्या की दृष्टि से देखता है, क्योंकि वह स्वयं मागध सम्राट् का पद पाने के लिए उत्सुक है। विष्णुगुप्त और इन्द्रदत्त ने उसे इस बात का आश्वासन भी दिया हुआ है। पर वह समझता है कि विष्णुगुप्त का चन्द्रगुप्त के प्रति बहुत अधिक पक्षपात है। करभिका और चन्द्रगुप्त उसे फूटी आँख नहीं भाते। वह उनके प्रति बहुत विद्वेष रखता है।'

'यह करभिका कौन है, प्रियंवदक ?'

'कठ जाति की एक वीर महिला है। फिलिप्पस की हत्या इसी ने की थी। वह चन्द्रगुप्त के प्रति अनुरक्त है, और छाया की तरह उसके साथ-साथ रहती है।'

'क्या वह सुन्दर है ?'

'परम सुन्दर, आचार्य ! उस जैसी वीर, साहसी और सुन्दर स्त्री इस भारत-भूमि में और कोई न होगी। उसे अपने कुल, चरित्र और वीरता का बहुत अभिमान है।'

'क्या चन्द्रगुप्त के साथ उसका विवाह हो गया है ?'

'नहीं, आचार्य ! यवनों की पराजय के बाद चन्द्रगुप्त और करभिका दो मास के लगभग उद्यानपुरी में एक साथ रहे। वे एक-दूसरे के प्रेम में पागल हैं। चन्द्रगुप्त की बहुत इच्छा थी कि वे विवाह कर लें। पर करभिका इससे सहमत नहीं हुई। उसने कहा, जब तक आचार्य विष्णुगुप्त की प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं हो जाएगी और मगध के राजकुल का विनाश नहीं हो

जाएगा, वह विवाह-बन्धन को स्वीकार नहीं करेगी। चन्द्रगुप्त इस बात से बहुत दुखी है। कई बार उसे सन्देह होने लगता है कि करभिका उसे हृदय से प्यार नहीं करती।'

'तो फिर एक काम करो, प्रियंवदक! तुम्हारी रूपाजीवाओं में क्या कोई ऐसी नहीं है, जो चन्द्रगुप्त पर अपना जादू डाल सके?'

'क्यों नहीं, आचार्य! यदि करभिका सुन्दर है, तो माधवी में गजब का आकर्षण है। उसके रूप, यौवन, कला, संगीत और नृत्य में ऐसी मोहिनी है कि कोई भी युवक उसके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। जब वह हँसती है, तो फूलों की वर्षा होने लगती है। जब वह रूठती है, तो उसके मुखमण्डल पर एक अद्भुत-सी मादकता आ जाती है। उसका पिङ्गल वर्ण केशपाश ऐसा मालूम होता है, मानो सूर्य बादलों में से झाँक रहा हो।'

'अरे, तुम तो स्वयं उसके प्रेमजाल में फँसे हुए प्रतीत होते हो, प्रियंवदक!'

'नहीं, आचार्य! मेरे लिए इन रूपाजीवाओं का केवल एक ही प्रयोजन है। वह है, मागध साम्राज्य की रक्षा और नन्दकुल की सत्ता को स्थिर रखना।'

'तो फिर माधवी को चन्द्रगुप्त के पास भेज दो। वाहीक देश के स्कन्धावार में जाकर वह यह प्रचारित करे कि राजा सुमाल्य नन्द बड़ा कामुक और अत्याचारी है। मैं पाटलिपुत्र के एक समृद्ध श्रेष्ठी की कन्या हूँ। सुमाल्य नन्द ने अपनी विषय-वासना की पूर्ति के लिए मुझे जबर्दस्ती पकड़ मँगवाया। किसी प्रकार छल करके मैं उसके अन्तःपुर से भाग आई हूँ। मैंने प्रतिज्ञा की है कि नन्द की हत्या कर अपने अपमान का बदला लूँगी। इसी लिए मैं कुमार चन्द्रगुप्त की शरण में आई हूँ। धीरे-धीरे वह चन्द्रगुप्त से परिचय प्राप्त करे और उसे अपने प्रेम-जाल में फँसा ले। करभिका कभी इसे सहन नहीं कर सकेगी। कठ लोगों को मैं खूब जानता हूँ। मरना और मारना उनके बाएँ हाथ का खेल है। करभिका के हाथ से ही चन्द्रगुप्त की हत्या हो जाएगी। माधवी स्वयं भी अवसर उपस्थित होने पर चन्द्रगुप्त को मारने में संकोच न करे। समझ गए, प्रियंवदक! क्या माधवी यह कार्य कर सकेगी?'

'क्यों नहीं, आचार्य! वह अत्यन्त कुशल स्त्री है। मुझे उसकी प्रतिभा और कुशलता पर पूरा विश्वास है।'

'तो उसे सब काम समझा दो, प्रियंवदक!'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'एक काम और करो, प्रियंवदक ! अपने कुछ विश्वस्त सत्रियों को पर्वतक के पास भेज दो। वे उसे विष्णुगुप्त के विरुद्ध भड़काएँ। चन्द्रगुप्त के प्रति ईर्ष्या और विद्वेष का जो भाव उसके हृदय में विद्यमान है, उसे वे खूब उत्तेजित करें।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'तोते की तरह 'जो आज्ञा, जो आज्ञा' मत रटो, प्रियंवदक ! सब बातें भलीभाँति समझ लो। तुम्हारे जो सत्री पर्वतक के पास जाएँ, उनमें से एक मौहूर्तिक का भेस बनाए। वह वाहीक सेना के स्कन्धावार में जाकर सैनिकों पर अपना प्रभाव कायम कर ले। सैनिकों का हृदय भावी दुश्चिन्ताओं से सदा परिपूर्ण रहता है। भविष्य-फल बताकर उन्हें सुगमता से काबू में लाया जा सकता है। पर्वतक के हृदय में सम्राट् पद पाने की महत्त्वाकांक्षा विद्यमान है। अपने सैनिकों से मौहूर्तिक की महिमा सुनकर वह अवश्य उसके साथ सम्पर्क स्थापित करेगा। जब वह पर्वतक पर अपना विश्वास जमा ले, तो उससे कहे—'आपका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। आपके भाग्य में सम्पूर्ण भारत-भूमि का सम्राट् बनना लिखा है। ग्रहों का संयोग इसके अनुकूल है, पर इसमें कुछ बाधाएँ भी हैं।' पर्वतक अवश्य पूछेगा कि ये बाधाएँ कौन-सी हैं। तब अभयदान माँगकर मौहूर्तिक कहे—'ये बाधाएँ विष्णुगुप्त और चन्द्रगुप्त हैं।' इस प्रकार वह पर्वतक के हृदय में उनके विरुद्ध भावना को उद्बुद्ध करे। समझ गए, प्रियंवदक !'

'मेरे सत्री अपने कार्य में बहुत कुशल हैं, आचार्य ! उनके लिए आपका इशारा ही पर्याप्त है।'

'एक बात और सुनो, प्रियंवदक ! क्या यह सम्भव नहीं है कि विष्णुगुप्त के प्रति भी विरोध की भावना को उत्पन्न किया जा सके ? तक्षशिला के इस आचार्य ने वाहीक के राजकुलों और सेनापतियों को जिस ढंग से अपने काबू में कर लिया है, वह बहुत अस्वाभाविक है। वह कोई अलौकिक पुरुष तो है नहीं, चार दिन पहले बटुकों को पढ़ाकर अपने पेट का पालन किया करता था। अब उसने कौनसा ऐसा जादू सीख लिया है, जिससे सब लोग आँख मूंदकर उसके आदेशों का पालन करने लगे हैं। अपने कुछ सत्रियों को यह कार्य दो कि वे विष्णुगुप्त के विरुद्ध लोगों को भड़काएँ।'

'यह कार्य तो सुगम नहीं है, आचार्य ! विष्णुगुप्त में सचमुच कोई ऐसी शक्ति है, जिसके कारण कोई भी मनुष्य उसके विरुद्ध उँगली तक उठाने का साहस नहीं करता।'

'पर मगध के मंत्रियों के लिए तो यह कार्य कठिन नहीं होना चाहिए, प्रियंवदक ! क्या विष्णुगुप्त पर तुम्हारी पेशलरूपा दासियों का जादू नहीं चल सकता ?'

'नहीं, आचार्य ! विष्णुगुप्त इन्द्रियजयी है। कामदेव के बाणों का उस पर कोई असर नहीं हो सकता। अप्सराओं के नृत्य, प्रेम-प्रदर्शन और कटाक्षों से कितने ही ऋषि-मुनियों की तपस्या भंग हो गई, पर हमारी कोई भी रूपाजीवा विष्णुगुप्त को पथभ्रष्ट नहीं कर सकेगी।'

'तो तुम पर भी इस कपटी ब्राह्मण के जादू का असर हो गया है, प्रियंवदक ! यदि काम द्वारा इसे परास्त नहीं किया जा सकता, तो क्या अर्थ का लोभ इसे वश में ला सकता है ?'

'नहीं, आचार्य ! विष्णुगुप्त की दृष्टि में सुवर्ण और लोष्ठ में कोई भेद नहीं है।'

'और भय-प्रदर्शन ? क्या तुम्हारे तीक्ष्ण सत्री उसका काम तमाम नहीं कर सकते ?'

'नहीं, आचार्य ! विष्णुगुप्त के शान्त, गम्भीर और तेजस्वी मुख-मण्डल को देखकर कोई व्यक्ति उस पर हाथ उठाने का साहस नहीं कर सकता।'

'तो क्या उसे वश में लाने का कोई उपाय नहीं है, प्रियंवदक ?'

'है क्यों नहीं, आचार्य ! अकेला विष्णुगुप्त नन्दकुल का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हमें प्रयत्न करना चाहिए, कि जो लोग उसका साथ दे रहे हैं, वे उसका साथ छोड़ दें। काम, लोभ, भय आदि द्वारा हम उसके साथियों को अपने पक्ष में कर सकते हैं। चन्द्रगुप्त और पर्वतक को हमें उससे विमुख करना होगा। माधवी चन्द्रगुप्त को अपने प्रेम-पाश में फँसाएगी। साथ ही, हमारे अन्य सत्री उससे मित्रता स्थापित कर उसे यह समझाएँ कि करभिका जो उसके साथ विवाह नहीं करती है, उसका एक-मात्र कारण विष्णुगुप्त है। वही अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उसे विवाह से रोकता है। पर्वतक को यह समझाया जाए कि विष्णुगुप्त चन्द्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर बिठाना चाहता है। शकटार को भी विष्णुगुप्त से अलग करना होगा, आचार्य ! उसे यह समझाया जाए कि विष्णुगुप्त स्वयं मगध का महामन्त्री बनना चाहता है। यदि चन्द्रगुप्त, पर्वतक और शकटार विष्णुगुप्त का साथ छोड़ दें, तो वह अकेला क्या कर सकेगा, आचार्य !'

'तुम्हारी योजना ठीक है, प्रियंवदक ! ऐसा उपाय करो, जिससे

विष्णुगुप्त अकेला पड़ जाए।'

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आचार्य !'

'प्रियंवदक ! अब तुम जाओ। जाकर मन्त्र-युद्ध की व्यवस्था करो। सेनाध्यक्ष से मिलकर मैं शस्त्र-युद्ध का प्रबन्ध करता हूँ। एक बात और सुनो, प्रियंवदक ! शकटार की पत्नी और पुत्रों का क्या हाल है ?'

'वे दुःख और संताप में अपना जीवन बिता रहे हैं, आचार्य ! मेरे सत्री रात-दिन उनकी गतिविधि पर निगाह रखते हैं।'

'उन्हें पकड़कर बन्दीगृह में डाल दो और शकटार को सूचित कर दो कि उन्हें न खाने को अन्न दिया जाएगा और न पीने को पानी। उसे यह भी जता दो कि उसके पुत्र-कलत्र की मुक्ति का केवल एक ही उपाय है: यदि शकटार पाटलिपुत्र आकर आत्मसमर्पण कर दे, तो उन्हें बन्दीगृह से मुक्त कर दिया जाएगा। तुम जानते ही हो, प्रियंवदक ! शकटार मेरा शत्रु है। पर मैं उसकी नीतिज्ञता का आदर करता हूँ। यदि वह विष्णुगुप्त का सहायक रहा, तो वह हमें बहुत हानि पहुँचा सकता है। हमें उसे आत्मसमर्पण के लिए विवश करना ही चाहिए। पार्वती का स्नेह और बच्चों की ममता उसे यहाँ खींच लाएँगी।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'एक बात और सुनते जाओ, प्रियंवदक ! सम्राट् के अन्तःपुर से मुरा देवी को भी गिरफ्तार कर लो। चन्द्रगुप्त को सूचित कर दो कि उसकी वृद्धा माता बन्दीगृह में अन्न-जल के बिना तड़प-तड़पकर प्राण दे रही है। देखता हूँ, माँ का प्रेम अधिक प्रबल होता है या राजसिंहासन प्राप्त करने की अभिलाषा।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

(३६)

मागध साम्राज्य पर आक्रमण

कुमार चन्द्रगुप्त और राजा पर्वतक के नेतृत्व में स्रुघ्न और वाहीक देश की सेनाओं ने मगध के विशाल साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। कुरु देश में यमुना के पूर्वी तट पर जो बहुत-से दुर्ग महापद्म नन्द ने बनवाए थे, वे सब सुगमता से जीत लिए गए। इन दुर्गों में जो अन्तपाल सेनाएँ मगध की ओर से साम्राज्य की रक्षा के लिए नियुक्त थीं, वे चन्द्रगुप्त और पर्वतक

का मुकाबिला कर सकने में असमर्थ रहीं। स्रुघ्न और वाहीक की सेनाएँ आँधी के वेग से पूर्व की ओर बढ़ती गईं। कुरु, पांचाल, कोशल और वत्स जनपदों को जीतती हुई ये सेनाएँ काशी पहुँच गईं और पाटलिपुत्र की ओर आगे बढ़ीं। यमुना से शोण नदी तक इन्हें मगध की किसी शक्तिशाली सेना का सामना नहीं करना पड़ा। सम्राट् सुमाल्य नन्द के विलासमय जीवन और नाच-रंग के कारण मगध की सैन्य-शक्ति शिथिल पड़ गई थी। सम्राट् को राज्य-शासन से विमुख देखकर उसके सेनाध्यक्ष, अन्तपाल और दुर्गपाल भी अपने कर्तव्य की उपेक्षा करने लगे थे। राज्यकोष में पर्याप्त धन नहीं रहा था। नटों, नर्तकों, कुशीलवों, रूपाजीवाओं, गणिकाओं, वादकों और गायकों आदि के लिए राज्यकोष का धन पानी की तरह से बहाया जा रहा था। मौल सेना मगध में अधिक नहीं थी। मगध के सम्राटों की सैन्य-शक्ति प्रधानतया भृत और आटविक सैनिकों पर आश्रित थी। इन्हें नियमित रूप से भृति मिलनी बन्द हो गई थी। सम्राट् का अनुसरण कर सेनाध्यक्ष भी भोग-विलास और नाच-रंग में लग गए थे। उनके पास भी रूपाजीवाओं का जमघट रहता, कुशीलव लोग तमाशे दिखाते रहते, गणिकाओं के नृत्य होते रहते। मगध के जिन वीर सेनापतियों ने कुरु, पांचाल, सौराष्ट्र और कर्णाटक सदृश सुदूरवर्ती प्रदेशों को जीतकर महापद्म नन्द के अधीन किया था, अब रात-भर पेशलरूपा दासियों और सुरापान में मग्न रहते और दिन के समय रात की खुमारी को उतारा करते थे। इस दशा में यदि चन्द्रगुप्त और पर्वतक की सेनाएँ पाटलिपुत्र तक पहुँच गईं, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

स्रुघ्न और वाहीक सेनाओं की सफलता से वक्रनास बहुत चिन्तित था। पर वह न निराश हुआ था और न हतोत्साह। उसे अपने मन्त्र-युद्ध पर पूरा विश्वास था। साथ ही, वह यह भी समझता था कि कोई भी बाह्य सेना पाटलिपुत्र पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सकती। उसने मगध की सब सैन्य-शक्ति पाटलिपुत्र में केन्द्रित कर ली थी। उसे विश्वास था कि पाटलिपुत्र का दुर्ग अभेद्य है। ६०० हाथ चौड़ी और ४५ हाथ गहरी परिखा को पार कर कोई भी सेना उसमें प्रवेश नहीं कर सकती। पाटलिपुत्र में प्रविष्ट होने के लिए जो चौंसठ महाद्वार बने हुए थे, उन्हें बन्द कर दिया गया था और उनके सामने की परिखा पर बने हुए पुलों को उठाकर खड़ा कर दिया गया था। न कोई आदमी पाटलिपुत्र के अन्दर प्रविष्ट हो सकता था, और न कोई उसके बाहर जा सकता था। भोजन-सामग्री और अन्य आवश्यक वस्तुएँ इतनी अधिक मात्रा में वहाँ संचित कर

ली गई थीं कि पाटलिपुत्र के निवासियों और सैनिकों के लिए वे पाँच साल तक पर्याप्त थीं। वक्रनास दण्डनीति के इस सिद्धान्त पर विश्वास रखता था कि दुर्ग में बैठा हुआ एक धनुर्धर बाहर खड़े सौ धनुर्धरों का सुगमता के साथ मुकाबिला कर सकता है। पाटलिपुत्र के दुर्ग में अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित जो सैनिक विद्यमान थे, उनकी संख्या दो लाख के लगभग थी। वक्रनास समझता था, ये सैनिक चन्द्रगुप्त और पर्वतक की पाँच लाख सेना के लिए पर्याप्त हैं।

पर आचार्य विष्णुगुप्त जहाँ त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति के पण्डित थे, वहाँ अभियात्स्य कर्म (आक्रमण की व्यवस्था), सांग्रामिक (युद्धविद्या) और दुर्गलम्भोपाय (शत्रु के दुर्ग की विजय) में भी वे अत्यन्त प्रवीण थे। वे जहाँ एक ओर पाटलिपुत्र के नागरिकों को सुमाल्य नन्द के विरुद्ध विद्रोह कर देने के लिए, मगध की सेना में फूट डलवा देने के लिए और सैनिकों में असन्तोष उत्पन्न करने के लिए अपने सत्रियों का प्रयोग कर रहे थे, वहाँ साथ ही ऐसे उपाय भी कर रहे थे, जिनसे पाटलिपुत्र के अभेद्य दुर्ग को सेना द्वारा जीता जा सके।

मागध साम्राज्य के जो बहुत-से प्रदेश इस समय विष्णुगुप्त के नीति-बल द्वारा एकत्र सेना के हाथ में आ चुके थे, उनमें शान्ति और व्यवस्था स्थापित रखना विशेष कठिन नहीं था। कुरु, पांचाल, कोशल आदि की जनता मगध के राजकुल के प्रति जरा भी अनुराग नहीं रखती थी। महापद्म नन्द ने सैन्य-शक्ति द्वारा ही इनकी विजय की थी। इनके निवासियों को वह दिन याद था, जब उनके जनपद स्वतन्त्र थे और जब मगध की सेनाओं ने उन पर आक्रमण कर उनका विध्वंस किया था। आचार्य विष्णुगुप्त ने इन लोगों से कहा—हम तुम्हें मगध के निरंकुश नृशंस शासन से स्वतन्त्र कराने के लिए आए हैं। हम तुम्हारे राजकुलों और कुलमुख्यों की शक्ति का पुनरुद्धार करेंगे। तुम्हें इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी कि तुम अपने धर्म, चरित्र और व्यवहार का अनुसरण कर सको। हम तुम्हारे देवताओं का आदर करते हैं, तुम्हारे देवमन्दिरों का सम्मान करते हैं। तुम्हारे अपने शील, भाषा, आचार आदि में हम किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप नहीं करेंगे। तुम फिर से स्वतन्त्र हो, पहले के समान ही अपने देश-देवताओं की पूजा करो, अपने समाजों और उत्सवों को मनाओ। नन्दकुल ने तुम्हारे जिन कुलमुख्यों और नेताओं को कैद कर रखा था, उन सब को हम मुक्त कर देंगे। हमारी सेनाएँ तुम्हारे बन्धनों को काट रही हैं, मगध के राजकुल ने जिनमें तुम्हें बाँध रखा था। हम केवल यह चाहते हैं कि

हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण यह विशाल आर्यभूमि एक संगठन में संगठित हो जाए। पर इसके लिए हम भारत के पुराने जनपदों और गणों की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं करेंगे। अपने-अपने क्षेत्र में सब जनपद स्वतन्त्र रहेंगे। पर प्राचीन आर्य-परम्परा का अनुसरण कर वे एक आर्य सम्राट् के नेतृत्व को स्वीकार करेंगे। मगध के सम्राट् अनार्य हैं, शूद्र हैं, अधार्मिक हैं। हम उनका उच्छेद कर एक ऐसे राजकुल को भारत-भूमि का नेतृत्व प्रदान करेंगे, जो आर्य-मर्यादा का पालन करना अपना कर्तव्य समझता हो। यह भारत-भूमि एक चक्रवर्ती साम्राज्य का क्षेत्र है। पर इसका सम्राट् ऐसा होना चाहिए, जो इस विशाल देश के विविध जनपदों की पृथक् सत्ता और अन्तःस्वतन्त्रता का आदर करता हो, और उन्हें अक्षुण्ण रखने के लिए उद्यत हो। आर्यों की यही परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। मगध के अनार्य सम्राटों ने इसके विरुद्ध आचरण किया। इसीलिए हम उसके राजकुल का उच्छेद कर आर्य-मर्यादा की पुनःस्थापना का प्रयत्न कर रहे हैं।

आचार्य विष्णुगुप्त के इन विचारों का सर्वत्र स्वागत हुआ। यही कारण है कि जब स्रुघ्न और वाहीक देश की सेनाओं ने पाटलिपुत्र को घेर लिया, तो कुरु, पांचाल, कोशल, काशी आदि जनपदों के निवासियों का सहयोग भी इन सेनाओं को प्राप्त रहा, और वे अन्न, भोजन, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र आदि द्वारा इनकी सहायता करते रहे।

पर मुख्य समस्या यह थी कि पाटलिपुत्र के सुदृढ़ दुर्ग को किस प्रकार हस्तगत किया जाए। इस पर विचार करने के लिए विष्णुगुप्त, शकटार, चन्द्रगुप्त, पर्वतक, इन्द्रदत्त, व्याडि आदि प्रमुख व्यक्ति एक गुप्त कक्ष में एकत्र हुए।

'जब तक पाटलिपुत्र पर हमारा कब्जा न हो जाए, हमारा कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। कहो, शकटार! तुम्हें तो मगध की सैन्य-नीति का बहुत अनुभव है, पाटलिपुत्र के दुर्ग को भी तुम भलीभाँति जानते हो। कहो, इस दुर्ग के उपलम्भ के लिए हमें क्या उपाय करना चाहिए?' विष्णुगुप्त ने प्रश्न किया।

'सबसे पूर्व हमें पाटलिपुत्र की परिखा को पार करने की व्यवस्था करनी चाहिए।'

'यही तो सब से बड़ी समस्या है। इसका उपाय क्या है?'

'इसके अनेक उपाय हैं, आचार्य! इस परिखा का जल शोण नद से आता है। यदि इसके मुख पर बाँध बाँधकर शोण के जल को परिखा में न

आने दिया जाए, तो इसे जल से विरहित किया जा सकता है। जब परिखा सूख जाए, तो महाद्वारों के सम्मुख इसमें मिट्टी भरी जा सकती है, और इस प्रकार महाद्वारों तक पहुँचने के लिए मार्ग तैयार हो सकता है।'

'यदि परिखा पर नए पुल बनाने का यत्न किया जाए, तो कैसा रहेगा? ६०० हाथ चौड़ी और ४५ हाथ गहरी परिखा को सुखाकर मिट्टी से भरना सुगम नहीं है, शकटार!'

'पुल बनाने में अनेक भय हैं। पाटलिपुत्र के सैनिकों के लिए उन्हें तोड़ डालना कठिन नहीं होगा।'

'यदि परिखा के नीचे एक ऐसी सुरंग बनाई जाए, जिसका मुख दुर्ग की प्राचीर के परे खुलता हो, तो कैसा होगा?' इन्द्रदत्त ने प्रश्न किया।

'यह असम्भव नहीं है। पर जब हमारे सैनिक सुरंग-मार्ग से पाटलिपुत्र में प्रवेश करेंगे, तो वक्रनास के सैनिक सुगमता से उनका संहार कर देंगे। सुरंग के मुख का भेद पा लेना वक्रनास जैसे चतुर व्यक्ति के लिए कठिन नहीं होगा।'

'पर पाटलिपुत्र में हमारे बहुत-से सत्री कार्य कर रहे हैं। श्रेष्ठी धनदत्त हमारा मित्र है। यदि सुरंग का मुख उसकी पण्यशाला में खुले, तो वक्रनास को उसका पता नहीं चल सकेगा।'

'पर पाटलिपुत्र में स्थित दो लाख सैनिकों का मुकाबिला करने के लिए वे थोड़े से सैनिक पर्याप्त नहीं हो सकते, जो सुरंग-मार्ग से जाकर श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला में अपना शिविर कायम करेंगे। हाँ, सुरंग का निर्माण भी उपयोगी होगा, सत्रियों के पाटलिपुत्र में प्रवेश पाने के लिए। हमारे सत्री सुरंग के गुप्त मार्ग से जाकर वैदेहक, कर्मकर, शिल्पी, उदास्थित आदि का भेस बनाकर अपना काम शुरू कर देंगे और जब बाहर की ओर से पाटलिपुत्र पर आक्रमण होगा, तो वे अन्दर अव्यवस्था मचा देंगे। पाटलिपुत्र में विद्रोह और अव्यवस्था उत्पन्न करने के लिए अपने गूढ़पुरुषों और सत्रियों को अधिक-से-अधिक संख्या में वहाँ पहुँचाना परम उपयोगी होगा। इसके लिए सुरंग-मार्ग का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक है। पर दुर्ग को जीतने के लिए परिखा को सुखाए बिना और उसके महाद्वारों के सम्मुख मिट्टी भरे बिना काम नहीं चल सकता।'

'इसमें सन्देह नहीं कि परिखा को सुखा देने से हमारी सेनाओं के लिए पाटलिपुत्र के दुर्ग पर आक्रमण कर सकना सम्भव हो जाएगा। पर पाटलिपुत्र के महाद्वारों के कपाट अत्यन्त मजबूत हैं, उन्हें तोड़कर अन्दर प्रविष्ट होने का क्या उपाय होगा?' चन्द्रगुप्त ने प्रश्न किया।

'इसके लिए हमें हाथियों और यन्त्रों का प्रयोग करना होगा। अकेले हाथी पाटलिपुत्र के महाद्वारों को तोड़ने में समर्थ नहीं हो सकते। इन महाद्वारों के कपाट दो दण्ड मोटे हैं, और उन पर एक हाथ मोटा लोहा मढ़ा हुआ है। इन्हें तोड़ने के लिए हमें यन्त्रों की आवश्यकता होगी। मगध में इस ढंग के यन्त्र प्रयुक्त होते हैं, जिनसे लोहे को काटा जा सकता है, और मजबूत लकड़ी में छेद किए जा सकते हैं।' शकटार ने उत्तर दिया।

'पर महाद्वारों को तोड़ने से ही हम पाटलिपुत्र के दुर्ग की विजय करने में समर्थ नहीं हो जाएँगे। प्राचीर पर खड़े हुए धनुर्धर हमारी सेना पर बुरी तरह से बाण-वर्षा करेंगे। इसके लिए ऐसा उपाय करना चाहिए कि पाटलिपुत्र की प्राचीर के सामने परिखा के इस ओर हम ऊँचे-ऊँचे उच्छ्रित ध्वज (बुर्ज) बनाएँ, जिन पर खड़े हुए हमारे धनुर्धर पाटलिपुत्र की रक्षा करनेवाले सैनिकों पर बाण-वर्षा कर सकें।' विष्णुगुप्त ने कहा।

'यह अत्यन्त उपयोगी होगा। इससे हम दुर्ग की प्राचीर पर खड़े हुए धनुर्धरों का भलीभाँति मुकाबिला कर सकेंगे।'

'जब परिखा का जल सुखा दिया जाए और महाद्वारों तक पहुँचने के लिए उनके सामने की परिखा को मिट्टी से भर दिया जाए, तो हमें यह यत्न भी करना चाहिए कि पाटलिपुत्र में आग लग जाए। इसके लिए हमें 'अग्नियोग' को प्रयुक्त करना होगा। देवदारु, पूतितृण, गुग्गुलु, श्रीवेष्टक आदि ज्वलनशील काष्ठों के चूर्ण को लाक्षा और सर्जा के रस में मिलाकर छोटी-छोटी गोलियाँ बना ली जाएँ। आग को स्पर्श करते ही ये भड़क उठती हैं, और जहाँ इनका एक कण भी गिर जाता है, वहाँ आग लग जाती है। श्येन, काक, उलूक, कपोत आदि पक्षियों की पूँछों के साथ बाँधकर इन अग्नियोग गुलिकाओं को पाटलिपुत्र में ऐसे स्थानों पर बखेर दिया जाए, जहाँ ये तुरन्त अग्नि पकड़ लें। हमारे जो सत्री सुरंग-मार्ग से दुर्ग में प्रवेश करें, वे भी आग लगाने का कार्य करें। अग्निबाणों का भी हमें उपयोग करना होगा। कुम्भी, त्रपु और सीसक धातुओं के चूर्ण को पारिभद्रक और पलाश के फूलों के चूरे के साथ मिलाकर उसमें तेल, मधु और तारपीन मिला देने से एक ऐसा लेप तैयार हो जाता है, जिसे यदि बाणों के फलके पर मल दिया जाए, तो वे अग्निबाण बन जाते हैं। ऐसे अग्निबाणों द्वारा भी दुर्ग में आग लगाई जा सकती है।' इन्द्रदत्त ने कहा।

'पाटलिपुत्र में आग लगाने के लिए ये अग्नियोग बहुत उपयोगी होंगे, क्योंकि वहाँ के बहुत-से मकान लकड़ी के बने हुए हैं। नन्द के राजप्रासाद

में भी लकड़ी का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है।' शकटार ने अपनी सम्मति दी।

'पर पाटलिपुत्र में आग लगा देने के अनेक दुष्परिणाम भी हो सकते हैं। अग्नि का विश्वास नहीं किया जा सकता। कितने ही देवमन्दिरों और सद्गृहस्थों के निवास-स्थानों को भी उससे हानि पहुँच सकती है। नागरिकों के लिए जो बहुत-सा अन्न पाटलिपुत्र में संचित है, वह भी अग्नि द्वारा भस्म हो जाएगा। इससे जनता की सहानुभूति हम नहीं प्राप्त कर सकेंगे। लोग हमारे विरुद्ध हो जाएँगे, और वक्रनास उन्हें हमारे विरुद्ध भड़का सकेगा। अतः यदि अन्य प्रकार से पाटलिपुत्र की विजय की जा सके, तो अग्नियोग से हमें बचना ही चाहिए।' विष्णुगुप्त ने कहा।

बहुत देर तक इसी प्रकार विचार-विनिमय जारी रहा। अन्त में यह योजना स्थिर हुई कि पाटलिपुत्र पर आक्रमण करनेवाली सेना के स्कन्धावार के चारों ओर मिट्टी की एक प्राचीर बना ली जाए, ताकि स्कन्धावार में क्या-कुछ हो रहा है, इसका वक्रनास को पता न चल सके। स्कन्धावार से एक सुरंग बनाई जाए, जो पाटलिपुत्र में श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला के एक गुप्त भवन में जाकर खुले। सुरंग-मार्ग से बहुत-से गूढ़पुरुषों और सत्रियों को पाटलिपुत्र भेज दिया जाए और वे वहाँ पहुँचकर अपना कार्य शुरू कर दें। पाटलिपुत्र के दुर्ग की परिखा को सुखाकर उसके महाद्वारों के सम्मुख मिट्टी भर दी जाए, ताकि दुर्ग के ऊपर आक्रमण करने में कोई बाधा न रहे। योजना के निश्चित हो जाने पर स्रुघ्न और वाहीक देश के सब सैनिक उसे पूरा करने में लग गए।

(३७)

पर्वतक की हत्या

जिस समय आचार्य विष्णुगुप्त और उनके साथी पाटलिपुत्र की विजय के लिए योजना बना रहे थे, वक्रनास, प्रियंवदक और उनके सहयोगी मागध अमात्य भी चुप नहीं बैठे थे। प्रियंवदक के बहुत-से गूढ़पुरुष और सत्री वाहीक सेनाओं के काशी पहुँचने से पहले ही वहाँ जा चुके थे। जब वाहीक सेनाओं ने काशी जनपद की सीमा में प्रवेश किया, इन सत्रियों ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया। मगध के नृशंस शासन से छुटकारा पाने की आशा से काशी जनपद के निवासी कितने प्रसन्न हैं, इसे प्रकट करने

के लिए उन्होंने एक भोज का भी आयोजन किया। इन सत्रियों का नेता शुभकर्ण नाम का एक गूढ़पुरुष था, जो एक समृद्ध श्रेष्ठी का भेस बनाए हुए था। श्रेष्ठी शुभकर्ण एक वड़े सार्थ को लेकर वाहीक सेना के आगमन से पूर्व ही काशी पहुंच गया था। इस सार्थ में जो भी वैदेहक थे, वे सब वक्रनास के सत्री थे और अंग, वंग तथा कलिङ्ग का बहुमूल्य पण्य लेकर काशी आए थे। काशी में अपना पण्य बेचकर उन्होंने वहुत मुनाफा कमाया था। उनके सार्थ के साथ बहुत-सी पेशलरूपा दासियाँ, रूपाजीवाएँ और गणिकाएँ भी थीं। काशी आकर उन्होंने उनके रूप और यौवन का खूब प्रदर्शन किया। संगीत और नृत्य के अनेक आयोजन किए गए। काशी के लोग इनमें बड़े उत्साह के साथ शामिल हुए। कुछ ही दिनों में श्रेष्ठी शुभकर्ण और उसके साथी वैदेहकों की काशी नगरी में धूम मच गई। जब वाहीक सेनाएँ काशी के समीप पहुँचीं, तो शुभकर्ण ने नृत्य और संगीत के समाज में सम्मिलित लोगों से कहा—"आज भारत-भूमि का सौभाग्य है, जो मगध के नृशंस शासन का अन्त करने के लिए पश्चिम की ओर से एक शक्तिशाली सेना आ रही है। मगध के राजा अनार्य हैं, शूद्र हैं, अधार्मिक हैं। उनका शासन आर्यभूमि के माथे पर कलङ्क के टीके के समान है। नागरिको! धूमधाम के साथ वाहीक सेना का स्वागत करो। मैं उनके अभिनन्दन के लिए एक भोज का प्रवन्ध कर रहा हूँ। उसमें सम्मिलित होने के लिए आप सब को निमन्त्रित करता हूँ। काशी में अपना पण्य वेचकर मैंने एक लक्ष सुवर्ण-निष्क कमाए हैं। यदि उनमें से वीस-तीस हजार निष्क वाहीक सेना के स्वागत-समारोह में व्यय भी हो गए, तो कौन बड़ी बात है?'

काशी जनपद के समाहर्ता (प्रशासक) कृष्णवर्मा ने जब श्रेष्ठी शुभकर्ण की इस बात को सुना, तो उसने अपने दण्डधरों के साथ आकर उसे गिरफ्तार कर लिया। उसके साथ के अन्य भी अनेक वैदेहक पकड़ लिए गए। इन सब पर कण्टकशोधन न्यायालय में मगध के सम्राट् के विरुद्ध राजद्रोह का प्रचार करने का अभियोग लगाया गया। इन्हें 'पूर्व साहस दण्ड' दिया गया और वन्दीगृह में डाल दिया गया। जब वाहीक सेनाओं ने काशी में प्रवेश किया, तो ये कैदी वन्दीगृह से मुक्त किए गए। श्रेष्ठी शुभकर्ण अब बहुत प्रसन्न था। वाहीक स्कन्धावार में उसकी अप्रतिहत गति थी। वह कहता था, 'मेरे पूर्वजन्म के सुकृतों का फल है, जो आज वाहीक सेना ने काशी को मगध की दासता से मुक्त करा दिया है, नहीं तो मैं जन्म-भर वन्दीगृह में पड़ा सड़ता रहता। शीघ्र ही नन्दकुल के नृशंस

शासन का अन्त हो जाएगा। इस शुभ कार्य के लिए मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए तैयार हूँ। मेरे पास जो भी धन-सम्पत्ति है, वह सब केकयराज पर्वतक और कुमार चन्द्रगुप्त को अर्पित है। धन तो आता-जाता रहता है, लक्ष्मी कभी एक जगह स्थिर नहीं रहती। धन फिर कमा लूंगा, पर काशी के समाहर्ता ने मुझे कैद कर मेरा जो अपमान किया, पहले उसका प्रतिशोध तो कर लूं।'

श्रेष्ठी शुभकर्ण ने वाहीक सेना के स्वागत में एक भोज की व्यवस्था की। इसमें पर्वतक और चन्द्रगुप्त की सेना के सब बड़े-बड़े सेनापति, नायक और दण्डधर सम्मिलित हुए। काशी के धनी-मानी नागरिक भी इसमें निमन्त्रित किए गए। शुभकर्ण ने धन को पानी की तरह बहाया। काशी-भर के पक्वान्न पण्य (हलवाई), पक्वमांसिक (मांस पकानेवाले), औदनिक (कच्ची रसोई बनानेवाले) और आपूपिक (रोटी और पूड़ी बनानेवाले) इस भोज के लिए विविध प्रकार के पदार्थों को तैयार करने के निमित्त एकत्र कर लिए गए। भोजन के साथ-साथ सुरापान की भी व्यवस्था की गई। काशी के सब शौण्डिकों (कलवारों) की सारी सुरा श्रेष्ठी शुभकर्ण ने खरीद डाली। भोज की समाप्ति पर गान और नृत्य हुआ। आधी रात बीत जाने तक नृत्य और संगीत का क्रम जारी रहा। वाहीक सैनिकों ने समझा, शुभकर्ण सचमुच उनका मित्र है। वह उनका विश्वासपात्र बन गया। जब वाहीक सेना ने काशी से पाटलिपुत्र के लिए प्रस्थान किया, तो वह भी उसके साथ हो गया।

जब वाहीक सेना पाटलिपुत्र का घेरा डाले पड़ी थी, एक दिन श्रेष्ठी शुभकर्ण केकयराज पर्वतक के शिविर में आया और हाथ जोड़कर बोला—'विशाल मागध साम्राज्य के एकच्छत्र सम्राट् के चरणों में शुभ-कर्ण प्रणाम निवेदन करता है।'

'यह क्या कहा, शुभकर्ण!' पर्वतक ने प्रश्न किया।

'महाराज! मैं सच कह रहा हूँ। नन्दकुल के विनाश में अब विलम्ब नहीं है। उसके नष्ट होते ही आप मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होंगे और आर्यभूमि के सब राजकुल आपके चरणों में सिर झुकाएँगे। हम श्रेष्ठी लोग दूरदर्शी होते हैं, महाराज! साल-भर बाद के पण्य का सौदा आज कर लेते हैं। हम क्या यह नहीं जानते, कि कल कौन भारत का चक्र-वर्ती सम्राट् बनेगा।'

'पर आचार्य विष्णुगुप्त को तो करभिका और चन्द्रगुप्त बहुत प्रिय हैं।'

'आर्यभूमि कभी चन्द्रगुप्त को अपना सम्राट् स्वीकार नहीं करेगी।' क्या दासीपुत्र भी कभी भारत का सम्राट्-पद प्राप्त कर सकता है? जिसकी माता नन्द के अन्तःपुर में दासी का कार्य करती हो, वह मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होगा, क्या यह भी कभी सम्भव है?'

'पर यह सब तो आचार्य विष्णुगुप्त की इच्छा पर निर्भर है, भाई!'

'आप भी क्या कहते हैं, महाराज! वाहीक देश की सेनाएँ आपके इशारे पर नाचती हैं। आप उनके स्वामी है। मैंने तो कह दिया महाराज! आज से ठीक एक मास बाद आप मगध के राजसिंहासन पर विराजमान होंगे। तब आपसे इनाम लूंगा। हमारे यहाँ एक पुरानी परम्परा है, महाराज! आज्ञा हो, तो निवेदन करूँ।'

'कहो, शुभकर्ण! क्या कहना चाहते हो?'

'जब कोई नया सम्राट् मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होता है, तो इस गरीब श्रेष्ठी का कुल उसे कुछ उपहार भेंट किया करता है। यही, कुछ मणि-मुक्ता और कुछ दासियाँ। मैं तो आपको मगध का सम्राट् स्वीकार कर चुका हूँ। यदि अनुमति हो, तो अपने उपहार सेवा में ले आऊँ।'

'अभी रहने दो, शुभकर्ण!'

'नहीं महाराज, इस जीवन का क्या ठिकाना। पाटलिपुत्र में सब मेरे शत्रु हैं। वक्रनास हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ा है। मन में एक साध रह जाएगी। मगध के सम्राटों की कृपा से ही धन कमाता हूँ। आपकी अनुकम्पा से पता नहीं, क्या-कुछ कमाऊँगा। मेरी यह तुच्छ-सी भेंट स्वीकार कीजिए।'

शुभकर्ण ने हीरे, मोती, मणि, रत्न आदि से परिपूर्ण एक पिटक पर्वतक के सामने रख दिया और बोला—'महाराज! मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें और ये पाँच दासियाँ आपके चरणों की सेवा करने के लिए समर्पित हैं। केकय देश में तो दास-दासियों की प्रथा है नहीं, महाराज! पर अब आप मगध के सम्राट् हैं। यहाँ तो दास-दासियों के बिना शोभा नहीं होती। ये दासियाँ सब शिल्पों में प्रवीण हैं, नाचती हैं, गाती हैं, सब प्रकार से सेवा करती हैं। इन्हें स्वीकार कीजिए, महाराज! वह चन्द्रगुप्त इनकी कदर क्या जाने? अपने को कुमार कहता है। दासी का पुत्र भी कभी कुमार हो सकता है? देखिए, महाराज, मेरी बात को स्मरण रखिएगा। एक मास बाद चन्द्रगुप्त स्वयं आपके दासों में शामिल होगा और

साथ ही उसकी माँ भी। दासी का पुत्र दास नहीं होगा, तो और क्या होगा ?'

'अच्छा, तो अब मैं चलूँ, शुभकर्ण ! मुझे आचार्य विष्णुगुप्त से काम है।'

'तक्षशिला के इस ब्राह्मण से जरा सावधान रहिएगा, महाराज ! गान्धार के लोगों की केकय देश के साथ पुरानी शत्रुता है। एक बात और कह दूँ, महाराज ! मगध में औशनस नीति के आचार्यों की कमी नहीं है। जब आप सम्राट् बन जाएँ, तो विष्णुगुप्त, इन्द्रदत्त और शकटार पर विश्वास न करना। मैं आपको ऐसा महामन्त्री ला दूँगा, जो इन सब से बढ़कर होगा।'

केकयराज पर्वतक जब आचार्य विष्णुगुप्त से मिला, तो उन्होंने उससे कहा—'देखो, पर्वतक ! राजा के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि वह इन्द्रियजयी हो। मगध की पेशलरूपा दासियों के फेर में न पड़ो। यह असम्भव नहीं कि शुभकर्ण वक्रनास का गूढ़पुरुष हो और ये दासियाँ उसकी सत्री हों। स्कन्धावार में दासियों को मनोरञ्जन के लिए रखना बहुत अनुचित है।'

'आपको यह किसने कहा, आचार्य ! कि मैं दासियों के फेर में पड़ गया हूँ ?'

'इस भारत-भूमि की कौनसी ऐसी बात है, जो मुझसे छिपी हुई है, केकयराज !'

'तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि आपके गुप्तचर हर समय मेरी गतिविधि का निरीक्षण करते रहते हैं। राजा मैं हूँ या आप ?'

'राजा तो तुम्हीं हो, भाई ! पर राजाओं को मर्यादा में रखनेवाले भी तो कोई होते हैं।'

'तो फिर मैं राजा क्या हुआ, एक दास हुआ। यदि मुझे अपनी इच्छा के अनुसार दो घड़ी मन बहलाने की भी स्वतन्त्रता नहीं है, तो इस राजपाट से क्या लाभ ?'

'पर्वतक ! यह मत भूलो कि राज्य में राजा की स्थिति ध्वजमात्र होती है। वह धर्म और शासन से ऊपर नहीं होता। मैं तुम्हें जो कुछ कह रहा हूँ, वह तुम्हारे ही कल्याण के लिए है।'

'मैं जानता हूँ कि आप चन्द्रगुप्त को मगध का सम्राट् बनाना चाहते हैं। आप मुझे धोखा दे रहे हैं, वाहीक सेनाओं की सहायता प्राप्त करने के लिए।'

'देखो, पर्वतक ! मर्यादा का अतिक्रमण न करो। यह स्मरण रखो कि राजा राज्य के लिए होता है, राज्य राजा के लिए नहीं होता। भारत-भूमि के हित और कल्याण के लिए तुम निमित्त बनकर रह सकते हो, पर तुम्हारे वैयक्तिक उत्कर्ष के लिए इस देश की बलि नहीं दी जा सकती। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हो सकता, जिसकी स्थिति देश से ऊपर हो।'

'पर मैं यह साफ-साफ मालूम कर लेना चाहता हूँ, आचार्य ! कि आप मगध के राजसिंहासन पर किसे बिठाना चाहते हैं, मुझे या चन्द्रगुप्त को ?'

'तुम ऐसी बात पूछते हो, पर्वतक ! जिसे मैं अभी स्वयं भी नहीं जानता।'

'पर मैं इस बात का फैसला अभी, इसी क्षण, कर लेना चाहता हूँ, आचार्य ! वाहीक देश की सम्पूर्ण सेना मुझे अपना अधिपति मानती है, मैं वाहीक देश का सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हूँ। आपके उद्देश्य की पूर्ति मेरी सेना की सहायता से ही हो सकती है।'

'यह तुम्हारी भूल है, पर्वतक ! मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं करता। यदि तुम मेरे मार्ग में बाधक बनोगे, तो मैं तुम्हारी स्थिति की जरा भी परवाह नहीं करूँगा। मैं समाज को व्यक्ति के लिए नहीं मानता, अपितु व्यक्ति को समाज के लिए मानता हूँ।'

'तो आप देख लीजिए, आचार्य ! वाहीक सेना किसका साथ देती है।'

'मैं तुम्हें पुनः सावधान कर देता हूँ, पर्वतक ! तुम वक्रनास के कुचक्र में फँस गए हो।'

आचार्य विष्णुगुप्त से भेंट कर जब पर्वतक अपने शिविर को वापस लौटा, तो साँझ हो गई थी। उसका शरीर श्रान्त था और मन क्लान्त। वह चाहता था, आचार्य विष्णुगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कर दे, चन्द्रगुप्त को अपने मार्ग से हटा दे। पर इसके लिए कोई उपाय उसे नहीं सूझता था। वह थककर अपनी शय्या पर लुढ़क गया। इसी समय श्रेष्ठी शुभकर्ण द्वारा समर्पित दासियाँ उसके सम्मुख आ खड़ी हुईं, सोलहों शृंगार किए हुए। उनके शरीर पर वंग देश का रेशमी वस्त्र था, बहुत महीन और अत्यन्त चिक्कण। उसके अन्दर से उनके रूप और यौवन की छटा उमड़ी-सी पड़ रही थी। वे मुसकाती हुई आईं, और पर्वतक से बोलीं—'महाराज की जय हो, दासियाँ आपकी सेवा में उपस्थित हैं।' पेशलरूपा दासियों के

अनुपम सौन्दर्य को देखकर पर्वतक मन्त्रमुग्ध-सा रह गया। केकय देश में सुन्दरियों की कमी नहीं थी। पर इन दासियों के मुखमण्डल पर एक ऐसी मादकता थी, जिसने पर्वतक को वशीभूत कर लिया। एक दासी मृद्वीका का कुम्भ भरकर ले आई और बोली—'महाराज ! यह तारों-भरी रात क्या उदास होकर शय्या पर लेटने के लिए है ? इतनी लम्बी यात्रा के बाद आप श्रान्त हो गए हैं। यह विष्णुगुप्त कितना नीरस है, राजाओं के लिए तो तापसों का-सा जीवन शोभा नहीं देता।' दूसरी दासी ने एक चषक को मृद्वीका से भरकर पर्वतक के मुँह से लगा दिया और वह उनकी शय्या पर लुढ़क-सी गई। दासी की केशराशि के कोमल स्पर्श से, उसकी मधुर सुगन्ध से और मृद्वीका के प्रभाव से पर्वतक अपनी सुध-बुध खो बैठा। उसने एक दासी को अपने अंक में भर लिया और कहने लगा—'यह निश्चय कर सकना कठिन है कि तुम अधिक मादक हो या मृद्वीका। लाओ, मृद्वीका का एक चषक और दो।' दासी पहले ही तैयार थी। उसने मृद्वीका का चषक पर्वतक के मुख से लगा दिया।

थोड़ी देर में पर्वतक का सिर घूमने लगा, उसके अंग शिथिल पड़ने लगे और वह बेहोश होकर शय्या पर लुढ़क गया। दासियाँ हँस रही थीं। पर्वतक मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने की महत्त्वाकांक्षा को साथ में लिए इस संसार से कूच कर चुका था। मृद्वीका के प्रभाव में पर्वतक ने जिस दासी को अपने अंक में भर लिया था, वह विषकन्या थी। उसके स्पर्शमात्र से केकयराज पर्वतक की जीवन-लीला का अन्त हो गया था।

समीप के एक सुन्दर कक्ष में बैठा शुभकर्ण उत्सुकतापूर्वक दासियों के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। क्षण-भर बाद दासियाँ हँसती हुई आईं और बोलीं—'आचार्य वक्रनास की जय हो, पर्वतक चिरनिद्रा में सो गया है। अब हमें हमारा इनाम दिलाइए।'

'इनाम की तुम्हें क्या चिन्ता है, वत्सला ! पर अभी तुम्हारा कार्य पूरा नहीं हुआ है। तुरन्त पर्वतक के कक्ष में जाओ और जोर-जोर से रोना-चिल्लाना शुरू कर दो। आगे जो कुछ करना है, उसे तुम्हें समझाने की आवश्यकता नहीं ?'

'नहीं, नायक ! यह तो हमारा नित्य का कार्य है।'

दासियों के रोने-चिल्लाने की आवाज से महाराज पर्वतक का शिविर परिपूर्ण हो गया। समीप के कक्षों में वाहीक सेना के अनेक सेनापति विश्राम कर रहे थे। वे भागे-भागे आए और पर्वतक को मरा देखकर स्तब्ध रह गए। सेनापति व्याघ्रपाद ने पूछा—'यह कैसे हुआ ?'

'आज महाराज बहुत श्रान्त थे। अपनी थकान को मिटाने के लिए उन्होंने मृद्वीका का एक चषक पिया। उसे पीते ही न जाने उन्हें क्या हो गया, सेनापति !' वत्सला ने उत्तर दिया।

'यह मृद्वीका तुमने कहाँ से प्राप्त की ? स्कन्धावार में तो सुरा का प्रवेश निषिद्ध है।'

'यह कुमार चन्द्रगुप्त ने भेजी थी, सेनापति ! उन्होंने कहलवाया था कि आचार्य विष्णुगुप्त ने महाराज की थकान को मिटाने के लिए इसके सेवन की अनुमति दे दी है।'

'पर यह मृद्वीका तो बिल्कुल निर्दोष है।' व्याघ्रपाद ने उसे चखकर कहा।

'आचार्य ने महाराज के मनोरंजन के लिए एक रूपाजीवा भी भेजी थी, सेनापति !'

'वह कहाँ है ?'

'पास के कक्ष में है, सेनापति !'

'उसे बुलाओ।'

एक दासी ने आकर व्याघ्रपाद को प्रणाम किया। वे उसकी परीक्षा लेने ही वाले थे कि उसने चिल्लाकर कहा—'मुझे मत छूना, सेनापति ! मैं विषकन्या हूँ।'

'तो क्या तुम्हारे स्पर्श से ही केकयराज की मृत्यु हुई है ?'

'हाँ, सेनापति !'

'तुम यहाँ कैसे आईं ?'

'मुझे आचार्य विष्णुगुप्त ने केकयराज की हत्या के लिए भेजा था।'

'क्या यह भी सम्भव है ?'

'यह ध्रुव सत्य है, सेनापति ! मुझे बचपन से आचार्य ने पाला है, विषकन्या के रूप में। आप मुझ पर हाथ न उठाएँ, सेनापति ! मैं निर्दोष हूँ, आचार्य की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य था।'

'तुम्हें अब तक तो कभी आचार्य विष्णुगुप्त के साथ नहीं देखा। मैं कैसे विश्वास करूं कि तुम्हें उन्होंने ही केकयराज की हत्या के लिए भेजा था ?'

'आचार्य की गूढ़नीति को आप नहीं समझ सकते, सेनापति ! जब वे तक्षशिला से चले थे, तभी उन्होंने मुझे काशी भेज दिया था। यदि आपको विश्वास नहीं होता, तो मेरे साथ आचार्य के पास चले चलिए।'

(३८)

वक्रनास के मन्त्र-युद्ध की विफलता

पर्वतक की हत्या का समाचार सुनकर आचार्य विष्णुगुप्त बहुत चिन्तित हुए। वक्रनास की कूटनीति वाहीक स्कन्धावार में किस प्रकार सफल हो रही है, यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था। वाहीक सेना में केकय देश के जो सैनिक थे, पर्वतक की हत्या के कारण वे बहुत क्रुद्ध हुए। शुभकर्ण के सत्रियों ने इस स्थिति से लाभ उठाया। वे केकय सैनिकों से कहते, विष्णुगुप्त को केकय के लोगों पर जरा भी विश्वास नहीं है, वह तक्षशिला का रहने वाला जो है। महाराज पोरु ने गान्धार की विजय की थी, उसका प्रतिशोध करने के लिए ही उसने पर्वतक की हत्या कराई है। केकय के सैनिकों के सम्मुख अब केवल एक ही उपाय है, वे अपने देश को वापस लौट जाएँ और इस कपटी ब्राह्मण का साथ छोड़ दें। बहुत-से सेनानायकों को इस बात में कोई भी सन्देह नहीं रहा कि पर्वतक की हत्या आचार्य विष्णुगुप्त द्वारा ही कराई गई थी। वे केकय-शिविर के एक गुप्त कक्ष में एकत्र हुए, और इस प्रकार बातचीत करने लगे—

'सेनानायको! अब आपका क्या विचार है? केकय से इतनी दूर पाटलिपुत्र आकर हम लोग तो घोर संकट में पड़ गए हैं।' सेनापति व्याघ्रपाद ने कहा।

'मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि विष्णुगुप्त केकय के राजकुल का ही अन्त कर देना चाहता है। हमें अब महाराज पर्वतक के पुत्र कुमार मलयकेतु की रक्षा का प्रयत्न करना चाहिए। कहीं ऐसा न हो, कि वह भी विष्णुगुप्त के कुचक्र का शिकार हो जाए। हमें तुरन्त राजगृह लौट जाना चाहिए।' एक सेनानायक ने उत्तर दिया।

'पर यदि चन्द्रगुप्त की स्रुघ्न सेना ने हमारे मार्ग को रोकने का प्रयत्न किया, तो क्या होगा? वाहीक देश के अन्य अनेक जनपदों के सैनिक भी हमारे विरुद्ध उठ खड़े होंगे।'

श्रेष्ठी शुभकर्ण भी इस मण्डली में बैठा हुआ था। उसने कहा—'यदि आप मुझे अनुमति दें, तो मैं भी कुछ निवेदन करूँ। महाराज पर्वतक की मुझ पर बड़ी कृपा थी। मैं तो यह आशा लगाए हुए था कि पर्वतक मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होंगे और मुझे पाटलिपुत्र के जगत्सेठ का पद मिलेगा।'

'हाँ, हाँ, तुम भी अपनी बात कहो।' व्याघ्रपाद ने आदेश दिया।

'सेनानायको ! मैं राजनीति की बातें क्या जानूं। पर अपने सार्थ के साथ चम्पा, पाटलिपुत्र, काशी, कौशाम्बी आदि सब जगह घूम आया हूँ। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों से मेरी जान-पहचान है। इसीलिए राजनीति के भी कुछ अक्षर सीख गया हूँ। मेरी सम्मति में इस समय पाटलिपुत्र से वापस लौट जाना उचित नहीं होगा। क्यों न हम आचार्य वक्रनास से मिल जाएँ। जब चन्द्रगुप्त की सेना मगधराज नन्द को परास्त कर पाटलिपुत्र में प्रवेश करने लगे, तो केकय देश की सेना उस पर आक्रमण कर दे। विष्णुगुप्त को इसका कुछ भी पता न लगने पाए। चन्द्रगुप्त और स्रुघ्न देश की उसकी सेना के नष्ट हो जाने पर ही कुमार मलयकेतु मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ हो सकते हैं।'

'पर इससे तो नन्दकुल की रक्षा हो जाएगी। मलयकेतु किस प्रकार मागध सम्राट् बन सकेंगे ? नन्दकुल के विनाश के लिए तो यह आवश्यक है कि हम चन्द्रगुप्त का साथ दें।'

'नहीं, सेनापति ! आचार्य वक्रनास को सुमाल्य नन्द से जरा भी स्नेह नहीं है। नन्द रात-दिन नाच-रंग में मस्त रहता है। राज्यकार्य का उसे जरा भी ध्यान नहीं है। वक्रनास को मैं खूब जानता हूँ, कितनी बार अपना पण्य उन्हें बेच चुका हूँ। वे नन्द से स्वयं परेशान हैं। वे कुमार मलयकेतु को मगध का सम्राट् बनाने के विचार का अवश्य स्वागत करेंगे।'

'पर इस विषय में हमें आचार्य इन्द्रदत्त से भी परामर्श कर लेना चाहिए।' व्याघ्रपाद ने कहा।

'नहीं, सेनापति ! इन्द्रदत्त विष्णुगुप्त के सखा और सहपाठी हैं। वे किसी ऐसे कार्य के लिए उद्यत न होंगे, जिससे विष्णुगुप्त की योजना में बाधा उपस्थित होती हो।'

'श्रेष्ठी शुभकर्ण ठीक कहते हैं। महाराज पर्वतक की हत्या केकय जनपद का अपमान है। इसका बदला लेना हमारा कर्तव्य है। मैं शुभकर्ण के विचार का समर्थन करता हूँ।' एक सेनानायक ने कहा।

'आप वक्रनास से किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करेंगे ?' व्याघ्रपाद ने पूछा।

'गृह-कपोतों द्वारा। मैं आज ही केकय सेना के सेनापति का सन्देश वक्रनास के पास पहुँचा दूंगा। उनका उत्तर भी मुझे गृह-कपोतों द्वारा मिल जाएगा।'

जिस समय केकय के सेनापति श्रेष्ठी शुभकर्ण के साथ गूढ़मन्त्रणा में

व्यग्र थे, आचार्य विष्णुगुप्त भी शान्त नहीं बैठे थे। वे भलीभाँति समझ गए थे कि वक्रनास के बहुत-से सत्री वाहीक सेना के स्कन्धावार में पहुंच गए हैं, और पर्वतक की हत्या उन्हीं के कुचक्र का परिणाम है। केकय के सेनापतियों की मन्त्रणा का भी उन्हें परिज्ञान हो गया था। उनके सम्मुख एक विकट परिस्थिति थी। केकय देश के सेनापति विद्रोह के लिए तैयार थे, और सैनिकों में असन्तोष फैल गया था। ऐसे समय आचार्य विष्णुगुप्त ने धैर्य से काम लिया। उन्होंने तुरन्त श्रेष्ठी शुभकर्ण और उसके सत्रियों को गिरफ्तार करने का आदेश दिया, और व्याघ्रपाद आदि केकय सेनापतियों को बुलाकर उनके सम्मुख वास्तविक घटना को खोलकर रख दिया। उनके अपने सत्री कार्तान्तिक, मौहूर्तिक, कापटिक छात्र आदि के रूप में विशाल वाहीक स्कन्धावार में सर्वत्र फैल गए। सर्वसाधारण सैनिकों की विद्रोह-भावना को शान्त करना उतना सुगम नहीं था, जितना कि सेनापतियों को समझाना था। उनमें तरह-तरह की अफवाहें फैल रही थीं। कोई कहता था, आज रात को चन्द्रगुप्त द्वारा स्रुघ्न देश से एकत्र की गई सेनाएँ अकस्मात् वाहीक स्कन्धावार पर आक्रमण कर देंगी। कोई कहता था, आज रात केकय सेना के शिविर में आग लगा दी जाएगी। कोई कहता था, विष्णुगुप्त के पास एक सहस्र से भी अधिक विषकन्याएं हैं; आज रात ये पेशलरूपा दासियों का भेस बनाकर केकय के सैनिकों का मनोरंजन करेंगी। इनके विषमय कटाक्ष से जो कोई जीता बच जाए, वही सौभाग्यशाली है। इन अफवाहों को दूर करना सुगम बात न थी। पर आचार्य विष्णुगुप्त के गूढ़पुरुष और सत्री अपने काम में बड़े प्रवीण थे। साँझ के समय एक मौहूर्तिक बहुत-से शिष्यों के साथ वाहीक स्कन्धावार के मुख्य द्वार पर आया और अपना पोथी-पत्रा फैलाकर बैठ गया। सैनिकों ने उससे पूछा—'महाराज! आपका आगमन कहाँ से हुआ है?'

'मैं उज्जैन का निवासी हूँ, सेनापति!'

'मेरा भविष्य-फल तो बताइए, महाराज!'

'जन्मकुण्डली है, तुम्हारे पास?'

'नहीं महाराज! कुण्डली तो मेरे पास नहीं है। पर जन्मतिथि और जन्म-समय मुझे स्मरण है।'

'तो वही बता दो, नायक!'

सैनिक ने जन्मतिथि और समय बता दिए। मौहूर्तिक महाराज कुछ समय तक गणित का हिसाब करते रहे। फिर बोले—'बड़े भाग्यशाली हो, सेनापति! शीघ्र ही तुम मागध साम्राज्य के पूर्वी सीमान्त के प्रधान

दुर्गपाल हो जाओगे। तब तुम्हें एक हजार कार्षापण मासिक वेतन मिलेगा। तब हमें क्या स्मरण रखोगे, भाई! कभी बंग देश आना हुआ, तो अवश्य भेंट करूँगा। तब हमें भूल न जाना, भाई!'

'क्या कहते हैं, महाराज! चालीस कार्षापण वेतन प्राप्त करनेवाला यह पदाति सैनिक शीघ्र ही दुर्गपाल हो जाएगा। क्या यह भी कभी सम्भव है?'

'तुमने भाग्यफल पूछा, मैंने बता दिया। सम्भव-असम्भव मैं नहीं जानता।'

'पर यह होगा कैसे, महाराज?'

'जब नन्दकुल का नाश होकर कुमार चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट् बन जाएगा तब, और जब आचार्य विष्णुगुप्त तुम्हारी वीरता और युद्धनीति को देखकर तुमसे प्रसन्न हो जाएँगे तब।'

मौहूर्तिक ने अनेक केकय सैनिकों के सम्बन्ध में इसी प्रकार की भविष्य-वाणियाँ कीं। किसी से उन्होंने कहा, तुम दण्डनायक हो जाओगे। किसी से उन्होंने कहा, तुम रथमुख्य हो जाओगे। अपने भावी उत्कर्ष की आशा से केकय सैनिक पुलकित हो गए। वे सोचने लगे, उज्जैन के मौहूर्तिक त्रिकालदर्शी होते हैं, उनकी भविष्यवाणी कभी झूठी नहीं होती। हमारा हित इसी में है कि आचार्य विष्णुगुप्त का साथ दें, उनके विरुद्ध विद्रोह न करें।

वाहीक स्कन्धावार के जिस प्रदेश में सेनापतियों और दण्डनायकों का निवास था, वहाँ भी एक का[illegible]न्तिक बलमुख्यों को भूत और भविष्य के सम्बन्ध में बता रहे थे। एक [illegible]क ने प्रश्न किया—'महाराज! केकय-राज का घात किसने किया'

कार्त्तान्तिक महाराज द. मुहूर्त आँखें बन्द किए बैठे रहे। फिर बोले—'पाटलिपुत्र की इस ऊँची प्राचीर के परे जो वह बड़ा-सा राजप्रासाद है, वह तुम्हें नजर आता है?'

'नहीं, महाराज!'

'और उसमें जो एक सुन्दर-सा उद्यान है, वह?'

'नहीं, महाराज!'

'पर मुझे तो वे सब साफ़-साफ नजर आ रहे हैं। उस उद्यान में एक ब्राह्मण इधर-उधर टहल रहा है। क्या नाम है, उसका? हाँ, वक्रनास। उसी ने केकयराज की हत्या कराई है।'

'वह किस प्रकार, महाराज?'

'अपने एक गूढ़पुरुष को श्रेष्ठी का भेस बनाकर उसने काशी भेज दिया था। कोई श्रेष्ठी तुम्हें काशी में मिला था क्या ? बहुत बड़ा श्रेष्ठी, सार्थ का स्वामी, अत्यन्त धनवान् ? क्या उसने तुम्हें कोई भोज भी दिया था ?'

'हाँ, महाराज ! आप तो त्रिकालदर्शी हैं। श्रेष्ठी शुभकर्ण काशी से ही हमारे साथ हो लिया था।'

'वह श्रेष्ठी नहीं है, सेनापति ! वह वक्रनास का गूढ़पुरुष है, उसी वक्रनास का जो मुझे सामने टहलता हुआ नजर आ रहा है। उसी के गूढ़-पुरुष ने केकयराज की हत्या कराई है, अपनी स्त्री-सत्रियों द्वारा।'

वाहीक स्कन्धावार में एक अन्य स्थान पर एक नैमित्तिक बैठे हुए थे। सैनिकों ने उन्हें घेर रखा था। वे कह रहे थे—'तुम भविष्य की बात पूछते हो, तो सुनो। आज से एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर नन्दकुल का विनाश हो जाएगा। सारी भारत-भूमि एक शासन में आ जाएगी और आचार्य विष्णुगुप्त इस विशाल साम्राज्य के पुरोधा बनेंगे।'

'पर नन्दकुल की शक्ति तो बड़ी प्रचण्ड है, महाराज ! वाहीक सेना पाटलिपुत्र के दुर्ग में प्रवेश भी नहीं कर पाती। नन्दों का राज कैसे नष्ट हो जाएगा ?' एक सैनिक ने प्रश्न किया।

'अरे भाई ! तुम आचार्य विष्णुगुप्त की शक्ति को नहीं जानते। वह सिद्ध पुरुष है, आथवर्ण विधियों का ज्ञाता है, औपनिषदिक प्रयोगों का प्रयोक्ता है। उसके सामने कौन ठहर सकता है ? जो कोई उसका सामना करने का प्रयत्न करेगा, वह अग्नि में पड़े हुए तृण के समान क्षण-भर में भस्म हो जाएगा। तुम्हें मालूम है, वह ऐसे चूर्ण बनाता है, जिन्हें शरीर पर मल लेने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है। वह ऐसा अंजन जानता है, जिसे आँखों में डालकर मनुष्य अमावस्या के अन्धकार में भी देख सकता है। उसके अदृश्य गुप्तचर यहाँ वाहीक स्कन्धावार में, पाटलिपुत्र में, नन्द-राज के अन्तःपुर में, वक्रनास के उद्यान में सर्वत्र घूमते-फिरते रहते हैं। उन्हें कोई नहीं देख सकता, पर वे सबको देख सकते हैं। आचार्य विष्णु-गुप्त की शक्ति अद्भुत है।'

मौहूर्तिकों, कार्त्तान्तिकों और नैमित्तिकों के इस ढंग के भविष्य-वचनों का परिणाम यह हुआ कि वाहीक देश की सेना में विद्रोह और असन्तोष की जो भावना बल पकड़ने लगी थी, वह शान्त हो गई। सेनापति और दण्डनायक त्रिकालदर्शी कार्त्तान्तिक की बात सुनकर यह मान गए कि पर्वतक की हत्या वक्रनास के कुचक्र का ही परिणाम थी। सर्वसाधारण सैनिक लोग यह समझ गए कि विष्णुगुप्त का साथ देने में ही उनका हित है, उसके

विरुद्ध विद्रोह करके वे अपना ही नाश करेंगे।

अपने गुप्तचरों द्वारा वाहीक स्कन्धावार की विद्रोह-भावना को शान्त कर आचार्य विष्णुगुप्त ने इन्द्रदत्त और व्याडि से भेंट की।

'कहो, इन्द्रदत्त ! वक्रनास की कूटनीति कितनी भयंकर है। पर्वतक उसके कुचक्र में फँस गया, और जान से हाथ धो बैठा। इसका मुझे हार्दिक दु:ख है।' विष्णुगुप्त ने कहा।

'मैं भी वक्रनास के जाल में फंस गया था, आचार्य ! और सचमुच यह समझने लगा था कि आपने ही विषकन्या भेजकर पर्वतक की हत्या कराई है।' इन्द्रदत्त ने कहा।

'तो अब क्या करना चाहिए, इन्द्रदत्त !'

'पर्वतक के पुत्र कुमार मलयकेतु को यदि मगध के राजसिंहासन पर बिठाया जाए, तो बहुत उत्तम होगा, आचार्य ! इस बात की घोषणा कर देने से वाहीक सेना बहुत प्रसन्न होगी। सैनिकों का विचार है कि पर्वतक की हत्या में आपका भी हाथ है। उनका यह विचार भी दूर हो जाएगा।'

'देखो, इन्द्रदत्त ! मलयकेतु अभी किशोर आयु का है। उसे न राज्य-कार्य का अनुभव है, और न सेना के संचालन का। विशाल साम्राज्य केवल अमात्यों द्वारा शासित नहीं हो सकते। उनका सम्राट् ऐसा व्यक्ति होना चाहिए, जो स्वयं भी योग्य हो, जो अपने अमात्यों में उत्साह उत्पन्न कर सके, और जो जनता का नेतृत्व भी कर सके।'

'ऐसा व्यक्ति आपकी दृष्टि में कौन है, आचार्य !'

'कुमार चन्द्रगुप्त। उसमें अदम्य साहस है, अनुपम शौर्य है, और अपूर्व कर्तृत्व है। यदि तुम सहमत हो, तो मैं उसी को मगध के राज-सिंहासन पर आरूढ़ कराने का निर्णय करूँगा।'

'पर केकय के सैनिक इससे बहुत असन्तुष्ट होंगे, आचार्य !'

'इस महान् उद्देश्य को दृष्टि से ओझल न करो, इन्द्रदत्त ! कि हमें हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस आर्यभूमि को एक संगठन में संगठित करना है। इसके लिए यदि किसी एक जनपद के सैनिक असन्तुष्ट होते हैं, तो हमें उनके असन्तोष की कोई परवाह नहीं करनी चाहिए।'

'मैं आपका अनुगामी हूँ, आचार्य !'

देखो, इन्द्रदत्त ! अब तक मेरे सम्मुख यह समस्या थी कि पर्वतक और चन्द्रगुप्त में से कौन भारत-भूमि का सम्राट् बनने के लिए अधिक उपयुक्त है। यद्यपि मेरा झुकाव चन्द्रगुप्त की ओर था, पर मैं किसी निर्णय पर

नहीं पहुँच पाता था। पर वक्रनास के कुचक्र ने मेरी समस्या का समाधान कर दिया है। अब चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसे नन्दकुल के विनाश के बाद भारत-भूमि का सम्राट् बनाया जा सके।'

'मुझे आपकी बात स्वीकार है, आचार्य !'

(३९)

नन्दकुल का विनाश

पाटलिपुत्र के अभेद्य दुर्ग पर आक्रमण करने की सब तैयारी हो चुकी थी। शोण नदी पर बाँध बाँधकर परिखा के जल को सुखा दिया गया था। दुर्ग के महाद्वारों के सम्मुख परिखा में मिट्टी भर दी गई थी और ऊँचे-ऊँचे बुर्ज बनाकर धनुर्धर लोग उन पर तैनात कर दिए गए थे। सुरंग-मार्ग द्वारा एक सहस्र के लगभग गूढ़पुरुष और सत्री पाटलिपुत्र के मध्य में स्थित श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला में पहुँच गए थे, और वैदेहक, कर्मकर, दास आदि के भेस बनाकर पाटलिपुत्र में सर्वत्र फैल गए थे। पाटलिपुत्र में जो लोग आचार्य शकटार के प्रति अनुरक्त थे, उनके साथ इन सत्रियों ने सम्पर्क स्थापित कर लिया था। विष्णुगुप्त की योजना यह थी कि जब पाटलिपुत्र के महाद्वारों पर आक्रमण शुरू हो, तो ये सत्री नगर में अव्यवस्था मचा दें, मार-काट शुरू कर दें, और दुर्ग के रक्षक सैनिकों पर हमले प्रारम्भ कर दें।'

सुरंग-मार्ग से जो सत्री श्रेष्ठी धनदत्त की पण्यशाला में गए थे, उनमें करभिका भी थी। कुमार चन्द्रगुप्त नहीं चाहता था कि उसकी प्रेयसी पाटलिपुत्र जाकर संकट में पड़े। चन्द्रगुप्त ने उससे कहा—'करभिका ! तुम वक्रनास को नहीं जानती हो, वह बड़ा क्रूर और नृशंस व्यक्ति है। उसके चंगुल में फँसकर आज तक कोई भी नहीं बचा। तुम पाटलिपुत्र न जाओ।'

'भय और संकट किसे कहते हैं, यह तो कठ बालिकाओं ने कभी जाना ही नहीं, कुमार !'

'पर' मैं नहीं चाहता, कि तुम जान-बूझकर आग के साथ खेलो।'

'पर यह किस लिए, कुमार !'

'क्योंकि मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूँ। तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी

जीवित नहीं रह सकता।'

'पर वह प्रेम जघन्य है, जो मनुष्य को निर्बल और कायर बना दे।'

'पर यदि तुम्हें कुछ हो गया, तो मेरा क्या होगा, करभिका !'

'यदि आचार्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मेरा बलिदान हो गया, तो तुम्हें खुशी मनानी चाहिए, कुमार ! आर्य-महिला के लिए इससे अधिक गौरव की और कोई बात नहीं होती कि वह मानव-समाज के हित के लिए, देश और जाति के उत्कर्ष के लिए, अपनी बलि दे सके।'

'सच बताओ, करभिका ! यदि युद्ध में मैं मारा जाऊँ, तो क्या तुम्हें दुःख नहीं होगा ?'

'मैं सच ही कहूँगी, कुमार ! तुम्हारे सम्मुख मैं झूठ बोल ही नहीं सकती। यदि तुम युद्ध में काम आ गए, तो मैं रोऊँगी नहीं। मुझे गर्व होगा कि मेरे प्राणप्रिय ने एक उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपने जीवन की आहुति दे दी है।'

'पर तुमने मेरी बात का उत्तर नहीं दिया, करभिका ! क्या तुम्हें मेरी मृत्यु से दुःख नहीं होगा ?'

'दुःख क्यों नहीं होगा, कुमार ! पर सुख और दुःख मन की भावनाएँ हैं, कर्तव्य के सम्मुख इन भावनाओं की उपेक्षा करनी ही पड़ती है।'

'पर मुझमें तो इतना बल नहीं है, करभिका ! तुम्हारे वियोग को मैं कदापि सहन नहीं कर सकूँगा।'

'यह तुम्हारी भूल है, कुमार ! तुममें अनन्त बल है। करभिका उसी पुरुष को आत्मसमर्पण कर सकती है, जो उसकी अपेक्षा अधिक बलवान् हो। मुझे मालूम है कि तुममें कितनी शक्ति है। प्रणय के क्षणिक आवेश में आकर ही तुम मुझसे ऐसी बातें कह रहे हो।'

'तो क्या तुम सचमुच पाटलिपुत्र जाओगी, करभिका !'

'हाँ, कुमार ! मोरिय गण की राजमहिषी नन्द के बन्दीगृह में पड़ी हुई तड़प रही हैं, एक दाना अन्न के लिए, एक घूंट पानी के लिए। मैं अपनी भावी सास का आशीर्वाद प्राप्त करना चाहती हूँ, कुमार ! मुझे उन्हें बन्दीगृह से मुक्त करना है।'

'तो तुम जाओ, करभिका ! तुम सूर्य के समान हो, जिससे चन्द्र और नक्षत्र ज्योति प्राप्त करते हैं। तुम्हारे साहस और बल को देखकर मेरे हृदय में शक्ति का संचार होता है।'

सुरंग-मार्ग से जाकर करभिका ने एक योगिनी का भेस बनाया और भिक्षा-पात्र हाथ में लेकर नन्द के अन्तःपुर के सम्मुख जा खड़ी हुई। कुछ

दासियों की दृष्टि उस पर पड़ी। उन्होंने पूछा—

'भद्रे ! आप कहाँ से पधारी हैं ?'

'भगवान् जयन्त के मन्दिर से।'

'वहाँ पहले तो आपको कभी नहीं देखा।'

'मैं मन्दिर की एक कोठरी में योग-साधना में तत्पर थी। एक वर्ष की समाधि ली हुई थी। आज मेरी साधना पूरी हुई, तो भिक्षा के लिए निकली हूँ।'

'एक वर्ष की समाधि ! बाप रे बाप ! इतनी बड़ी योगिनी हैं आप?'

'हाँ, देवि ! बहुत दिन हुए एक योगी कैलाश पर्वत से पाटलिपुत्र आए थे। मैंने उनसे दीक्षा ली थी। उन्हीं के बताए जप-तप का साधन करती हूँ।'

'आपकी आयु तो बड़ी कम है, भद्रे ! इस रूप और यौवन को लेकर ऐसा विराग !'

'क्या कहूँ, देवि ! छोटी आयु में ही कुछ डाकू मुझे घर से पकड़ ले गए थे। उन्होंने मुझे दासी के रुप में बेच दिया था। दास्य जीवन से छुटकारा पाने का और कोई उपाय था नहीं, मैं योगिनी बन गई।'

'तो आप भी दासी हैं ?'

'हाँ, देवि ! कभी दासी थी, अब तो योगिनी हूँ।'

'तब तो आप भी हममें से ही हैं। हमारे साथ अन्दर चलिए। नन्दराज के अन्तःपुर में भोजन की कोई कमी नहीं है।'

दासियों के साथ करभिका नन्द के अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गई। आन्तर्वंशिक सैनिकों को उस पर जरा भी सन्देह नहीं हुआ। उसके रूप और यौवन को देखकर सैनिक लोग आपस में मजाक करने लगे। एक ने कहा—'यदि इसे सजा-सँवारकर महाराज के पास भेज दिया जाए, तो खूब इनाम मिले। ऐसी सुन्दरी तो बहुत दिनों से नहीं देखी। जब से पाटलिपुत्र के कपाट बन्द हुए हैं, सुन्दरियों का मिलना कठिन हो गया है। महाराज इससे बहुत दुखी हैं।'

'पर यह तो योगिनी है, भाई ! रूप और यौवन से ही क्या होता है ? इसमें वे गुण कहाँ, जिनसे नन्दराज प्रसन्न हों ! उन्हें तो ऐसी सुन्दरी चाहिए, जो नाचे, गाए, पिए, पिलाए।'

'तो फिर इसे अपने लिए ही रख लो। बहुत दिनों बाद ऐसी सुन्दरी दिखाई दी है।'

'पर भाई, पहले आन्तर्वंशिक से अनुमति ले लो। आजकल उनकी

मुख-मुद्रा बहुत कठोर रहती हैं।'

'पर यदि वे स्वयं इस पर रीझ गए तो ?'

'कम-से-कम किसी संकट में तो नहीं पड़ेंगे, भाई! यदि वे स्वयं रीझ गए, तो भी हमारी क्या हानि है ?'

सैनिकों द्वारा सूचना पाकर आन्तर्वंशिक ने करभिका को बुलाया। उसके रूप और यौवन को देखकर उसकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही। सुमाल्य नन्द उन दिनों बहुत असन्तुष्ट रहते थे, क्योंकि बहुत दिनों से कोई नई सुन्दरी उनके मनोरंजन के लिए पेश नहीं की जा सकी थी। आन्तर्वंशिक ने सोचा, आज सम्राट् को प्रसन्न करने का यह सुवर्णीय अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए।

'क्यों भद्रे! योगिनी का यह भेस तुमने कब से बनाया है ?' आन्तर्वंशिक ने प्रश्न किया।

'तीन साल हुए, जब मैंने दीक्षा ली थी, अमात्य!'

'सुना है, उससे पहले तुम दासी थी।'

'झूठ नहीं बोलूँगी, अमात्य! पाटलिपुत्र के एक श्रेष्ठी के पास मैं दासीरूप में रहा करती थी।'

'तब तो तुम कुछ नाचना-गाना भी जानती होगी ?'

'हाँ, अमात्य! श्रेष्ठी लोग मन्त्रमुग्ध हो मेरा शिल्प देखा करते थे।'

'भद्रे! अब तो तुम योगिनी हो। रस, गन्ध, स्पर्श सब पर तुमने विजय पा ली है ?'

'प्रयत्न तो इसी बात का है, अमात्य!'

'यदि तुम्हें कोई स्पर्श करे, तो कैसा अनुभव करोगी, भद्रे!'

'जैसे कोई लोष्ठ या काष्ठ मुझे स्पर्श कर रहा हो।'

'तो फिर एक काम करो, योगिनी! आज सम्राट् की सेवा करो, ठीक उस तरह जैसे कभी तुम अपने श्रेष्ठी की सेवा किया करती थीं। समझ गई ?'

'यह मार्ग तो पतन का है, अमात्य!'

'अरे योगिनी के लिए पाप-पुण्य क्या? वह तो इन सब से ऊपर उठ जाती है। किसी पुरुष का स्पर्श कर तुम्हारा तो कुछ बिगड़ेगा नहीं, मेरा कल्याण हो जाएगा। सम्राट् मुझसे बहुत अप्रसन्न हैं। तुम समझ लेना, किसी प्रस्तर-शिला के साथ पड़ी हो।'

'यदि ऐसी बात है, तो मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार है। इस तन से

किसी का कल्याण हो जाए, तो मुझे सन्तोष होगा।'

अन्त:पुर की दासियों ने गरम जल से करभिका को स्नान कराया, उसके भस्म से विभूषित देह को मल-मलकर साफ किया। सुगन्धित तैल लगाकर उसके केशों का शृंगार किया। फिर बहुमूल्य कौषेय वस्त्र धारण कराके उसे सुमाल्य नन्द की सेवा में उपस्थित कर दिया गया। बहुत दिनों के बाद एक अनिन्द्य सुन्दरी को अपने पार्श्व में देखकर नन्द का चित्त प्रसन्न हो गया। करभिका नृत्य में प्रवीण थी, पुरुषों को रिझाने की कला में वह भी निपुण थी। नन्द उसे देखकर अपनी सुध-बुध भूल गया। वह उसे अपने अंक में भरने ही वाला था कि करभिका ने शय्या के पास रखे हुए एक मदिरा-कुम्भ को उठा लिया और उसे नन्द के सिर पर दे मारा। शुद्ध चामीकर के बने हुए भारी कुम्भ की एक चोट से ही नन्दराज का काम तमाम हो गया, और वह शय्या पर एक ओर लुढ़क गया। कुछ देर तक करभिका पहले के समान ही नाचती और गाती रही, ताकि बाहर खड़े सत्रियों और सैनिकों को कोई सन्देह न हो। दो प्रहर रात बीत जाने पर वह नन्द के शयन-गृह से बाहर निकली और आन्तर्वंशिक सैनिकों से बोली—'महाराज अब आराम से सो रहे हैं, उन्हें अभी मत जगाना। मेरे साथ के योगी भगवान् जयन्त के मन्दिर में मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। अब मैं चली, कहीं उन्हें सन्देह न हो जाए।'

सैनिकों ने करभिका से कहा—'इस समय बाहर मत जाओ, भद्रे! पाटलिपुत्र पर शत्रुओं का आक्रमण हो रहा है। नगर में भी मार-काट मची हुई है। न मालूम, शत्रुओं के सैनिक नगर में कैसे प्रविष्ट हो गए हैं। यह रात यहीं बिताओ, बाहर जाकर संकट में फँस जाओगी।'

करभिका अभी प्रतीक्षा ही कर रही थी कि नन्द के राजप्रासाद और अन्त:पुर पर आक्रमण हो गया। आन्तर्वंशिक सैनिक मुख्य द्वार पर लड़ने के लिए चले गए। अन्त:पुर में सन्नाटा छा गया। उपयुक्त अवसर देखकर करभिका अन्त:पुर के उस गुप्त बन्दीगृह की ओर चली, जहाँ मोरियगण की राजमहिषी मुरा देवी कैद थीं। वहाँ पहुँचने में उसे कोई कठिनाई नहीं हुई, क्योंकि अन्त:पुर के सब प्रहरी इस समय बाहर के द्वार पर युद्ध में तत्पर थे। मुरा देवी प्रस्तर-शिला पर लेटी हुई थी, भूख और प्यास से उसका शरीर क्षीण हो गया था। करभिका ने अपना सिर उसके चरणों में रख दिया और कहा—'मागध सम्राट् की राजमाता की जय हो। दासी आपको प्रणाम करती है।'

'यह क्या कहती हो, भद्रे! मैं तो नन्द के अन्त:पुर की दासी हूँ।'

'नहीं, माँ, आपके दास्य जीवन के दिन अब समाप्त हुए। कुछ दिन बाद कुमार चन्द्रगुप्त मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होंगे। नन्दकुल का विनाश हो गया है, माँ!'

'इस आनन्द को सहन कर सकना मेरे लिए असम्भव है। तुम कौन हो, भद्रे!'

'मैं हूँ आपकी पुत्रवधू, करभिका।'

'क्या कहा, पुत्रवधू! कहाँ है, मेरा वत्स चन्द्रगुप्त?'

'माँ, चन्द्रगुप्त का प्रणाम स्वीकार हो।' कुमार चन्द्रगुप्त ने तेजी के साथ बन्दीगृह में प्रवेश किया। वह माँ के चरणों से लिपट गया और माता और पुत्र दोनों की आँखों से अश्रुधारा बह चली।

मुरा देवी ने अपने को सँभाला और कहा—'मेरी आँखों की ज्योति क्षीण हो गई है, कुछ सूझ नहीं पड़ता। आओ, बहू, मेरे पास आकर खड़ी हो जाओ। तुम दोनों की जोड़ी को आशीर्वाद तो दे दूँ। आओ, पास आ जाओ। वत्स चन्द्रगुप्त! कहाँ की है यह बहू, किस कुल की है?'

'वाहीक देश के कठ गण की, माँ! रति जैसी सुन्दर और दुर्गा जैसी वीर। नन्द की हत्या कर इसने तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध कर दिया है, माँ!'

'क्या कहा, मेरी बहू ने उस नर-राक्षस का संहार किया है। यह तो सचमुच असुर-विमर्दिनी दुर्गा है। आओ, बहू! मेरे पास चली आओ।'

भूख और प्यास के मारे मुरा देवी की देह क्षीण हो गई थी। आनन्द और उल्लास के इस अतिरेक को वह नहीं सह सकी। वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी और उसके प्राण नश्वर देह को छोड़ गए। माँ के मृत शरीर को देख-कर चन्द्रगुप्त हाहाकार कर उठा। करभिका ने उसे सान्त्वना दी। कुछ समय बाद स्वस्थ होकर चन्द्रगुप्त ने कहा—'यह तो भारी अपशकुन है, करभिका! माँ का आशीर्वाद हमें प्राप्त नहीं हो सका।'

सुबह हो गई थी। वाहीक देश और स्रुघ्न के सैनिक धूमधाम के साथ पाटलिपुत्र में प्रवेश कर रहे थे। आचार्य विष्णुगुप्त और कुमार चन्द्रगुप्त की जय-जयकार से आकाश गूँज रहा था। पर स्रुघ्न सेनाओं का वीर सेनापति मगध के अन्तःपुर के बन्दीगृह में अपनी माता के शव के पास बैठा हुआ करुण रुदन कर रहा था। साथ में बैठी हुई करभिका उसे सान्त्वना दे रही थी।

(४०)

आचार्य विष्णुगुप्त का उपदेश

नन्दकुल के विनाश से आचार्य विष्णुगुप्त की प्रतिज्ञा पूरी हो गई थी। यवनराज सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के समय उन्होंने जो स्वप्न लिया था, वह भी अब पूर्ण हो गया था। हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण आर्यभूमि एक शासन में आ गई थी। कुभा नदी से लेकर पूर्वी समुद्र तक के सब भारतीय जनपद मगध के राजा चन्द्रगुप्त को अपना सम्राट् स्वीकार करने लगे थे। पाटलिपुत्र में चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। उसके राजसिंहासन पर आरूढ़ होने से पूर्व आचार्य विष्णुगुप्त ने उसे एक उपदेश दिया, और उससे यह आशा प्रकट की, कि वह इस उपदेश के अनुसार ही आर्यभूमि का शासन करने का प्रयत्न करेगा। उपदेश के समय शकटार, इन्द्रदत्त, व्याडि आदि सभी प्रमुख राजनेता आचार्य की पर्णकुटी में उपस्थित थे। विशाल मागध साम्राज्य के निर्माता आचार्य विष्णुगुप्त अब भी एक पर्णकुटी में ही निवास करते थे। राजप्रासाद के बाहर एक खुले मैदान में यह कुटी बना ली गई थी।

आचार्य विष्णुगुप्त कुशासन पर बैठे हुए थे। उन्होंने शान्त गम्भीर वाणी से कहना शुरू किया—

'वत्स चन्द्रगुप्त! अब तुम शीघ्र भारत-भूमि के एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्-पद को प्राप्त करोगे। इस आर्यभूमि की रक्षा और उन्नति का उत्तरदायित्व तुम्हारे कन्धों पर होगा। नन्दकुल का विनाश कर सम्राट्-पद के लिए मैंने तुम्हें इसलिए चुना है, क्योंकि तुम वीर हो, तुम्हारी आकांक्षाएँ महान् हैं, और तुममें उद्दण्ड साहस है। पर तुम यह भली-भाँति समझ लो कि यह ऐश्वर्य और वैभव भोग-विलास के लिए नहीं है। राजा के लिए पहली आवश्यक बात यह है कि वह इन्द्रियजयी हो। इन्द्रियजयी तुम तभी हो सकते हो, जब काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, मद और हर्ष का पूर्ण रूप से त्याग कर दो। सम्पूर्ण दण्डनीति-शास्त्र का सार यही है, कि तुम अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो। इसका उपाय यह है, कि तुम विनय (नियन्त्रण) में रहो और निरन्तर विद्या के अभ्यास में तत्पर रहो। कितने ही शक्तिशाली राजा इसलिए नष्ट हो गए, क्योंकि वे इन्द्रियजयी नहीं थे। दाण्डक्य नाम का भोज (राजा) कामी था। उसने काम के वशीभूत होकर एक ब्राह्मण-कन्या पर अत्याचार किया। परिणाम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह हुआ कि अपने बन्धु-बान्धवों के साथ उसका विनाश हो गया। राजा जनमेजय क्रोध के वशीभूत था। वह क्रोध के कारण ही नष्ट हो गया। सौवीर राजा अजविन्दु बड़ा लोभी था। लोभ के वशीभूत होकर उसने चारों वर्णों का शोषण करने का प्रयत्न किया, और इसी कारण उसका विनाश हो गया। राजा दुर्योधन बड़ा अभिमानी था। अपने बन्धु पाण्डवों को राज्य का एक अंश भी वह देने को तैयार नहीं हुआ। इसी से उसका नाश हो गया। और कितने उदाहरण दूं। तुम समझदार हो, तक्षशिला में रहकर तुमने दण्डनीति का अध्ययन किया है। तुम इन राजाओं के पतन से शिक्षा लो। इसी नन्दकुल को देखो, काम और मद के वशीभूत होने के कारण ही तो इसका विनाश हुआ। तुम इन्यिद्रजयी बनो। काम, क्रोध, आदि छह शत्रु हैं, जिन्हें जीतना प्रत्येक राजा के लिए आवश्यक होता है। तुम कभी किसी पर-स्त्री की ओर आँख न उठाओ। किसी दूसरे के धन को अन्याय से लेने का प्रयत्न न करो। ऐसे अर्थ से दूर रहो, जो अधर्म से युक्त हो, और ऐसा व्यवहार न करो, जो अर्थनीति के विरुद्ध हो।

'यह न समझो कि तुम सर्वज्ञ हो। राजशक्ति को पाकर मनुष्य मद-मस्त हो जाता है, अन्धा हो जाता है। तुम सदा बड़ों का संग करो। तुम्हारे राज्य में जो भी विद्वान् आचार्य हों, कुलमुख्य हों, जनपदों और गणों के वृद्ध नेता हों, उनकी सम्मति को ध्यान से सुनो, उनके विचारों का आदर करो और उनकी प्रज्ञा के सम्मुख अपनी बुद्धि को उत्कृष्ट न समझो। तुम्हारी आँखें वे गुप्तचर हैं, जो राज्य में सर्वत्र नियुक्त हैं। उनकी आँखों से देखो। तुम सदा उत्थानशील रहो। राज्य का योग और क्षेम तुम्हारा मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। पर यह तभी सम्भव होगा, जब तुम स्वयं सदा उत्थानशील रहोगे। यह मत भूलो कि यदि राजा उद्यमी होता है, तो कर्मचारी भी उद्यमी होते हैं। यदि राजा प्रमाद करने लगता है, तो कर्मचारी भी उसका अनुसरण कर प्रमादी हो जाते हैं। जनता का योग-क्षेम तुम तभी कर सकते हो, जब कि सब मनुष्य अपने-अपने धर्म में स्थिर रहें। प्रजा को स्वधर्म में स्थिर रखना तुम्हारा मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। सब लोग अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें, तभी राज्य की उन्नति होगी। पर अन्य लोग उसी दशा में अपने कर्तव्यों का पालन करेंगे, जब तुम उत्साह और उद्यम के साथ कर्तव्य-पालन में तत्पर रहोगे।

'मनुष्यों के लिए धर्म, अर्थ और काम तीनों की आवश्यकता है। मनुष्य न धन के बिना रह सकता है, और न काम के बिना। मानव-जीवन के लिए धन अनिवार्य है, क्योंकि शरीर और मन की स्थिति और उन्नति के

लिए जिन साधनों की आवश्यकता है, वे धन से ही प्राप्त होते हैं। अतः धन या अर्थ की उपलब्धि से जनता को विमुख न होने दो। काम का भी मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुखविहीन तापस जीवन मानव-समाज के हित और कल्याण में बाधक है। पर यह ध्यान में रखो, कि अर्थ और काम धर्म के विपरीत नहीं होने चाहिएँ। अर्थ और काम का उसी अंश तक सेवन करो, जहाँ तक वे धर्म के विरुद्ध न हों। धर्म, अर्थ और काम अन्योन्यानुबन्ध हैं, अन्योन्याश्रित हैं। यदि उनमें से किसी एक की भी उपेक्षा की जाए, तो उससे व्यक्ति और समाज दोनों को हानि पहुँचती है।

'जन-समाज तभी मर्यादा में रह सकेगा, जब वह धर्म, अर्थ और काम का समान रूप से पालन करेगा। तुम्हारा मुख्य कर्तव्य यही है कि तुम जनता को मर्यादा में रखो। कोई मनुष्य केवल धर्म के अनुसरण की धुन में अर्थ और काम की उपेक्षा न कर दे और साथ ही कोई मनुष्य अर्थ या काम के पीछे पड़कर धर्म को न भूल जाए। पर तुम अपने इस मुख्य कर्तव्य का पालन तभी कर सकोगे, जब तुम निरन्तर उत्तिष्ठमान रहोगे, सदा उद्यमशील रहोगे। राजा बनकर तुम्हें भोग-विलास में नहीं फँसना है, तुम्हें अपने को कठोर नियन्त्रण में रखना है। तुम भारत के राजर्षियों का अनुकरण करने का प्रयत्न करो। मैं तुम्हें बताता हूँ, कि रात और दिन के प्रत्येक क्षण का तुम्हें किस प्रकार से उपयोग करना है। दिन और रात दोनों को आठ-आठ नालिकाओं या भागों (नालिका = १$\frac{1}{2}$ घण्टा) में विभक्त कर प्रत्येक भाग का उपयोग एक सुनिश्चित ढंग से करो। दिन के पहले आठवें भाग में राज्य की रक्षा के उपायों और राजकीय आय-व्यय का चिन्तन करो। इस समय में अपने अमात्यों को पास बुलाकर उनसे राज्य के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया करो। दिन के दूसरे भाग में पौरों और जनपदों की समस्याओं पर विचार करो। तुम्हारे राज्य में कितने ही पुर और कितने ही जनपद हैं। उन सब की समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं। उन पर ध्यान देने में इस समय का उपयोग करो। दिन के तीसरे भाग में स्नान आदि नित्य कर्मों से निवृत्त होकर भोजन करो, और इससे जो समय बचे, उसे स्वाध्याय में लगाओ। चौथे भाग का उपयोग तुम राज्य के विविध अध्यक्षों से मिलने और राज्यकोष की वृद्धि के उपायों पर विचार करने में करो। दिन के पाँचवें भाग में मन्त्रिपरिषद् से परामर्श करो। गुप्तचर जो समाचार दें, उन्हें सुनने और उन पर विचार करने के लिए भी यही समय है। छठे भाग में तुम अपनी इच्छा के अनुसार

मनोरंजन कर सकते हो, पर यदि आवश्यकता हो, तो यह समय भी राज्य-कार्य के चिन्तन में लगाओ। दिन के सातवें और आठवें भाग को तुम युद्ध-सामग्री और सेना के निरीक्षण, उन्नति और वृद्धि के उपायों पर विचार करने में व्यतीत करो। हस्तिसेना, अश्वसेना, रथसेना और पदाति-सेना के अध्यक्षों, आयुधागाराध्यक्ष और सेनापति के साथ इस समय में मन्त्रणा करो। यह ध्यान में रखो कि तुम्हारे विशाल साम्राज्य की रक्षा और स्थिति सेना पर ही निर्भर है। अतः उसकी उन्नति के उपायों पर विचार करने के लिए दिन के दो भाग (तीन घण्टे) व्यतीत करो। दिन की समाप्ति होने पर सन्ध्याकाल में सन्ध्या और पूजन करो। रात शुरू होने पर उसके पहले भाग में गूढ़पुरुषों से मिलो। राज्य की रक्षा के लिए गूढ़पुरुषों और सत्रियों का बड़ा महत्त्व है। मन्त्र-युद्ध शस्त्र-युद्ध की अपेक्षा कम महत्त्व का नहीं होता। रात के दूसरे भाग में नित्यकर्मों से निवृत्त होकर भोजन करो। भोजन के बाद तुरही के निनाद के साथ अपने शयन-गृह में प्रवेश करो और शय्या पर लेट जाओ। चौथे और पाँचवें भाग को सोने में व्यतीत करो। विश्राम और शयन के लिए तीन नालिका (साढ़े चार घण्टे) से अधिक समय न लगाओ। रात के छठे भाग में शय्या से उठकर शास्त्रों का अनुशीलन करो और अपने कर्तव्य एवं अकर्तव्य पर विचार करो। सातवें भाग में राज्यकार्य के सम्बन्ध में परामर्श करो। रात्रि की समाप्ति पर प्रातःकाल का उपयोग ऋत्विग्, आचार्य और पुरोहित के साथ स्वस्तिवाचन, यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों के लिए करो। इस प्रकार रात और दिन का तुम्हारा एक-एक क्षण उत्थान, उद्योग और कार्य-चिन्तन में व्यतीत होना चाहिए। भोग-विलास और नाच-रंग का तुम्हारे जीवन में कोई स्थान नहीं है। यदि तुम उत्थान के लिए प्रयत्नशील न होगे, तो तुम्हारा विनाश निश्चित है। इसके विपरीत यदि तुम निरन्तर उद्यम और उत्थान में तत्पर रहे, तो सब अर्थ और सम्पदा तुम्हें प्राप्त हो जाएँगी।

'तात चन्द्रगुप्त ! अब तुम शीघ्र मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होने वाले हो। यह इतना विशाल साम्राज्य तुम्हारे अकेले के प्रयत्न और उद्यम से स्थिर तथा सुरक्षित नहीं रह सकता। इसके लिए तुम्हें अपने अमात्यों की सहायता पर निर्भर रहना होगा। जनता की सहायता और सहयोग भी तुम्हें प्राप्त करने होंगे। इसके लिए तुम आर्यभूमि के विविध जनपदों के परम्परागत धर्म, चरित्र, व्यवहार आदि का आदर करो। उनके अपने शासन को नष्ट न करो। यह मत भूलो कि जनता की शक्ति संसार की सबसे बड़ी शक्ति है, और जनता के कोप से बढ़कर अन्य

कोई कोप नहीं होता। अतः तुम जनता को अपने प्रति अनुरक्त रखो। भारत के एक शासन-सूत्र में संगठित हो जाने से जनता यह अनुभव न करे, कि शासन में अब उनकी कोई आवाज नहीं रही। विविध जनपदों की पृथक् सत्ता को कायम रहने दो, उन्हें अपना शासन स्वयं करने दो। तुम उनके सहयोग और प्रीति को महत्त्व दो। इस सम्बन्ध में आचार्य शकटार जैसे योग्य अमात्य तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे। मैंने तुम्हारा ध्यान उन कर्तव्यों की ओर आकृष्ट कर दिया है, जिन्हें तुम्हें सदा अपने सम्मुख रखना है। तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारे द्वारा इस आर्यभूमि का हित और कल्याण हो।'

चन्द्रगुप्त को आदेश देने के बाद आचार्य विष्णुगुप्तने शकटार से कहा—'आचार्य! अब मेरा काम समाप्त हो गया है। जिस महान् उद्देश्य को सम्मुख रखकर मैंने तक्षशिला के अपने आश्रम से बिदा ली थी, वह अब पूर्ण हो गया है। मैं चाहता हूँ, अब फिर तक्षशिला वापस लौट जाऊँ। मेरे शिष्य वहाँ मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। मेरी इच्छा है, आप भारत के महामन्त्री पद को सँभाल लें।'

'पर आचार्य! मेरी दशा तो अब एक जीवन्मृत के समान है। शरीर से मैं जीवित हूँ, पर मेरा मन मर गया है। पार्वती और बच्चों को देखने की आशा से ही मैं अब तक जीवित था। पर जब से मैंने बन्दीगृह में सड़ती हुई उनकी लाशों को देखा है, मैं अपनी सब सुध-बुध खो बैठा हूँ। राज्य-कार्य का संचालन अब मुझसे नहीं हो सकेगा, आचार्य! अब तो मेरी यही इच्छा है कि वन में जाकर तपस्या में अपना शेष जीवन बिता दूँ। ऋषियों और आचार्यों की यही मर्यादा प्राचीनकाल से आर्य-जाति में चली आ रही है। मैं अब उसी का पालन करना चाहता हूँ।'

'तो फिर चन्द्रगुप्त को मार्ग-प्रदर्शन कौन करेगा, शकटार?'

'क्या वक्रनास महामन्त्री का पद स्वीकार नहीं कर सकते? वे चतुर राजनीतिज्ञ हैं।'

'नहीं, शकटार! वक्रनास ने औशनस नीति के जिस स्वरूप को अपनाया था, वह अत्यन्त विकृत है। राजा को भोग-विलास में फँसाकर उसे कर्तव्य-विमुख कर देना कितनी भयंकर बात है। मैं चन्द्रगुप्त को उसके सुपुर्द करना उचित नहीं समझता।'

'क्या आचार्य इन्द्रदत्त यह भार नहीं सँभाल सकते?'

'उन्हें अभी वाहीक देश में बहुत कार्य करना है। मेरी सम्मति में

उनका कार्यक्षेत्र मगध नहीं है। वाहीक देश को उनकी सेवाओं की अभी बहुत आवश्यकता है।'

'मगध के पुराने अमात्यों में आचार्य राक्षस बड़े अनुभवी और योग्य हैं, वे कितने ही उच्च राजकीय पदों पर रह चुके हैं। महापद्म नन्द के समय में वही मेरे प्रधान सहयोगी थे। यदि वे महामन्त्री-पद स्वीकार कर लें, तो बहुत अच्छा होगा।'

'हाँ, मैं उनकी नीतिज्ञता और कार्य-कुशलता का आदर करता हूँ। पर मैंने सुना है कि नन्दकुल के प्रति उनका बहुत अनुराग है। नन्दों के नाश से वे बहुत दुखी हैं। क्या वे चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनना स्वीकार कर लेंगे।'

'आपकी जिस नीति-शक्ति ने वाहीक देश को यवनों की अधीनता से मुक्त किया और नन्दकुल का विनाश किया, वह क्या अमात्य राक्षस को वश में नहीं ला सकेगी, आचार्य ?'

'तो यही सही, शकटार। अभी मेरा कार्य पूर्ण नहीं हुआ है। राक्षस को चन्द्रगुप्त का महामन्त्री बनाकर ही मैं तक्षशिला वापस जाऊँगा।'

'इस विस्तीर्ण आर्यभूमि की रक्षा और उन्नति के कार्य को आप ही क्यों नहीं सँभालते, आचार्य ! आपने सदा यह प्रतिपादित किया है कि राज्य में राजा की स्थिति 'ध्वजमात्र' होती है। असली शक्ति उन मन्त्रियों के हाथों में रहती है, जो जनता के विचारों को दृष्टि में रखकर राज्य का संचालन करते हैं। इस कार्य के लिए आपसे अधिक योग्य और समर्थ अन्य कौन हो सकता है, आचार्य ?' चन्द्रगुप्त ने विनयपूर्वक कहा।

'पर तात ! राज्य के महामन्त्री के कार्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मुझे करना है। यह कार्य है, ज्ञान के विस्तार का, शास्त्रों के उद्धार का। मानव-समाज का वास्तविक रूप से संचालन वे विचार करते हैं, जिन्हें विद्या के उपार्जन में लगे हुए विद्वान् व अध्यापक प्रतिपादित करते हैं। इस आर्य-भूमि को ही देखो। इसमें कैसे अद्भुत विचार इस समय प्रचारित हो रहे हैं। छोटे-छोटे बालक भिक्षुओं के पीत वस्त्र धारण कर पण्यवीथियों में फिरते दिखाई देते हैं, हाथों में भिक्षापात्र लिए हुए। वे समझते हैं, यह भिक्षु-जीवन मानव-समाज के हित और कल्याण के लिए है। जनता भी उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। किस लिए ? क्योंकि स्थविरों और भिक्षुओं ने उदास्थित और परिव्रजित जीवन के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न कर दिया है। विचार ही ऐसी शक्ति है, जो समाज का संचालन करती है। उत्तम विचार मनुष्य-समाज को उच्चता की ओर ले जाते हैं, और निकृष्ट

विचार उसे नीचे गिरा देते हैं। भिक्षुओं और साधुओं के पीछे चलकर आर्यजाति की अधोगति हो रही है। भिक्षु-जीवन उत्तम है, संन्यासी समाज के शिरोमणि होते हैं, पर समाज के सभी अंगों को सबल होना चाहिए। वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-मर्यादा आर्यजाति के सामाजिक संगठन के आधार हैं। यदि चारों वर्ण और चारों आश्रम अपने-अपने स्वधर्म का पालन करें, तभी समाज का कल्याण सम्भव है। मनुष्य ब्रह्मचर्य और गृहस्थ का जीवन बिताने के बाद ही वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में प्रवेश करें, पहले नहीं। मुझे आर्यों की इसी मर्यादा को पुनः स्थापित करना है। यवनों को परास्त कर और सम्पूर्ण भारत-भूमि को एक शासन की अधीनता में लाकर मैंने आर्यजाति की शस्त्र-शक्ति का पुनरुद्धार कर दिया है, पर अभी आर्यों की शास्त्र-शक्ति के पुनरुद्धार करने का कार्य शेष है। अब मैं इसी कार्य में लगना चाहता हूँ।'

'आपका उद्देश्य अत्यन्त महान् है, आचार्य ! पर क्या मैं भी इसमें सहायक हो सकता हूँ ?'

'क्यों नहीं, तात ! जनता को स्वधर्म में स्थापित रखना राजा का परम कर्तव्य है। तुम्हें अपने राजशासन द्वारा यह व्यवस्था अवश्य करनी चाहिए, कि कोई व्यक्ति अपने 'स्वधर्म' का उल्लंघन न करे, और जिस मनुष्य की आयु जिस आश्रम के उपयुक्त है, वह उसी के धर्म का पालन करे। इसके लिए तुम्हें राजशक्ति का भी उपयोग करना होगा, तात !'

'आपके आशीर्वाद से मैं आपके उद्देश्य की पूर्ति में अवश्य सहायक हो सकूंगा, आचार्य !'

(४१)

पश्चिम में युद्ध के बादल

रात का समय था। सब ओर चाँदनी छिटक रही थी। चन्द्रमा की शीतल ज्योत्स्ना में स्नान कर राजप्रासाद के विशाल उद्यान ने अनुपम शोभा धारण कर ली थी। सब ओर सन्नाटा था। ऐसे समय एक पुरुष और एक स्त्री उद्यान के मध्य में स्थित सुविस्तीर्ण जलाशय के साथ-साथ धीरे-धीरे भ्रमण कर रहे थे। उनके हाथ एक-दूसरे की बगल में थे और वे प्रेम में मस्त हो धीरे-धीरे बातचीत में संलग्न थे।

'क्यों करभिका, अब तुम कब तक मुझे इसी तरह तरसाती रहोगी ?'

'अब तो तुम्हारा राज्याभिषेक होनेवाला है। शीघ्र ही तुम मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होगे। एक-से-एक बढ़कर सुन्दरियाँ तुम्हारी चरण-सेवा के लिए उत्सुक होंगी। तब तुम इस करभिका को भूल जाओगे। छोटे-से कठ गण की इस अकिंचन स्त्री का तुम्हें स्मरण भी न आएगा। प्राचीन प्रतिष्ठित राजकुलों की सुन्दरियाँ तुमसे विवाह करने में अपना सौभाग्य समझेंगी।'

'आज तुम्हें क्या हो गया है, करभिका! तुम्हारे लिए मैं सम्पूर्ण मागध साम्राज्य को लात मार सकता हूँ। तुम मेरी उपास्य देवी हो। तुमसे प्रेरणा और शक्ति पाकर ही मैं जीवित रह सकता हूँ।'

'कैसी बात कहते हो, कुमार! मुझे क्षमा करना, अब तो तुम्हें सम्राट् कहकर सम्बोधन करना चाहिए। हाँ, मेरे सम्राट्, मेरे हृदय सम्राट्! तुम भी कैसी बात कहते हो। यवनों को भारत से बाहर निकालने में तुमने जो अद्भुत वीरता प्रदर्शित की, वह इतिहास में एक कहानी बनकर रह जाएगी। मैं तो तुम्हारी छाया मात्र हूँ। मुझे उपास्य देवी कहकर लज्जित न करो, नाथ!'

'नहीं, करभिका! तुम सचमुच मेरी उपास्य देवी हो, तुम्हारी प्रतिमा सदा मेरे मनमन्दिर में प्रतिष्ठित रहती है। तुम्हारे बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तुम मेरी शक्ति हो, तुम मेरी आत्मा हो, तुम मेरा जीवन हो। जब मैं तुम्हारे अनुपम साहस और शौर्य का ध्यान करता हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ।'

'ऐसा न कहो, प्यारे! मैं किस योग्य हूँ। अब तो मेरे जीवन की एक ही साध है। तुम्हारे चरणों की दासी बनकर अपने को धन्य बनाऊँ।'

'चरणों की दासी नहीं, प्यारी! हृदय की स्वामिनी, मेरी सर्वस्व, मेरी एकमात्र सखी।'

'पर हम कब तक इस प्रकार एक-दूसरे से अलग रहते हुए तड़पते रहेंगे? वह शुभ मुहूर्त कब आएगा, जब हम मिलकर एक हो जाएँगे, शरीर से एक, मन से एक, आत्मा से एक।'

'यह तो आचार्य विष्णुगुप्त की इच्छा पर निर्भर है, करभिका! मैंने उनसे पूछा था। वे कहते थे, अभी इसके लिए समय नहीं आया है।'

'तो क्या राज्याभिषेक से पहले हमारा विवाह नहीं हो जाएगा? सुना है, चक्रवर्ती सम्राटों के अभिषेक से पूर्व जब राजसूय यज्ञ किया जाता है, तो उसमें पत्नी की उपस्थिति भी आवश्यक होती है। हमारे कठगण में तो राजसूय की प्रथा नहीं थी। पर मगध में तो वह अनिवार्य है।'

'हाँ, प्यारी! पत्नी के बिना राजसूय यज्ञ नहीं होता। पर आचार्य विष्णुगुप्त तो स्वयं ऋषि हैं। वे नया विधान भी बना सकते हैं।'

'पर क्या वे मुझे तुम्हारे योग्य नहीं समझते, नाथ?'

'नहीं, यह बात नहीं है, प्यारी! तुम्हें वे अपनी पुत्री मानते हैं, तुम्हारे प्रति उनका बहुत पक्षपात है। पर उनका विचार है कि अभी हमारे विवाह का समय नहीं आया है।'

'पर मैं तो अब तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती, नाथ! क्या अग्नि के सम्मुख बैठकर, सात बार यज्ञकुण्ड की परिक्रमा कर और सात पद एक साथ चलकर ही स्त्री और पुरुष एक होते हैं? क्या विवाहविधि का अभाव हमारे प्रणय में कोई रुकावट पैदा कर सकता है?'

'नहीं, प्यारी! हम एक हैं, सदा से, अनादि काल से, और अनन्त समय तक हम अभिन्न और अनन्य ही बने रहेंगे।'

प्रणय के आवेग में चन्द्रगुप्त और करभिका एक-दूसरे का आलिङ्गन करने ही वाले थे कि उन्हें दूर से आवाज सुनाई दी—'चन्द्रगुप्त!'

'यह तो आचार्य की आवाज है, करभिका! वे मुझे बुला रहे हैं।'

'रात्रि के इस समय?'

'हाँ, करभिका! किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से ही आचार्य ने इस समय राजप्रासाद में आने का कष्ट किया है। चलो, आचार्य को प्रणाम करें।'

चन्द्रगुप्त और करभिका ने जाकर आचार्य विष्णुगुप्त के चरणों का स्पर्श किया। विष्णुगुप्त ने उन्हें आशीर्वाद देकर कहा—'अभी मेरा कार्य पूर्ण नहीं हुआ, चन्द्रगुप्त! यवनों ने फिर आर्यभूमि पर आक्रमण कर दिया है। तुम्हें तुरन्त पाटलिपुत्र से प्रस्थान करना होगा। सिन्धु नदी के तट पर स्थित हमारी सेना के सेनापति ने गृहकपोतों द्वारा समाचार भेजा है कि यवन सेना हिन्दूकुश पर्वतमाला के समीप तक पहुँच गई है, और बड़ी तेजी के साथ पूर्व की ओर बढ़ रही है।'

'तो क्या सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक स्थगित करना होगा, आचार्य?' करभिका ने प्रश्न किया।

'हाँ, करभिका! जब तक यवनों के संकट को पूर्ण रूप से दूर न कर दिया जाए, राज्याभिषेक का समारोह उचित नहीं होगा।'

'सुना था कि सिकन्दर की मृत्यु के बाद यवन-सेनापति आपस में लड़ने लग गए हैं। उनमें कोई ऐसा वीर नेता नहीं है, जो सम्पूर्ण यवन साम्राज्य को अपनी अधीनता में रख सके। आचार्य! यह कौन-सी यवन सेना है,

जिसने भारत-भूमि पर आक्रमण किया है ?'

'तुम न केवल वीर हो, करभिका ! अपितु राजनीति में भी तुम्हारी गति है। तुम्हारी जैसी साम्राज्ञी पाकर मगध का यह विशाल साम्राज्य सचमुच धन्य होगा। सिकन्दर की मृत्यु के बाद उसका विशाल साम्राज्य अनेक खण्डों में विभक्त हो गया। वह स्वयं जिस मैसिडोन का रहने वाला था, वहाँ एक पृथक् राज्य बना गया। उसके उत्तर में थ्रेस का जो प्रदेश है, वहाँ दूसरा। नील नदी के तट के साथ-साथ मिश्र का जो समृद्ध प्रदेश है, वहाँ तीसरा यवन-राज्य कायम हुआ। यवन देश के पूर्व में इस विशाल एशिया महाद्वीप का जो सबसे पश्चिमी प्रदेश है, उस पर चौथे यवन सेनापति ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया है। सिकन्दर के साम्राज्य का जो सब से पूर्वी भाग था, वहाँ पाँचवाँ यवन-राज्य स्थापित हुआ है। यवनों का यह पाँचवाँ राज्य सबसे बड़ा है। हिन्दूकुश पर्वतमाला के पश्चिम से शुरू कर बाबुल और सीरिया तक के सब प्रदेश इसके अन्तर्गत हैं। इसका विस्तार पुराने पार्स साम्राज्य से भी अधिक है। इसका राजा सैल्युकस नाम का वीर सेनापति है। जब यवनराज सिकन्दर ने वितस्ता नदी को पार कर महाराज पोरु पर आक्रमण किया था, तब सैल्युकस उसकी सेना के साथ था। उसने अपने विशाल साम्राज्य को भलीभाँति संगठित कर लिया है, और अब वह गान्धार तथा वाहीक देशों की विजय के लिए प्रयत्नशील है। तुम समझ गई न, करभिका !'

'हाँ, आचार्य ! आपकी कृपा और सम्राट् चन्द्रगुप्त के संग से मैं भी राजनीति को कुछ-कुछ समझने लग गई हूँ। पर सैल्युकस की यवन सेना तो अधिक शक्तिशाली नहीं होगी, आचार्य ! क्या अकेली वाहीक सेना उसे परास्त नहीं कर सकती ? क्या चन्द्रगुप्त के वहाँ गए विना काम नहीं चलेगा ?'

'प्रणय को कर्तव्य से अधिक महत्त्व न दो, करभिका ! सैल्युकस की शक्ति को कम न समझो। सिकन्दर के विशाल साम्राज्य के बड़े भाग का वही अधिपति है। वह न केवल वीर है, अपितु कुशल सेनानायक भी है। उसे परास्त करने के लिए चन्द्रगुप्त को स्वयं सिन्धुतट पर जाना होगा।'

'क्या हमें कभी शान्ति और सुख के दिन देखने को नहीं मिलेंगे, आचार्य ?'

'राजा के लिए सुख और शान्ति कहाँ, करभिका ! उसे युद्ध में ही सुख मिलता है, शत्रु को परास्त करके ही उसे शान्ति प्राप्त होती है।'

'तो मैं भी सम्राट् के साथ सिन्धुतट पर जाऊँगी, आचार्य !'

'नहीं, करभिका ! अब तुम्हारा प्रणय उस दशा को पहुँच गया है, जबकि वह निर्बलता का कारण बन जाता है । तुम यहीं पाटलिपुत्र में रहो, और चन्द्रगुप्त के वापस लौटने की प्रतीक्षा करो ।'

'नहीं, आचार्य ! सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रणय के लिए कर्तव्य की कभी अवहेलना नहीं कर सकते । मेरे साथ रहने से उन्हें बल मिलेगा ।'

'तुम समझती नहीं हो, करभिका ! तुम्हारे प्रेम में चन्द्रगुप्त अपनी सुधबुध खो बैठा है । जिद न करो । अब हँसी-खुशी उसे यवनों को पराजित करने के लिए बिदा करो ।'

'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, आचार्य !'

'क्या मैं एक मुहूर्त करभिका से मिल सकता हूँ, आचार्य !' चन्द्रगुप्त ने कहा ।

आचार्य की अनुमति पाकर चन्द्रगुप्त और करभिका फिर उद्यान में चले गए ।

'मेरी यह अँगूठी स्मृतिचिह्न के रूप में अपने पास रख लो, करभिका !' नेत्रों में आँसू भरकर चन्द्रगुप्त ने कहा ।

'आपका मन व्याकुल क्यों है, नाथ ! आपकी प्रतिमा एक क्षण के लिए भी मेरे मन से दूर नहीं हो सकती । उसके लिए स्मृतिचिह्न की क्या आवश्यकता है ?'

'न जाने, मेरा चित्त क्यों उद्विग्न है । सोचता हूँ, अब शायद तुमसे फिर भेंट नहीं हो सकेगी । तुम्हें याद है, करभिका ! आशीर्वाद देने के लिए माँ ने हमें अपने पास बुलाया था । पर उनके हाथ उठे-के-उठे ही रह गए थे । हमें आशीर्वाद देने से पूर्व ही वे स्वर्ग सिधार गई थीं । यदि मैं युद्धक्षेत्र से वापस न लौटा, तो इस अंगूठी को देखकर तुम्हें ध्यान आ जाएगा कि चन्द्रगुप्त नाम का तुम्हारा एक भक्त था, जो देवी मानकर तुम्हारी पूजा किया करता था ।'

'अपने मन में क्लैव्य को स्थान न दीजिए, सम्राट् ! आप शीघ्र ही यवनों को परास्त कर पाटलिपुत्र लौटेंगे । जब यह विशाल नगरी आपके स्वागत के लिए दुलहिन के समान सजी होगी, सर्वत्र आपका जय-जयकार हो रहा होगा, तब मैं भी राजमार्ग के किसी कोने में खड़ी होकर आपके उस शानदार जुलूस को देखूँगी । जगह-जगह आपकी आरती उतारी जाएगी । क्या मेरी आरती को भी आप स्वीकार करेंगे तब ?'

'पर न ज़ाने क्यों आज मेरा चित्त उदास है, करभिका ! मुझे ऐसा अनुभव होता है, मानो कोई अदृश्य छाया मुझे तुमसे पृथक् कर रही है ।

वह हम दोनों के बीच में आ खड़ी हुई है। तुम मुझे दिखाई नहीं पड़ रही हो। कितनी भयंकर छाया है यह !'

'इस अशुभ विचार को मन से दूर कर दो, नाथ ! संसार में कौन-सी ऐसी शक्ति है, जो हम दोनों को अलग कर सकती है।'

आचार्य विष्णुगुप्त की आवाज ने इन दोनों प्रेमियों के प्रेम-सम्भाषण को बीच में ही रोक दिया। विष्णुगुप्त कह रहे थे—'सेना की विजय-यात्रा का मुहूर्त आ गया है, चन्द्रगुप्त ! सेना तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।'

अँगूठी को करभिका की उँगली में पहनाकर चन्द्रगुप्त ने उससे बिदा ली। राजप्रासाद के बाहर तुरही और शंखों का घोष प्रारम्भ हो गया। मगध की शक्तिशाली सेना ने पश्चिम की ओर प्रस्थान कर दिया। मागध सेना के प्रयाण के इस दृश्य को देखने के लिए करभिका पाटलिपुत्र के प्राचीर पर आ खड़ी हुई। धीरे-धीरे विशाल मागध सेना क्षितिज में विलीन हो गई। पर करभिका उसी प्रकार खड़ी हुई बहुत देर तक उसी ओर एक-टक देखती रही। अन्त में आचार्य विष्णुगुप्त ने उसके ध्यान को भंग किया। उन्होंने कहा—'बेटी करभिका ! क्या चन्द्रगुप्त के चले जाने से दुःख अनुभव करती हो ?'

'वियोग से दुःख तो होता ही है, आचार्य ! पर क्या कर्तव्य प्रेम से ऊँचा नहीं है ?'

'साधु, करभिका ! साधु, तुम्हारी जैसी पुत्री पाकर मेरा हृदय गर्व से परिपूर्ण हो जाता है।'

(४२)

सैल्युकस की पराजय

सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर यवन सेनाएँ डेरा डाले पड़ी थीं। सम्राट् सैल्युकस अपने शिविर में बैठा हुआ सेनापतियों के साथ मन्त्रणा कर रहा था।

'कुछ ही वर्षों में इस भारत-भूमि में कितना भारी परिवर्तन आ गया है ! जब सिकन्दर ने इस पर आक्रमण किया था, तब इस देश की क्या दशा थी ? एक राजा दूसरे राजा का शत्रु था। एक जनपद दूसरे जनपद को नीचा दिखाने के लिए उत्सुक था। उस समय हमारा कार्य कितना सुगम था !

जब सिकन्दर के साथ पहली बार हमारी सेनाएँ सिन्धु नदी के तट पर पहुंची थीं, तब गान्धारराज हमारे स्वागत के लिए तैयार खड़ा था। कितने उत्साह के साथ उसने यवन सेनाओं के सिन्धु के पार उतरने का प्रबन्ध किया था! हमें ऐसा प्रतीत होता था, मानो अपने साम्राज्य में देशाटन के लिए जा रहे हों। आज वही वाहीक देश है, वही सिन्धुतट है। पर अब उनमें कितना अन्तर आ गया है! आज इस देश का बच्चा-बच्चा हमारा शत्रु है, हमारे मार्ग को रोकने के लिए उद्यत है। इस थोड़े-से समय में इस देश में यह अद्भुत परिवर्तन कैसे आ गया?' सैल्युकस ने कहा।

'यह सब आचार्य विष्णुगुप्त और उसकी शिष्य मण्डली का कर्तृत्व है, सम्राट्!'

'पर भारत के राजसिंहासन पर तो चन्द्रगुप्त विराजमान है।'

'इस देश की संस्कृति बड़ी अद्भुत है, सम्राट्! यहाँ एक ऐसा वर्ग है, जो धन-वैभव को तुच्छ समझता है, राजशक्ति को हेय मानता है, और त्याग का जीवन ही जिसका आदर्श है। विष्णुगुप्त इसी वर्ग का व्यक्ति है, सम्राट्! यवनों को भारत से निकालकर और मगध के नन्द-कुल का विनाश कर यह विष्णुगुप्त स्वयं भारत का सम्राट् नहीं बना। आप सुनकर आश्चर्य करेंगे, सम्राट्! यह विष्णुगुप्त अब भी एक पर्णकुटी में निवास करता है, तृण-शय्या पर शयन करता है, और कन्द-मूल-फल खाकर अपना पेट भरता है। भारत-भूमि में धन-वैभव की कमी नहीं है। पाटलिपुत्र के राजप्रासाद की शान अनुपम है। पर यह विष्णुगुप्त राज-प्रासाद के बाहर एक छोटी-सी कुटी में निवास करता है! उसके एक इशारे पर संसार के सब वैभव, सब सुख उसके सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं। पर इन्हें वह हीन और त्याज्य समझता है।'

'पर मागध साम्राज्य का महामन्त्री तो यह विष्णुगुप्त ही है न?'

'नहीं, सम्राट्! वह महामन्त्री पद को भी अपने गौरव से नीचे की बात मानता है। नन्द के एक पुराने अमात्य को उसने चन्द्रगुप्त का महा-मन्त्री बनाया है।'

'फिर वह स्वयं क्या करता है?'

'वह चाहता था कि तक्षशिला के अपने पुराने आश्रम में वापस लौट जाए और वहाँ फिर से वटुकों को पढ़ाना शुरू कर दे। उसकी दृष्टि में अध्यापक का पद सम्राट् और महामन्त्री के पद से भी अधिक ऊँचा है। पर यवनों के आक्रमण की बात सुनकर उसने अभी अपने विचार को स्थगित कर दिया है। वह अपनी पर्णकुटी में बैठा हुआ सम्राट्, महामन्त्री,

अमात्यों और सेनापतियों को कठपुतली के समान नचाता है।'

'भारत के ये उच्च राजपुरुष उसके विरुद्ध विद्रोह क्यों नहीं कर देते? वह उसके आदेशों को आँख मूँदकर क्यों स्वीकार कर लेते हैं? क्या उन्हें यह अपमानजनक नहीं प्रतीत होता कि एक बाहर का आदमी उन्हें इस प्रकार आदेश दे?'

'नहीं, सम्राट्! विष्णुगुप्त के पास न सेना है, न धन है। त्याग ही उसका सबसे बड़ा धन है, और बुद्धि ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। इन्हीं के जोर पर वह भारत के शासन-सूत्र का संचालन कर रहा है।'

'यह देश सचमुच बड़ा अद्‌भुत है। हम तो समझते थे कि इसके विविध राजकुलों को आपस में लड़ाकर स्थायी रूप से इसे अपनी अधीनता में रखा जा सकता है।'

'पहले यह सचमुच सम्भव था, सम्राट्! पर आचार्य विष्णुगुप्त ने अपने नीति-बल से इस देश में ऐसी सुदृढ़ एकता स्थापित कर दी है कि उसे भंग कर सकना अब सुगम नहीं रह गया है।'

'तो क्या अब वाहीक देश में फिर से यवनों का शासन स्थापित नहीं किया जा सकता?'

'क्यों नहीं, सम्राट्! मगध की सेना को साथ लेकर चन्द्रगुप्त शीघ्र सिन्धुतट पर पहुँच रहा है। हम इस सेना से डटकर युद्ध करेंगे, और उसे परास्त कर देंगे।'

'उसकी सेना में कुल कितने सैनिक हैं?'

'छह लाख के लगभग।'

'पर हमारी सेना के सैनिकों की संख्या तो चार लाख से अधिक नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं कि हम भारत के विविध जनपदों और राजकुलों को चन्द्रगुप्त के विरुद्ध उभाड़ सकें?'

'अब यह सम्भव नहीं रहा है, सम्राट्! विष्णुगुप्त ने अपने नीति-बल से उन्हें मगध के सम्राट् के प्रति अनुरक्त बना दिया है। सम्राट् की अधीनता स्वीकृत करते हुए भी वे पहले के समान ही स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे हैं। आर्यभूमि एक है, और उसकी रक्षा के लिए राजनीतिक दृष्टि से भारत में एक शासन होना चाहिए—विष्णुगुप्त के इस विचार को सब जनपदों ने स्वीकार कर लिया है। पर अपने-अपने क्षेत्र में जनपदों की स्वतन्त्रता पूर्ववत् विद्यमान है। इसी लिए उन्हें मागध सम्राट् की अधीनता खलती नहीं है।'

'तो फिर हमारे चार लाख सैनिक भारत के छह लाख सैनिकों का

मुकाबिला कैसे कर सकेंगे ?'

'अपनी युद्ध-नीति की उत्कृष्टता द्वारा।'

'पर आर्य सैनिक भी वीरता में कम नहीं हैं।'

'यह ठीक है। पर अपनी सैन्यशक्ति को तो हमें रणक्षेत्र में आजमाना ही होगा। सिन्धुतट पर पहुँचकर अब यहाँ से वापस तो नहीं लौटा जा सकता।'

'तो फिर रणभेरी बजवा दो। यदि चन्द्रगुप्त परास्त हो गया, तो पूर्वी समुद्र तक सम्पूर्ण भारत पर यवनों का शासन स्थापित हो जाएगा।'

'वह परास्त क्यों नहीं होगा, सम्राट् ! सम्पूर्ण आर्यभूमि भी विशाल यवन-साम्राज्य के सम्मुख तुच्छ है।'

चन्द्रगुप्त की सेनाएँ सिन्धुतट पर पहुँच गई थीं। रणभेरी बज उठी। यवनों ने खूब डटकर युद्ध किया। उन्होंने अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। पर विष्णुगुप्त के नीति-बल द्वारा संगठित भारतवर्ष की संयुक्त सेनाओं को परास्त करने में वे असमर्थ रहे। सैल्युकस हार गया और कैद हो गया। उसकी यवन-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। हजारों यवन सैनिक युद्ध में मारे गए, हजारों कैद कर लिए गए। बहुतों ने पश्चिम की ओर भागकर अपने प्राणों की रक्षा की।

आचार्य विष्णुगुप्त अपनी पर्णकुटी में बैठे हुए युद्ध के समाचार की प्रतीक्षा कर रहे थे। करभिका भी उनके पास बैठी थी। इतने में कुछ गृह-कपोत उड़ते हुए आए, और उनके सामने आकर बैठ गए। विष्णुगुप्त ने उनके पैरों से बंधे हुए पत्रों को अलग किया और उन्हें पढ़कर बोले—'ले करभिका ! यवन-सेना परास्त हो गई, सैल्युकस बन्दी बना लिया गया। अब विजेता चन्द्रगुप्त शीघ्र पाटलिपुत्र आ जाएगा। अब तो प्रसन्न है न ?'

यवनों की पराजय का समाचार सुनकर करभिका का मुखमण्डल हर्ष से खिल उठा। वह बोली—'तो आचार्य ! अब विजयी आर्य-सेना के स्वागत के लिए पाटलिपुत्र को सजाने का आदेश दे दीजिए न ? हमें धूमधाम के साथ विजयी सैनिकों का स्वागत करना चाहिए।'

'सीधे शब्दों में क्यों नहीं कहती कि चन्द्रगुप्त का स्वागत किया जाए। शरमाती क्यों है ?'

'हाँ, आचार्य ! हमें इस विश्वविजयी वीर सम्राट् का धूमधाम के साथ स्वागत करना चाहिए। आर्य-जाति के लिए आज कितने गौरव का दिन है, जो यवन-सेना परास्त हो गई है। यवनों द्वारा इस पवित्र देश के

पदाक्रान्त होने का भय अब सदा के लिए नष्ट हो गया है।'

'पर करभिका ! शास्त्रों का वचन है कि सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय सब को एक दृष्टि से देखो। पराजय से उद्विग्न मत होओ, और विजयी होने पर ख़ुशी से फूल न जाओ।'

'अपने शास्त्रों को रहने दीजिए, आचार्य ! शास्त्र की ये बातें आप जैसे अलौकिक पुरुषों के लिए हैं। मेरी तो इच्छा होती है, अभी पाटलिपुत्र के राजमार्ग पर जा खड़ी होऊँ। लोगों से कहूँ—भाइयो, ख़ुशियाँ मनाओ। यवन परास्त हो गए हैं, आर्य चन्द्रगुप्त की विजय हो गई है। भाइयो, नगर को सजाओ, जगह-जगह विजयद्वारों का निर्माण करो। धूमधाम के साथ विजेता का स्वागत करो, उसकी आरती उतारो।'

'पर करभिका ! अभी तो चन्द्रगुप्त को पाटलिपुत्र पहुँचने में कई सप्ताह लग जाएँगे। वह कपोत की गति से तो यहाँ नहीं पहुँच सकता।'

'इससे क्या हुआ, आचार्य ! विजय का उत्सव तो आज ही मनाया जाना चाहिए। जब सम्राट् चन्द्रगुप्त अपनी आर्य-सेना के साथ पाटलिपुत्र पहुँचेंगे, तब उनके स्वागत में दुबारा उत्सव मना लिया जाएगा। विजेता का प्रतिनिधित्व करने के लिए मैं जो यहाँ हूँ।'

'यह ठीक है, करभिका ! असली विजेता तो तू ही है। फिलिप्पस की हत्या तूने की, नन्दकुल का विनाश तूने किया। और जो चन्द्रगुप्त यवन-सेना का विनाश करने में समर्थ हुआ, वह तुझसे ही बल पाकर, तेरी ही प्रतिमा को हृदय-मन्दिर में स्थापित कर।'

'ऐसा न कहिए, आचार्य ! चन्द्रगुप्त अद्वितीय वीर हैं। करभिका एक ऐसे पुरुष के सामने ही सिर झुका सकती है, जो उसकी अपेक्षा भी अधिक वीर हो। तो आचार्य, क्या पाटलिपुत्र में विजयोत्सव मनाने की सूचना नागरिकों को दे दूँ ?'

'जैसी तेरी इच्छा, करभिका ! सम्राट् की अनुपस्थिति में मगध का शासन तेरे ही हाथों में तो है।'

(४३)

सन्धि का निर्णय

जिस समय करभिका के नेतृत्व में पाटलिपुत्र के नागरिक विजय के महोत्सव को मनाने में व्यस्त थे, आचार्य विष्णुगुप्त इस प्रश्न पर मन्त्रणा

में लगे थे कि यवनराज सैल्युकस के साथ किन शर्तों पर सन्धि की जाए। आचार्य विष्णुगुप्त की अपनी पर्णकुटी में महामन्त्री राक्षस, आचार्य इन्द्रदत्त, व्याडि आदि कितने ही प्रधान राजनीतिज्ञ एकत्र थे और वे इस महत्त्वपूर्ण समस्या पर विचार करने में व्यग्र थे।

'यवन-सेनाएँ परास्त हो गई हैं, और भारत की राजनीतिक और सैन्यशक्ति संगठित हो गई है। अब वह अवसर उपस्थित हुआ है, जब कि आर्यजाति सम्पूर्ण भूमण्डल पर अपना आधिपत्य स्थापित कर सकती है। यवनों की शक्ति अब पूर्णतया अस्त-व्यस्त दशा में है। अब हमें तुरन्त हिन्दूकुश पर्वतमाला को पार कर पार्स देश पर आक्रमण कर देना चाहिए।' इन्द्रदत्त ने विचार प्रस्तुत किया।

'पर क्या भारत की शक्ति इतनी अधिक है कि वह पार्स देश को जीतकर पश्चिम के यवन-देशों को भी अपनी अधीनता में ला सके ?' व्याडि ने प्रश्न किया।

'क्यों नहीं, व्याडि ! जब यवनराज सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था, तो वाहीक देश में कितने ही छोटे-छोटे जनपद थे, जो प्रायः आपस में लड़ते रहते थे। यदि गान्धारराज आम्भि सिकन्दर की सहायता न करता, तो क्या वह सिन्धु नद के पार उतर सकता ? यदि आम्भि की गान्धार-सेनाएँ यवन-सेनाओं के साथ सहयोग न कर रही होतीं, तो क्या केकयराज पोरु परास्त हो सकते ? यदि पोरु सिकन्दर के सहायक न बन जाते, तो क्या कठ गण को नष्ट किया जा सकता ? कठ के वीरों ने किस प्रकार यवनों के दाँत खट्टे किए थे ? सांकल नगरी के ध्वंस के बाद यवनों को यह साहस ही नहीं रहा था कि वे विपाशा नदी के पार के जनपदों से युद्ध करते। जब सिकन्दर ने लौटना शुरू किया, तो मालवों और क्षुद्रकों ने कितनी वीरता के साथ उसका सामना किया ! अकेले क्षुद्रकों ने ही यवन-सेना को परास्त कर दिया था। जब वाहीक देश के छोटे-छोटे जनपद यवनों के विरुद्ध इतनी शक्ति प्रदर्शित कर सकते थे, तो अब तो सम्पूर्ण वाहीक देश एक सूत्र में संगठित हो गया है। गान्धार, केकय, मद्रक, मालव, आग्रेय, क्षुद्रक आदि जनपदों की सम्मिलित सेना ही पार्स और यवन-देशों की विजय के लिए पर्याप्त है। पर अब तो केवल वाहीक देश ही एक नहीं है, अपितु सारा भारत एक है। उसकी संयुक्त शक्ति से तो हम हिन्दूकुश से यवन सागर तक के सब प्रदेशों को जीतकर आर्यों के अधीन कर सकते हैं।'

'आचार्य इन्द्रदत्त ! आपका विचार ठीक है, पर विचारणीय बात

यह है कि अभी सम्पूर्ण भारत में एक शासन स्थापित हुए अधिक समय नहीं हुआ। अभी हमें इस विशाल भारतीय साम्राज्य को सुसंगठित और सुव्यवस्थित करने के लिए भी बहुत-कुछ कार्य करना है। यदि हमारी शक्ति विदेशों पर आक्रमण करने में लग गई, तो यह कार्य कैसे सम्पन्न होगा?' महामन्त्री राक्षस ने कहा।

'मैं महामन्त्री की बात का समर्थन करता हूँ। सिकन्दर ने कितने ही प्रदेशों को जीतकर अपने अधीन किया। पर उसने अपने विजित देशों को सुव्यवस्थित और सुसंगठित करने के प्रश्न को महत्त्व नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि उसका सुविशाल साम्राज्य उसके मरते ही रेत की भीत की तरह ढह गया। आज सिकन्दर का साम्राज्य पाँच खण्डों में विभक्त है। सैल्युकस जो इस बुरी तरह से हमारी सेनाओं द्वारा परास्त हो गया, उसका एक कारण यह भी था कि यवनों की शक्ति किसी एक केन्द्र में केन्द्रित नहीं रह गई थी। हमारे लिए यह अधिक उपयोगी होगा कि हम पहले भारत के सुविस्तीर्ण साम्राज्य को भलीभाँति सुव्यवस्थित कर लें।' व्याडि ने महामन्त्री राक्षस का समर्थन करते हुए कहा।

'पर व्याडि! यह न भूलो कि विजय राष्ट्रों में बल का संचार करती है। भारत की एकता और सुव्यवस्था के लिए भी यह उपयोगी है कि हमारी सेनाएं निरन्तर उधमशील रहें, वे निष्क्रिय होकर हाथ पर हाथ धरकर न बैठी रहें। साम्राज्य को सुव्यवस्थित और सुसंगठित करने का कार्य महामन्त्री राक्षस पाटलिपुत्र में बैठे हुए करते रहेंगे। हमारी सेनाएँ इसके लिए क्या करेंगी? उन्हें विश्व-विजय का अवसर दो। एक बार आर्य-जाति की विजय-पताका भूमण्डल के सब सभ्य देशों में फहराने लगे।' इन्द्रदत्त ने कहा।

'आप चुप क्यों बैठे हैं, आचार्य! आपकी क्या सम्मति है?' राक्षस ने विष्णुगुप्त को सम्बोधन करके कहा।

'महामन्त्री राक्षस को साम्राज्यों की समस्याओं का बहुत अनुभव है। अतः मैं उन्हीं के विचार का समर्थन करता हूँ। भारत बहुत बड़ा देश है। आर्यों के अतिरिक्त कितनी ही अनार्य जातियाँ भी इसमें निवास करती हैं। आर्यों के भी कितने ही जनपद इस देश में चिरकाल से विद्यमान हैं। इन सब में भाषा, शील, आचार, धर्म आदि की कितनी ही विभिन्नताएँ हैं। इनके निवासियों को यह भी स्मरण है कि किसी समय उनके राज्य पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थे। उनमें ऐसे महत्त्वाकांक्षी वीर पुरुषों की भी कमी

नहीं है, जो फिर से अपनी प्रभुता की स्थापना के लिए प्रयत्नशील हो सकते हैं। इस दशा में भारत की राजनीतिक एकता को कायम रखना बड़े महत्त्व की बात है। मगध के नेतृत्व में भारत की जो एकता अब स्थापित हुई है, उसे स्थिर रखने के लिए अभी हमें बहुत प्रयत्न करना होगा। इस दशा में हमारी सब शक्ति पहले इसी काम में लगनी चाहिए।' आचार्य विष्णुगुप्त ने अपना विचार प्रकट किया।

'पर आचार्य! यवनों की निर्बलता से क्या इस समय हमें कोई लाभ नहीं उठाना चाहिए?' इन्द्रदत्त ने प्रश्न किया।

'क्यों नहीं, इन्द्रदत्त! आर्य-जाति ने यवनों को परास्त कर जिस अद्भुत शक्ति का विकास किया है, उसका उपयोग हमें अवश्य करना चाहिए।'

'पर वह किस प्रकार, आचार्य?'

'देखो, इन्द्रदत्त! प्रकृति ने भारत को एक विशाल दुर्ग के रूप में बनाया है। इसके उत्तर में हिमालय की उत्तुंग पर्वत-शृंखलाएँ हैं, जिन्हें पार करके किसी विदेशी आक्रान्ता का इस देश में प्रवेश कर सकना सुगम नहीं है। दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में यह महासमुद्र से घिरा हुआ है। जब तक हमारी नाविक शक्ति प्रबल रहेगी, कोई शत्रु समुद्र-मार्ग से भारत में प्रवेश नहीं कर सकेगा। इस देश के उत्तर-पश्चिमी कोने की स्वाभाविक सीमा हिन्दूकुश पर्वतमाला है। यद्यपि यह पर्वत हिमालय के समान अभेद्य नहीं है, पर इसके मार्गों (दर्रों) पर दुर्गों तथा स्कन्धावारों की स्थापना कर इसे भी सुगमता के साथ अभेद्य बनाया जा सकता है। यवनों की पराजय का लाभ हमें इसी प्रकार उठाना चाहिए, कि हम भारत की इस स्वाभाविक और प्राकृतिक सीमा को प्राप्त करें। मगध का साम्राज्य हिन्दूकुश पर्वतमाला तक विस्तीर्ण हो, ताकि इस अभेद्य दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने का साहस भविष्य में कोई भी पाश्चात्य आक्रान्ता न कर सके।'

'पर आचार्य! हिन्दूकुश के पश्चिम में भी तो कितनी ही आर्य-जातियों का निवास है। हिन्दूकुश के दक्षिण-पश्चिम में जो सरस्वती (हरह्वती या अरगन्दाव) नदी बहती है, उसके दोनों ओर के प्रदेशों में भी तो आर्य लोग बसते हैं। क्या यह उचित होगा कि इन आर्यों पर यवनों का शासन कायम रहे?'

'नहीं, इन्द्रदत्त! सुदूर पश्चिम की इस सरस्वती नदी के प्रदेश को भी हमें यवनों से अधिगत करना होगा। जहाँ-जहाँ आर्य-जाति का निवास है, उन सब प्रदेशों को हमें भारतीय साम्राज्य में सम्मिलित करना होगा।

इसके बिना आर्य-जाति की रक्षा सम्भव नहीं है।'

'और हिन्दूकुश के उत्तर-पश्चिम का वह प्रदेश जिसे वंक्षु (आमू) और रसा (सीर) नदियाँ सिंचित करती हैं? बाल्हीक और कम्बोज देश भी तो आर्यभूमि के ही अंग हैं, आचार्य!'

'यह ठीक है, इन्द्रदत्त! पर उन पर सैल्युकस का तो आधिपत्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि सिकन्दर ने बाल्हीक और सुग्ध देशों को विजय किया था। पर इन देशों के वीर आर्य लोग तो उसी समय यवनों की अधीनता से मुक्त हो गए थे, जब सिकन्दर ने भारत की ओर मुँह मोड़ा था। मैं मानता हूँ कि इन प्रदेशों को भी मागध साम्राज्य में सम्मिलित करना आवश्यक है। पर सैल्युकस के साथ तो इनका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

'पर क्या हम यवनराज के साथ सन्धि करते हुए यह शर्त नहीं रख सकते कि वह इन आर्य प्रदेशों पर आक्रमण करने का कोई प्रयत्न भविष्य में न करे।'

'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, इन्द्रदत्त! सैल्युकस की सेना में इतनी शक्ति नहीं है कि वह बाल्हीक, सुग्ध और कम्बोज को जीत सके। यवनों से सन्धि हो जाने के बाद हम आर्य-जाति के इन जनपदों को भी विशाल भारतीय साम्राज्य में सम्मिलित कर लेंगे।'

'पर यह किस प्रकार होगा, आचार्य?'

'प्रेम द्वारा। सम्पूर्ण आर्य-जाति को राजनीतिक दृष्टि से एक सूत्र में संगठित करने के लिए अब आर्यों का खून बहाने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है, इन्द्रदत्त! विशाल भारत-भूमि अब एक हो गई है। वंक्षु और रसा के प्रदेशों में आर्य लोगों की जो बस्तियाँ हैं, वे आर्यों के उपनिवेशों के समान हैं। उनके निवासी आर्य-सन्तान होने में गौरव अनुभव करते हैं। वे स्वयमेव भारत के साथ मिल जाने के लिए उद्यत हो जाएँगे। इसके लिए हमें युद्ध की आवश्यकता नहीं होगी।'

'पर यदि यवनों की निर्बलता से लाभ उठाकर हम पश्चिम की ओर बढ़ने का प्रयत्न करें, तो क्या यह उचित नहीं होगा, आचार्य! दण्डनीति की यही शिक्षा है कि शत्रु जब निर्बल हो, तो उसके विरुद्ध अभियान किया जाए।'

'नहीं, इन्द्रदत्त! इस समय यह उचित नहीं है कि हम यवनों की निर्बलता का लाभ उठाकर पार्स और यवन देशों की विजय का प्रयत्न करें।

'यह किस लिए, आचार्य?'

'देखो, इन्द्रदत्त ! मानव-जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान राजनीति मे भी संयम की आवश्यकता होती है। जैसे कोई एक मनुष्य संसार-भर के धन-वैभव को अपने पास संचित नहीं कर सकता, वैसे ही कोई एक जाति या कोई एक देश सारी पृथिवी को अपनी अधीनता में नहीं ला सकता। यवनराज सिकन्दर यदि अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं को उन प्रदेशों तक ही सीमित रखता, जहाँ यवन-जाति का निवास है, तो अधिक अच्छा होता। पार्स साम्राज्य और भारत पर आक्रमण कर उसने बुद्धिमता नहीं की। यही कारण है, जो उसका साम्राज्य इतनी सुगमता से नष्ट हो गया। यह मत भूलो, कि हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण जो यह विशाल आर्यभूमि है, वह एक चक्रवर्ती साम्राज्य का क्षेत्र है। न इससे कम, न इससे अधिक। जैसे इस विशाल क्षेत्र में केवल एक राज्य होना चाहिए, वैसे ही इस क्षेत्र के बाहर के किसी भी प्रदेश को इस चक्रवर्ती साम्राज्य में सम्मिलित नहीं करना चाहिए। अपनी राजनीतिक आकांक्षाओं में भी हमें मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए, इन्द्रदत्त !'

'पर यदि यवनों ने अपनी शक्ति को बढ़ाकर एक बार फिर भारत-भूमि पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया, तो क्या होगा, आचार्य ? क्या यह उचित नहीं है कि हम यवनों की शक्ति का मूल से उच्छेद कर दें ?'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! आर्य-जाति के समान यवन लोग भी वीर हैं, उनका क्षेत्र भी बहुत विस्तीर्ण है। उनका मूलोच्छेद कर सकना सम्भव नहीं है।'

'पर यवनों का मूलोच्छेद न होने से उनके आक्रमण का भय तो सदा बना रहेगा, आचार्य !'

'इसके लिए हमें उनके साथ ऐसी सन्धि करनी होगी, जिससे आर्यों और यवनों की मैत्री चिरस्थायी रहे। यह स्मरण रखो, इन्द्रदत्त ! कि शक्तिशाली शत्रु से मित्रता स्थापित करना उसे युद्ध में परास्त कर देने की अपेक्षा भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है।'

'क्या सैल्युकस के साथ चिर-मैत्री स्थापित कर सकना सम्भव होगा, आचार्य ?'

'क्यों नहीं, इन्द्रदत्त ! यवनों में अभी परस्पर विद्वेष का अन्त नहीं हुआ है। उनके विविध सेनापति पारस्परिक युद्धों में तत्पर हैं। यह असम्भव नहीं कि मिस्र या यवन देश के राजा सैल्यूकस के साम्राज्य पर आक्रमण करें। यवन साम्राज्य में एकता का सर्वथा अभाव है। सैल्यूकस की अपनी स्थिति भी सुरक्षित नहीं समझी जा सकती। इस दशा में वह

भी भारत के साथ स्थायी मैत्री स्थापित करने की बात को बहुत महत्त्व देगा।'

'भारत की मैत्री उसके लिए किस प्रकार सहायक होगी, आचार्य ?'

'वह अपने साम्राज्य की पूर्वी सीमा की ओर से निश्चिन्त हो जाएगा, और अनेक प्रकार की सैनिक सहायता भी वह भारत से प्राप्त कर सकेगा।'

'तो क्या आप उसे सैनिक सहायता देने के भी पक्ष में हैं, आचार्य ?'

'नहीं, इन्द्रदत्त ! तुम जानते हो कि युद्ध में हाथियों का महत्त्व बहुत अधिक होता है। जंगी हाथी यवन देश में उपलब्ध नहीं हैं। अतः यदि सैल्युकस भारत से कुछ हाथी प्राप्त कर सके, तो यवन देश के युद्धों में वे उसके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। इस सम्बन्ध में हम उसकी सहायता कर सकते हैं।'

'हाँ, यह बात तो ठीक है, आचार्य !'

'एक बात मैं भी कहना चाहता हूँ, आचार्य !' महामन्त्री राक्षस ने कहा।

'आपकी सम्मति का मेरी दृष्टि में बहुत अधिक महत्त्व है, अमात्य राक्षस !'

'आप आर्यों और यवनों की स्थायी मैत्री को बहुत आवश्यक समझते हैं न, आचार्य !'

'हाँ, अमात्य !'

'तो उसके लिए हमें आर्यों और यवनों के राजकुलों में घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना होगा।'

'वह किस प्रकार ?'

'विवाह सम्बन्ध द्वारा। आर्यों के विविध जनपदों में यह परम्परा बहुत पुरानी है, आचार्य ! राजकुलों के विवाह-सम्बन्ध से विविध देशों और उनके राजकुलों में मैत्री स्थापित होने में बहुत सहायता मिलती है।'

'तो इसके लिए आप क्या प्रस्ताव करते हैं, अमात्य !'

'सम्राट् चन्द्रगुप्त अभी अविवाहित हैं, और उनकी आयु भी अब विवाहयोग्य हो गई है। सैल्युकस की कन्या हेलेन कुमारी और रूपवती है। क्यों न उनका विवाह कर दिया जाए ?'

महामन्त्री राक्षस के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए इन्द्रदत्त ने कहा— 'आचार्य ! आर्यों और यवनों में स्थिर मैत्री स्थापित करने के लिए सिकन्दर ने भी इसी उपाय का अवलम्बन किया था। उसकी प्रेरणा से हजारों यवन

सैनिकों ने आर्य-कुमारियों के साथ विवाह किए थे। आपको वह दिन याद होगा, जब राजगृह के यवन स्कन्धावार को छिन्न-भिन्न किया गया था। कितने ही यवन सैनिक इस अवसर पर मारे गए थे। उनकी आर्य-पत्नियाँ किस प्रकार विलाप कर रही थीं, यवनों के विनाश से उन्होंने कितना दारुण दुःख अनुभव किया था। यदि सैल्युकस की कन्या का विवाह सम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ हो जाए, तो उससे यवनों और आर्यों की चिरमैत्री में अवश्य सहायता मिलेगी। यवनराज की कन्या का अपने पति मागध सम्राट् के प्रति जो अनुराग होगा, सैल्युकस कभी भी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकेगा।'

महामन्त्री राक्षस और इन्द्रदत्त के प्रस्ताव को सुनकर आचार्य विष्णुगुप्त बहुत गम्भीर हो गए। एक मुहूर्त चुप रहकर उन्होंने धीरे-धीरे कहा—'यवनराज की कन्या से चन्द्रगुप्त का विवाह होने पर करभिका का क्या बनेगा ? चन्द्रगुप्त और करभिका एक-दूसरे को हृदय से प्यार करते हैं ?'

'पर आचार्य ! आपने ही तो हमें यह शिक्षा दी है कि कर्तव्य के सम्मुख प्रणय का कोई महत्त्व नहीं है।' इन्द्रदत्त ने कहा।

'पर इन्द्रदत्त ! चन्द्रगुप्त और करभिका का प्रेम इस दशा को पहुँच चुका है कि उस पर आघात करना घोर निर्दयता होगी।'

'आर्यभूमि की रक्षा और उत्कष के लिग आपने लाखों नर-नारियों की बलि दी है। यवनों के साथ जो युद्ध आपकी प्रेरणा से हुए, उनके कारण हजारों स्त्रियाँ विधवा हो गईं, हजारों बच्चे अनाथ हो गए, कितने नगर और ग्राम भूमिसात् हो गए। यह सब बलिदान किसलिए हुआ ? भारत-भूमि और आर्य जाति के उत्कर्ष के लिए ही तो न ? क्या इसी पुनीत उद्देश्य के लिए चन्द्रगुप्त और करभिका अपने प्रेम की बलि नहीं दे सकते, आचार्य ?'

'पर क्या आर्यभूमि के उत्कर्ष के लिए यवनराज की कन्या के साथ चन्द्रगुप्त का विवाह सचमुच उपयोगी है, इन्द्रदत्त !'

'क्यों नहीं, आचार्य ! सिकन्दर ने जो हजारों आर्य कन्याओं को यवन सैनिकों के साथ विवाह करने के लिए विवश किया था उसका क्या प्रयोजन था ? वह कहता था, मैं एक विश्व-संस्कृति का प्रादुर्भाव करना चाहता हूँ। आर्यों और यवनों के बीच जो एक भारी-सी दीवार खड़ी हुई है, उसे मैं सदा के लिए तोड़ गिराना चाहता हूँ। पर वस्तुतः इन विवाहों में उसका उद्देस्य राजनीतिक था। भारत में यवनों के उत्कर्ष को चिरस्थायी करने के उद्देश्य से ही उसने इन विवाहों का आयोजन किया था। इन विवाहों द्वारा

उसे अपने उद्देश्य की पूर्ति में सहायता भी अवश्य मिली। अब स्थिति पलट गई है, आचार्य ! यवन लोग आज आर्यों द्वारा परास्त हो गए हैं। अब आर्यों के उत्कर्ष को स्थिर रखने के लिए हमें भी उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा, जिसे सिकन्दर ने प्रदर्शित किया था। यवन कन्याओं के विवाह आर्य सैनिकों के साथ करने होंगे, और सैल्युकस को अपनी कन्या चन्द्रगुप्त को देनी होगी। यवनों की पराजय से वाहीक भूमि की हार का तो प्रतिशोध हो गया है, पर आर्य कन्याओं का बलात् अपहरण कर वाहीक देश की स्त्री-जाति का जो अपमान सिकन्दर ने किया था, उसका प्रतिशोध होना अभी शेष है।'

'पर कुमारी कन्याओं और विवाहित स्त्रियों का अपहरण करना तो आर्य-मर्यादा के अनुकूल नहीं है, इन्द्रदत्त ! यदि सैल्युकस की कन्या स्वेच्छापूर्वक चन्द्रगुप्त के साथ विवाह करने को उद्यत न हुई, तो क्या होगा ?'

'जिन हजारों वाहीक ललनाओं के यवन सैनिकों के साथ विवाह किए गए थे, क्या उनसे पहले स्वीकृति ले ली गई थी, आचार्य ? मुझे वह दिन याद है, जब आम्भि और पोरु के दण्डधर गान्धार और केकय के नगरों और ग्रामों में घूमते फिरते थे, कन्याओं की खोज में, यवनों से विवाह करने योग्य आयु की रूपवती कुमारियों की ढूंढ़ में। कैसा वीभत्स दृश्य था वह, आचार्य ! इन सैनिकों के आगमन का समाचार पाकर गृहस्थ अपने घरों के दरवाजे बन्द कर लेते थे, अपनी कन्याओं को छिपा देते थे। पर यवन सैनिक शिकारी कुत्तों के समान वाहीक ललनाओं को ढूंढ़ निकालते थे, और रोती-बिलखती कुमारियों को वे जबर्दस्ती अपने साथ ले जाते थे। किस लिए ? सिकन्दर की इच्छा के सम्मुख उन्हें बलि चढ़ा देने के लिए। सुशिक्षित सुसंस्कृत आर्य कन्याओं का विवाह वे किनके साथ करते थे ? क्रूर यवन सैनिकों के साथ, जिनमें सभ्यता और संस्कृति का सर्वथा अभाव था। सम्राट् चन्द्रगुप्त वीर हैं, साहसी हैं, सर्वगुणसम्पन्न हैं। उनके साथ विवाह कर कौन कन्या अपने को सौभाग्यवती नहीं मानेगी।'

'तुम्हारी भावना को मैं समझ रहा हूँ, इन्द्रदत्त ! तुम केकयराज के महामन्त्री रहे हो। वाहीक देश तुम्हारा अभिजन है। उसकी पुत्रियों का अपमान तुम नहीं सह सकते। इस विवाह द्वारा तुम उस अपमान का प्रतिशोध करना चाहते हो। पर क्या यह भावना आर्य-मर्यादा के अनुरूप है ?'

'मुझे क्षमा करें, आचार्य ! करभिका के प्रति आपके हृदय में अनन्त

स्नेह है। आप उसे अपनी पुत्री मानते हैं। करभिका के सन्ताप का विचार करके ही आप इस विवाह के पक्ष में नहीं हो पाते। पर क्या आपके लिए यह सम्भव नहीं है कि भारत-भूमि के उत्कर्ष के लिए आप करभिका के प्रणय-सुख और आह्लाद की बलि दे दें।'

'भारत-भूमि के लिए मैं अपने सर्वस्व को निछावर कर सकता हूँ, इन्द्रदत्त! वात्सल्य या प्रेम मेरे कर्तव्यपालन में बाधक नहीं हो सकते।'

'आचार्य! आप हम सब के नेता हैं। सारी आर्य-जाति आपके पद-चिह्नों का अनुसरण करती है, आपके वचन को ऋषिवाक्य के समान स्वीकार करती है। आप धर्म के प्रणेता हैं। यदि इस समय आपने ही निर्बलता प्रदर्शित की, तो अन्य लोगों से क्या आशा की जा सकती है?'

'तो यही सही, इन्ददत्त! मागध साम्राज्य की स्थिरता के लिए, आर्यों और यवनों की चिरमैत्री के लिए और भारत-भूमि के उत्कर्ष के लिए मैं अपनी सबसे प्रिय वस्तु की बलि देना स्वीकार करता हूँ। तुम जानते ही हो, इन्द्रदत्त! मैंने किसी भी वस्तु या प्राणी में ममत्व-भावना नहीं रखी थी। पर यह करभिका, यह मेरी पुत्री है, मेरी मानस पुत्री, मेरे आदर्शों और संकल्पों की जीती-जागती प्रतिमा। मैं उसे अपने उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रसन्नतापूर्वक बलि चढ़ा दूंगा। आज मैं अनुभव कर रहा हूँ कि उन माताओं की कुर्बानी कितनी ऊँची होती है, जो हँसते-हँसते अपनी सन्तान को रणक्षेत्र में भेज देती हैं।'

(४४)

पाटलिपुत्र में विजेता का स्वागत

सिन्धुतट पर यवनों को परास्त कर विशाल मागध साम्राज्य की सेना पाटलिपुत्र वापस लौट आई। आज पाटलिपुत्र के सब महाद्वार खुले हुए थे। उनकी रक्षा के लिए न अब सैनिकों की आवश्यकता थी और न उनमें प्रविष्ट होने के लिए दुर्गपाल के प्रवेशपत्रों की। अब पाटलिपुत्र का प्राचीर व्यर्थ था, उसकी परिखा निरर्थक थी। सम्पूर्ण भारत ही अब एक विशाल दुर्ग के समान था, जिसके अन्दर लोग स्वेच्छापूर्वक जहाँ चाहें आ-जा सकते थे। विजयी सेना के स्वागत के लिए पाटलिपुत्र को खूब सजाया गया था। राजमार्गों और पण्यवीथियों में स्थान-स्थान पर विजय-द्वार बनाए गए थे, और लाखों नर-नारी सम्राट् चन्द्रगुप्त और उसके वीर

सैनिकों के दर्शन के लिए उमड़े पड़ रहे थे। करभिका की प्रसन्नता का आज कोई ठिकाना न था। कठ जाति की यह वीर महिला आज सोलहों श्रृंगार किए हुए उत्सुकता से उस क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी, जब सम्राट् चन्द्रगुप्त पाटलिपुत्र के पश्चिमी महाद्वार में पग रखेंगे, और वह उनके गले में जयमाला डालकर जयघोष से आकाश को गुंजा देगी। मगध की हजारों सम्भ्रान्त महिलाएँ हाथों में जयमाल लिए उसके साथ खड़ी थीं, उल्लास से भरी हुईं, गर्व से उन्मत्त हुईं। करभिका सोच रही थी, वियोग और प्रतीक्षा के दिन अब समाप्त हुए। तपस्या का समय अब बीत गया। मैं आज अपने हाथों से चन्द्रगुप्त के गले में जयमाल पहनाऊँगी। सारी रात जागकर उसने अपने हाथों से जिस माला को गूँथा था, उसमें उसका प्रेम भी गुंथा हुआ था। इतने दिनों के विरह के बाद आज वह फिर चन्द्रगुप्त से मिलेगी, अपना सिर उसके चरणों में रख देगी। कैसी आनन्द की घड़ी होगी वह! आज का सारा दिन तो विजय-महोत्सव में ही बीत जाएगा। उन्हें उससे बात करने का अवकाश ही कहाँ मिलेगा! पर क्या उनका दर्शन कम उल्लास की बात होगी! और साँझ के समय, जब सूर्य अस्त हो जाएगा, चाँदनी छा जाएगी, तब हम दोनों फिर उसी उद्यान में चले चलेंगे, उसी जलाशय के तट पर। मैं अपनी बात कहूँगी, वे अपनी बातें कहेंगे। सारी रात इसी तरह बीत जाएगी। पर वे तो थके हुए होंगे। सिन्धुतट से शोण-तट तक की कितनी लम्बी यात्रा है यह! पर क्या उनकी थकान को मिटाने के लिए नींद ही एकमात्र साधन है? मुझसे मिलकर उनकी सब थकान स्वयमेव नष्ट हो जाएगी। वे भी तो मुझसे मिलने के लिए इसी तरह तड़प रहे होंगे।

करभिका इसी प्रकार सोच रही थी कि शंखनाद से उसका ध्यान भंग हुआ। विजयी मागध सेना पाटलिपुत्र के पश्चिमी महाद्वार पर पहुँच गई थी। करभिका को देखकर चन्द्रगुप्त अपने हाथी से नीचे उतर आया। करभिका ने उसके गले में जयमाल डाल दी। जय-जयकार के घोष से आकाश गूँज उठा। इस कोलाहल के बीच में चन्द्रगुप्त ने करभिका से पूछा—

'करभिका, अच्छी तो हो?'

'हाँ, नाथ! आपकी प्रतीक्षा में ये दिन कितने कष्ट से बिताए हैं, कैसे वर्णन करूँ।'

'पर अब वियोग के दिन समाप्त हो गए। आओ, करभिका! मेरे साथ हाथी पर बैठो।'

'नहीं, सम्राट् ! इसका समय अभी नहीं आया। आप अपने स्थान पर बैठिए। आपकी विजय-यात्रा के दृश्य को देखकर मैं अपनी आँखों को तृप्त करूँगी।'

विजयी मागध सेना का जुलूस आगे बढ़ गया। चन्द्रगुप्त फिर हाथी पर सवार हो गया। करभिका जुलूस के साथ-साथ चल रही थी, महिलाओं से घिरी हुई, उल्लास और गर्व से मस्त हुई और आनन्द से आविष्ट-सी हुई। सम्राट् चन्द्रगुप्त के जयजयकार को सुनकर वह सोच रही थी, यह जय-जयकार अकेले सम्राट् का ही नहीं है, साम्राज्ञी का भी तो है। मागध महिलाएँ उसे कह रही थीं, बहिन, साम्राज्ञी बनकर हमें भूल न जाना। वह उत्तर देती थी, पहले साम्राज्ञी बन तो जाऊँ, फिर कहना। हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण इस विशाल भारत देश का एकच्छत्र सम्राट् छोटे-से कठ गण के एक श्रोत्रिय की कन्या को अब क्या पसंन्द करेगा ? उसकी सखियाँ कहती थीं—बहिन, अधीर मत होओ। यदि आज सायंकाल ही यह सम्राट् तुम्हारे चरणों में अपना सिर रखकर इतने लम्बे विरह के लिए क्षमा न माँगे, तो हमसे कहना। कहो, बहिन, उसे क्षमा करोगी या नहीं ?

पाटलिपुत्र के सुदीर्घ राजमार्गों का चक्कर काटकर मागध सेना का जुलूस राजप्रासाद के मुख्य द्वार पर आकर समाप्त हुआ। राजप्रासाद के सामने के विशाल उद्यान में एक सभामण्डप बनाया गया था, जिसमें एक सहस्र मनुष्यों के बैठने की व्यवस्था थी। सभामण्डप के पूर्वी भाग में एक ऊँची वेदी बनी हुई थी, जिस पर पाँच आसन रखे हुए थे। बीच के सर्वोच्च आसन पर सम्राट् चन्द्रगुप्त विराजमान हुए। उनके दाईं ओर महामन्त्री राक्षस और बाईं ओर आचार्य इन्द्रदत्त बैठे। सामने एक ओर दो आसन खाली थे। इनपर यवनराज सैल्युकस और उसका मन्त्री मैगस्थनीज़ आसीन हुए। चन्द्रगुप्त ने सैल्युकस को सम्बोधन करके कहा—'यवनराज ! अब आपके साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाए ?'

'यही प्रश्न यवनराज सिकन्दर ने केकयराज पोरु से किया था, सम्राट् ! मेरा उत्तर भी वही है, जो राजा पोरु ने दिया था। राजा लोग जैसा व्यवहार राजाओं के साथ करते हैं, मैं भी आपसे उसी प्रकार के व्यवहार की आशा रखता हूँ, भारत-सम्राट् !'

'इस क्षण से आप स्वतन्त्र हैं, यवनराज ! सिकन्दर ने केकयराज पोरु को अपना अधीनस्थ और वशवर्ती राजा बना लिया था, और उसकी सेनाओं का उपयोग भारत के विविध जनपदों की विजय के लिए किया

था। पर हम आर्य लोग इसे अपनी प्राचीन परम्परा के प्रतिकूल मानते हैं। आप अपने देश में स्वतन्त्र राजा के समान शासन कीजिए, यवनराज ! पर भविष्य में फिर कभी आर्यों की इस भूमि में प्रवेश करने का साहस न कीजिए।'

'मुझे यह स्वीकार है, भारत-सम्राट् ! चक्रवर्ती भारत-सम्राट् के साथ मित्रता स्थापित कर मैं गौरवान्वित हूँगा। मेरी इच्छा है, कि यवनों और आर्यों की मैत्री चिरस्थायी हो।'

'इसके लिए भारत के महामन्त्री राक्षस आपसे बातचीत करेंगे।'

'पर मैं तो स्वतन्त्र राजा हूँ, सम्राट् ! मेरे साथ जो भी राजनीतिक वार्ता हो, वह सम्राट् को ही करनी चाहिए।'

'आर्यों में यह परम्परा नहीं है, यवनराज ! इस देश में राज्य का संचालन महामन्त्री द्वारा ही किया जाता है।'

यह कहकर सम्राट् चन्द्रगुप्त अपने आसन से उठ खड़े हुए। उनके चले जाने पर महामन्त्री राक्षस ने यवनराज सैल्युकस को सम्बोधन करके कहा—'भारत के साथ सन्धि करना और चिरमैत्री स्थापित करना आपको स्वीकार है, यवनराज ?'

'हाँ, महामन्त्री।'

'उसकी जो शर्तें भारत की मन्त्रि-परिषद् ने तय की हैं, उन्हें मैं एक-एक करके कहता जाऊँगा। आप उन्हें ध्यानपूर्वक सुन लें।'

'क्या मुझे उनमें संशोधन प्रस्तावित करने का अवसर दिया जाएगा ?'

'नहीं, यवनराज ! यह न भूलिए, कि आप रणक्षेत्र में परास्त हुए थे, और एक बन्दी के रूप में पाटलिपुत्र आए थे। इस समय जो आप स्वतन्त्र हैं, वह केवल भारत-सम्राट् की कृपा के कारण।'

'मैं सन्धि की शर्तें सुनने के लिए उद्यत हूँ, महामन्त्री !'

'आर्यभूमि के जो प्रदेश यवन-साम्राज्य के अन्तर्गत हैं, वे सब आपको भारत-सम्राट् को वापस देने होंगे।'

'वे प्रदेश कौन-कौनसे हैं, महामन्त्री ?'

'पहला प्रदेश उपरिशएन (परोपनिसदी) है। हिन्दूकुश पर्वतमाला के साथ-साथ का सब प्रदेश। इस प्रदेश पर आपका कोई अधिकार नहीं रह जाएगा।'

'यह मुझे स्वीकार है, महामन्त्री !'

'इसी प्रकार सरस्वती (हरह्वैती) नदी के समीप का जो प्रदेश अर्खोसिया नाम से प्रसिद्ध है, वह भी भारत-सम्राट् को प्राप्त होगा; और

साथ ही आरिया का प्रदेश भी।'

'क्या हिन्दूकुश के दक्षिण-पश्चिम में स्थित ये प्रदेश भी मुझे देने होंगे, महामन्त्री?'

'हाँ, यवनराज!'

'इनके अतिरिक्त दक्षिण की ओर गदरोसिया (मकरान) का जो प्रदेश है, उसपर भी आपका कोई अधिकार नहीं रह जाएगा। ये सब प्रदेश भारत के साम्राज्य में सम्मिलित रहेंगे।'

'आपकी शर्तों को स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त अन्य उपाय ही क्या है, महामन्त्री! पर एक निवेदन मेरा भी स्वीकार करें। मैं चाहता हूँ कि आप मगध की शक्तिशाली हस्तिसेना के ५०० हाथी मुझे प्रदान करने की कृपा करेंगे?'

'इनका उपयोग आप भारत के विरुद्ध तो नहीं करेंगे?'

'नहीं, आचार्य! ५०० हाथी भारत की विशाल हस्तिसेना के मुकाबिले में किस काम आएँगे? पर यवन देश में इनके कारण मेरी शक्ति बहुत बढ़ जाएगी।'

'आपकी यह प्रार्थना मुझे स्वीकृत है, यवनराज! पर अभी मेरी एक शर्त शेष है।'

'उसे भी कह दीजिए, महामन्त्री!'

'यवनों और आर्यों की मैत्री को चिरस्थायी बनाने के लिए आपको अपनी कुमारी हेलेन का विवाह सम्राट् चन्द्रगुप्त के साथ करना होगा।'

'भारत के प्राचीन राजकुलों के समान यवन देशों के राजकुल भी अपनी कुल-प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए अत्यन्त प्रयत्नशील रहते हैं, महामन्त्री! अब तक किसी यवन राजकुमारी का विवाह किसी विदेशी व विधर्मी राजा के साथ नहीं हुआ है।'

'भारत के आर्यों ने ही अपनी कन्याओं के विवाह विदेशी यवनों के साथ पहले कब किए थे, यवनराज! सिकन्दर ने इस परम्परा का प्रारम्भ किया था, क्योंकि वह विजेता था, वाहीक देश को उसने विजय कर लिया था। आज भारत विजेता है। हम सिकन्दर की परम्परा का अनुसरण करना चाहते हैं, यवनराज!'

'यदि यह शर्त मुझे स्वीकार न हो, महामन्त्री?'

'तो आपकी स्वतन्त्रता का इसी क्षण अपहरण कर लिया जाएगा। आपको अपना शेष जीवन पाटलिपुत्र के बन्दीगृह में बिताना होगा, और भारत की सेना यवन-साम्राज्य पर आक्रमण कर देगी।'

'तो क्या यवन-जाति की रक्षा के लिए अपनी कन्या की बलि देने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, महामन्त्री ?'

'आपने मेरे आशय को ठीक तरह से समझ लिया है, यवनराज !'

'पर यदि हेलेन भारत-सम्राट् से प्रणय न कर सकी ?'

'सम्राटों के लिए प्रणय की अपेक्षा अपने राज्य के उत्कर्ष का अधिक महत्त्व होता है, यवनराज !'

'तो मुझे आपकी यह शर्त भी स्वीकार है, महामन्त्री !'

'अब भारत और यवन देश में चिरमैत्री के स्थापित होने में कोई बाधा नहीं रह गई है, यवनराज ! आर्यों की पुरानी परम्परा के अनुसार मैं आपसे यह अपेक्षा रखता हूँ कि आप अपना राजदूत पाटलिपुत्र की राज-सभा में नियुक्त कर दें। भारत-सम्राट् का राजदूत भी आपकी राजसभा में रहा करेगा।'

'यह मेरे लिए गौरव की बात होगी, महामन्त्री ! अमात्य मैगस्थनीज़ भारत-सम्राट् की राजसभा में मेरा प्रतिनिधित्व करेंगे।'

'सम्राट् की आज्ञा है कि अमात्य व्याडि आपकी राजसभा में उनके प्रतिनिधि के रूप में रहेंगे।'

'मैं अमात्य व्याडि का स्वागत करता हूँ, महामन्त्री !'

'यवनराज ! अब आप राजप्रासाद में पधारिए। सम्राट् की अतिथि-शाला में आप उनके अतिथि रूप से निवास करेंगे।'

'मैं अपने देश को कब लौट सकूँगा, महामन्त्री ?'

'सन्धि की जो शर्तें भारत की मन्त्रि-परिषद् ने निश्चित की हैं, उनके अनुसार सन्धिपत्र तैयार किया जा रहा है। उस पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद ही हम आपकी बिदाई की व्यवस्था कर सकेंगे। इस बीच में आप कुमारी हेलेन को पाटलिपुत्र बुला लीजिए। यहाँ विवाह की सब तैयारी कर ली जाएगी। कुमारी हेलेन के पाटलिपुत्र पहुँचते ही सम्राट् चन्द्रगुप्त का उनके साथ विवाह कर दिया जाएगा।'

'क्या यह उचित नहीं होगा, महामन्त्री, कि सम्राट् चन्द्रगुप्त विवाह के लिए मेरे घर पर पधारने का कष्ट करें ? आर्य-परम्परा के अनुसार तो यही उपयुक्त होगा।'

'आर्य-परम्परा का मुझे भलीभाँति ज्ञान है, यवनराज ! सम्राट् चन्द्रगुप्त विवाह के लिए यवन देश नहीं जा सकेंगे। आप शीघ्र ही कुमारी हेलेन को पाटलिपुत्र बुलाने की व्यवस्था कर दीजिए।'

'आपका आदेश मुझे स्वीकार है, महामन्त्री !'

(४५)

आचार्य विष्णुगुप्त की बिदा

जिस समय महामन्त्री राक्षस यवनराज सैल्युकस के साथ आर्यों और यवनों की चिरमैत्री के लिए सन्धि की व्यवस्था कर रहे थे, आचार्य विष्णुगुप्त आकुल मन से अपनी पर्णकुटी के बाहर घूम रहे थे। अपने एक शिष्य से वे बार-बार पूछते थे—'करभिका अभी नहीं आई, शारङ्गरव !'

'नहीं, आचार्य !'

'क्या उसे मेरा सन्देश नहीं मिला ? वह है कहाँ ?'

'निपुणक कितनी देर से उसे ढूँढ़ रहा है, आचार्य ! मगध की सम्भ्रान्त महिलाओं ने उसे घेर रखा है। राजप्रासाद के विशाल अन्तःपुर में आज स्त्रियों का बड़ा भारी जमघट हो रहा है। सैनिक लोग किसी पुरुष को अन्दर नहीं जाने देते।'

'सैनिकों से कहो, विष्णुगुप्त तुरन्त करभिका से मिलना चाहता है। वे मेरा सन्देश उस तक पहुँचा देंगे।'

'जो आज्ञा, आचार्य !'

'कोई चार मुहूर्त बाद करभिका आचार्य विष्णुगुप्त की सेवा में उपस्थित हो गई। आज उसके चेहरे से हँसी फूटी पड़ती थी। वह हँसती-हँसती आचार्य के पास आई और बोली—'आप यहाँ अकेले घूम रहे हैं, आचार्य ! सभामण्डप में क्यों नहीं गए ? वहाँ आपकी प्रतीक्षा हो रही होगी, आचार्य !'

'पर मैं तो यहाँ तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, करभिका !'

आचार्य विष्णुगुप्त की गम्भीर मुखमुद्रा को देखकर करभिका चिन्ता में पड़ गई। आचार्य का मुखमण्डल उदास था, चिन्ता और उद्वेग की गहरी रेखाएँ उनके मस्तक पर खिची हुई थीं। करभिका को देखकर काँपते हुए स्वर में उन्होंने कहा—

'आओ बेटी, यहाँ मेरे पास बैठ जाओ।'

'आप आज इतने उदास क्यों हैं, आचार्य ? आज तो परम प्रसन्नता का दिन है।'

'बेटी, आज मैं हाथ जोड़कर तुझसे एक भिक्षा माँगना चाहता हूँ, क्या मुझे दे सकेगी ?'

'आप कैसी बात कर रहे हैं, आचार्य ! मैं आपको क्या दे सकती हूँ।

मेरा-तन-मन धन सब आपके अर्पण है। इससे बढ़कर मेरा सौभाग्य क्या होगा, कि मैं आपके किसी काम आ सकूँ।'

'मैं तुम्हारी बलि चाहता हूँ, करभिका !'

'मेरी बलि, मेरे शरीर की बलि। आचार्य ! क्या किसी औपचारिक कार्य के लिए आपको मेरे शरीर की आवश्यकता है ?'

'नहीं, करभिका ! तुम्हारे प्रेम की बलि।'

'मेरे प्रेम की बलि, आचार्य !'

'हाँ, करभिका ! चन्द्रगुप्त के प्रति तुम्हारा जो प्रेम है, उसे तुम्हें भारत-भूमि के लिए बलि देना होगा।'

'यह किस लिए, आचार्य !'

'मन्त्रि-परिषद् ने निर्णय किया है कि सम्राट् चन्द्रगुप्त का विवाह यवनराज सैल्युकस की कन्या के साथ हो, ताकि यवनों और आर्यों की मैत्री चिरस्थायी हो सके।'

'पर क्या चन्द्रगुप्त के बिना मैं एक क्षण भी जीवित रह सकूँगी, आचार्य !' यह कहकर करभिका मूर्च्छित हो गई। आचार्य विष्णुगुप्त उसे सँभाल ही रहे थे कि चन्द्रगुप्त ने बड़ी तेजी के साथ विष्णुगुप्त की पर्णकुटी में प्रवेश किया।

'यह मैं क्या सुन रहा हूँ, आचार्य !'

'तात, जो कुछ तुमने सुना है, वह ध्रुव सत्य है। मन्त्रि-परिषद् का निर्णय अन्तिम है।'

'मैं सैल्युकस की कन्या के साथ विवाह नहीं करूँगा, आचार्य !'

'तुम्हें उसके साथ विवाह करना ही होगा, तात !'

'क्या मैं विवाह के विषय में भी स्वतन्त्र नहीं हूँ, आचार्य !'

'नहीं, तात !'

'तो मेरा मगध के राजसिंहासन पर आरूढ़ होना सर्वथा निरर्थक है। मैं गुलाम होकर सम्राट् का पद ग्रहण नहीं करना चाहता। क्या भारतभूमि के सम्राट् को इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं है कि वह विवाह भी अपनी इच्छा के अनुसार कर सके। क्या उसका प्रणय भी मन्त्रि-परिषद् द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। एक साधारण-से-साधारण नागरिक भी यह अधिकार रखता है कि वह जिस स्त्री से चाहे प्रेम कर सके, जिसके साथ चाहे विवाह कर सके। पर क्या यह अधिकार सम्राट् को प्राप्त नहीं है ?'

'नहीं, तात !'

'तो मैं सम्राट्-पद को लात मारता हूँ। सम्राट् बनकर मैं यह गुलामी

स्वीकृत करने के लिए उद्यत नहीं हूँ।'

'शान्त होओ, तात ! आर्य-परम्परा के अनुसार सम्राट् का न कोई व्यक्तिगत जीवन होता है, न कोई व्यक्तिगत इच्छा। प्रजा का हित और कल्याण ही उसका जीवन है, और प्रजा की इच्छा ही उसकी इच्छा है। उसे जनता के लिए अपने व्यक्तित्व की बलि देना पड़ती है, तात !'

'पर मेरे विवाह के साथ जनता का क्या सम्बन्ध है, आचार्य ?'

'मन्त्रि-परिषद् की सम्मति में यह आवश्यक है, कि भारत-सम्राट् और यवनराज के कुल विवाह-सम्बन्ध द्वारा सम्बद्ध हों। मन्त्रिवर्ग इस बात को आर्यजाति के गौरव और भारतभूमि के उत्कर्ष के लिए उपयोगी समझता है।'

'पर मैं यवनकुमारी के साथ प्रेम नहीं कर सकूंगा, आचार्य !'

'सम्राट् की दृष्टि में कर्तव्य के सम्मुख प्रणय का कोई महत्त्व नहीं होना चाहिए, तात !'

'पर करभिका के लिए मैं सम्राट्-पद का त्याग कर दूंगा, आचार्य !'

'नहीं, तात ! तुम्हें यह नहीं करना चाहिए। तुम भारत-भूमि के सम्राट् इसलिए बनाए गए हो, क्योंकि तुम वीर हो, साहसी हो, महत्त्वाकांक्षी हो। भारतभूमि का हित इसी बात में है, कि तुम पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर आरूढ़ रहो। यह तुम्हारा कर्तव्य है, क्योंकि आर्यजाति और भारत-भूमि के लिए तुम्हारा सम्राट् बने रहना आवश्यक है। इस कर्तव्य के सम्मुख तुम्हें करभिका के प्रणय का बलिदान करना होगा, तात !'

करभिका अब होश में आ गई थी। आखों में आंसू भरकर उसने कहा—'क्या कठ जाति केवल बलिदान के लिए ही उत्पन्न हुई थी, आचार्य ?'

'हाँ, करभिका ! जो गौरव बलिदान में है, वह जीवन में नहीं है। सिकन्दर के साथ युद्ध करते-करते सब कठ नरनारियों ने अपने जीवन की आहुति दे दी थी। इससे कठ जाति मरी नहीं, वह सदा के लिए अमर हो गई है।'

'क्या मेरा सौभाग्य मगध के मन्त्रियों को सह्य नहीं है, आचार्य ?'

'नहीं, करभिका ! मन्त्रि-परिषद् को तुमसे कोई द्वेष नहीं है। आर्यजाति और भारत-भूमि के हित और कल्याण को दृष्टि में रखकर ही उसने चन्द्रगुप्त का विवाह यवनराज की कन्या के साथ करने का निश्चय किया है। तुम्हें क्या मालूम, करभिका ! जब महामन्त्री राक्षस ने यह प्रस्ताव किया था, तो उसे सुनकर मेरी क्या दशा हो गई थी। इन्द्रदत्त ने तब मुझसे

कहा था कि करभिका आपकी पुत्री है, सन्तान के वात्सल्य के कारण ही आप यवनराज की कन्या के साथ चन्द्रगुप्त के विवाह का समर्थन नहीं करते। मैंने उस समय अनुभव किया था कि सन्तान का प्रेम क्या होता है। मैं सोचता था, जो माताएँ अपनी सन्तान को खुशी-खुशी रणक्षेत्र में भेज देती हैं, वे कितनी बड़ी कुर्बानी करती हैं। रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त करने के लिए सैनिक लोग क्यों जाते हैं, करभिका ? इसीलिए न कि उनकी मातृभूमि का उत्कर्ष हो। वे हँसते-हँसते अपने जीवन की बलि दे देते हैं, उनकी माताएँ विलाप करती हैं, उनकी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं, उनकी सन्तान अनाथ हो जाती है। यह सब क्यों होता है, करभिका ? इसीलिए न कि मातृभूमि का कल्याण हो। आज तुम्हें भी अपनी बलि चढ़ानी है, करभिका ! जिस प्रकार माता पुत्र की, और पत्नी पति की हँसते-हँसते बलि दे देती है, उसी प्रकार तुम्हें भी अपने प्रणय की बलि देनी है, करभिका !'

'पर मेरे बिना सम्राट् का क्या आचार्य, बनेगा ?'

'मैं जानता हूँ, तेरे अभाव में चन्द्रगुप्त का जीवन शून्य हो जाएगा, वह अपने को असहाय अनुभव करेगा। ज्योतिविहीन दीपक की जो दशा होती है, वही तेरे बिना चन्द्रगुप्त की हो जाएगी। पर उसे इस दारुण दुःख को सहन करना ही होगा।'

'क्या आप मेरे दुःख को सह सकेंगे, आचार्य ? मैं आपकी पुत्री हूँ।'

'मैं जीवन-भर तिल-तिलकर जलता रहूँगा, करभिका ! तेरा दुःख मुझसे नहीं सहा जाएगा।'

'तो क्यों न चन्द्रगुप्त राजसिंहासन का परित्याग कर दें। हमें राजपाट नहीं चाहिए, आचार्य ! हम किसी जंगल में जाकर रहने लगेंगे, कन्द-मूल-फल से अपना निर्वाह कर लेंगे।'

'मन्त्रि-परिषद् इसे कभी स्वीकार नहीं करेगी, करभिका ! भारत के उत्कर्ष के लिए चन्द्रगुप्त का सम्राट् बने रहना आवश्यक है। तुम बलिदान की महिमा को पहचानो, करभिका ! कठ रमणियाँ अपने जीवन और सुख की आहुति देते हुए कभी ननु-नच नहीं करतीं।'

'मैं भारत-भूमि के लिए अपने जीवन को स्वाहा कर सकती हूँ, आचार्य ! मैं मृत्यु से नहीं डरती। कठ जाति के नर-नारी मृत्यु का आलिङ्गन करते हुए परम सुख का अनुभव करते हैं, आचार्य ! पर विरह-व्यथा से पीड़ित होकर तड़प-तड़पकर जीवन बिताना मृत्यु की अपेक्षा बहुत भयंकर है।'

'यह सच है, करभिका ! पर तुझे आज ऐसा बलिदान करना होगा, जो वस्तुतः मृत्यु की अपेक्षा भी बहुत अधिक कठोर है। तेरा पिता तुझसे यही भीख माँगता है।'

'और यदि मैं अपने जीवन का अन्त कर दूँ, आचार्य ?

'तेरे बिना तेरा यह पिता जीवित नहीं रह सकेगा, करभिका ! तुझे अपने पिता के लिए जीवित रहना ही होगा।'

'तो आपका मुझे यही आदेश है, पिता ?'

'हाँ, बेटी !'

'तो चलिए, आचार्य ! कहीं दूर देश को चले चलें। अब पाटलिपुत्र में मुझसे नहीं रहा जाएगा। कोई अन्य स्त्री चन्द्रगुप्त की अर्धाङ्गिनी बने, यह मैं इन आँखों से नहीं देख सकूँगी।'

'यह मुझे स्वीकार है, बेटी ! मगध में मेरा कार्य अब समाप्त हो गया है। जिस उद्देश्य से मैंने तक्षशिला के अपने आश्रम को छोड़ा था, वह अब पूर्ण हो गया है।'

'तो मुझे भी अपने साथ ले चलिए, आचार्य ! आपका यह शिष्य आपकी चरण-सेवा में अपना शेष जीवन बिता देगा।' चन्द्रगुप्त ने विनय-पूर्वक कहा।

'नहीं, चन्द्रगुप्त ! तुम्हें यहाँ पाटलिपुत्र में ही रहना होगा। भारत के विशाल साम्राज्य की रक्षा और उन्नति के लिए तुम्हारा यहाँ रहना अनिवार्य है।'

'क्या मैं मुहूर्त भर करभिका से एकान्त में बात कर सकता हूँ, आचार्य ?'

'हाँ, इसके लिए मेरी अनुमति तुम्हें प्राप्त है।'

करभिका और चन्द्रगुप्त पर्णकुटी से बाहर चले गए। बहुत देर तक दोनों चुप रहे। कोई एक शब्द भी न बोल सका। फिर चन्द्रगुप्त ने धीरे-धीरे कहा—'यह क्या हो गया, करभिका ?'

'मुझे पहले ही इसकी आशंका थी, सम्राट् !'

'सम्राट् कहकर मुझे लज्जित न करो, करभिका !'

'तुम्हें याद है, जब बन्दीगृह में पड़ी हुई माँ ने हमें आशीर्वाद देने के लिए अपने पास बुलाया था, तब उनके हाथ बढ़े-के-बढ़े ही रह गए थे, और आशीर्वचन कहने से पूर्व ही वे स्वर्ग को सिधार गई थीं। मैंने तभी कहा था, यह घोर अपशकुन है।'

'पर अब मेरा क्या बनेगा, करभिका ?'

'सुना है, यवन-कुमारी अनिन्द्य सुन्दरी है। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं तुम्हारे विवाह तक पाटलिपुत्र ठहर सकती। मैं हेलेन से कहती— बहिन, अपने इस अनमोल हीरे को मैं अपने हाथ से तुम्हें सौंपती हूँ, इसे सँभालकर रखना। इसे कहीं खो मत देना।'

'पर मैं तो तुम्हारे अतिरिक्त किसी और से प्रणय कर ही नहीं सकता, करभिका !'

'पर भारत-भूमि के उत्कर्ष के लिए तुम्हें यवन-कुमारी से प्रेम करना ही होगा, सम्राट् !'

'विवाह और प्रणय एक बात नहीं है, करभिका ! यदि तुम बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ ?'

'तुम्हारी किसी बात से मैं बुरा नहीं मान सकती, सम्राट्।'

'फिर वही सम्राट् ?'

'अच्छा, मेरे हृदय-सम्राट्, कहो क्या कहना चाहते हो ?'

'क्या यह सम्भव नहीं कि यवन-कुमारी के साथ-साथ तुम भी मेरी पत्नी बनकर रह सको। यवन-कन्या के साथ मेरा विवाह केवल राजनीतिक उद्देश्य से किया जा रहा है। मैं उससे प्रेम नहीं कर सकूँगा। तुम्हारे बिना मेरा जीवन शून्य हो जाएगा, करभिका !'

'पर यह बात कठों की मर्यादा के प्रतिकूल होगी।'

'मर्यादा, मर्यादा ! क्या मर्यादा प्रेम से भी अधिक महत्त्व रखती है, करभिका !'

'हाँ, मेरे हृदय-सम्राट् ! आचार्य विष्णुगुप्त की यही शिक्षा है कि मर्यादा और कर्तव्य के सम्मुख प्रेम का कोई महत्त्व नहीं है।'

'तो क्या तुम सचमुच मुझे छोड़कर चली जाओगी, करभिका !'

'अन्य मार्ग ही क्या है, मेरे हृदय-सम्राट् ! तुम्हें याद है, सिन्धुतट की ओर प्रस्थान करते हुए तुमने यह अँगूठी अपने हाथों से मेरी ऊँगली में पहनाई थी ? यदि तुम्हारी अनुमति हो, तो इसे मैं अपने पास रखे रखूं। मेरे जीवन का प्रकाशमान सूर्य अब अस्त हो गया है। अब मेरे सामने रात्रि है, घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि। इस अँधियारी निशा में यह अँगूठी ही मुझे प्रकाश देगी।'

'तुम भी अपनी कोई निशानी मुझे देती जाओ, करभिका !'

'यह लो, मेरे बालों की एक लट। इसे सँभालकर रख लेना।'

'यह सदा मेरे हृदय पर रहेगी, करभिका ! रक्षा-कवच के समान मैं इसे सदा अपने शरीर पर धारण करूँगा।'

'मेरे हृदय-सम्राट् ! मुझे भूल न जाना। एक दिन मैंने योगिनी का वेश बनाकर राजा नन्द के अन्तःपुर में प्रवेश किया था, माँ के अपमान का बदला लेने के लिए। अब मैं योगिनी बनकर ही जीवन के शेष दिन बिताऊँगी। कभी-कभी आकर अपनी इस प्रेम-योगिनी को देख जाया करना। यवन-कुमारी के मद-भरे प्रेम में, राजप्रासाद के सुख-वैभव में, अपनी इस योगिनी को भूल न जाना। योगी-योगिनियों के दर्शन के लिए तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी उनके आश्रमों में पधारने का कष्ट उठाया करते हैं, सम्राट् ! कभी यवन-कुमारी को भी अपने साथ ले आना। मैं उसे आशीर्वाद दूँगी—तुम्हारा पुत्र यशस्वी हो, सम्पूर्ण आर्यभूमि का सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो। बोलो, यवन-कुमारी के साथ मेरे दर्शन के लिए आओगे न ? पर हाँ, उसे यह कभी न बताना कि यह योगिनी किसके प्रणय-वियोग में तड़प-तड़प कर जान दे रही है। उसे केवल यही कहना, कि भगवान् अश्विन् के मन्दिर की एक योगिनी है, जो अपने तप और साधना के लिए विख्यात है। मैं उसे उपदेश दूँगी, उसे प्रेम का पन्थ दिखाऊँगी। तुम दोनों को सुखी देखकर मेरा हृदय तृप्त हो जाएगा।'

करभिका बहुत देर तक इसी तरह कहती रही। चन्द्रगुप्त की आँखों से आँसुओं की अजस्र धारा बह रही थी। उसका गला रुँधा हुआ था, एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकलता था।

बहुत देर हो जाने पर आचार्य विष्णुगुप्त के इन शब्दों से उनका ध्यान भंग हुआ—'आओ, बेटी, अब बहुत देर हो गई, हमें बहुत दूर जाना है।'

'मैं आई, पिताजी ! अभी आती हूँ।' करभिका ने कहा।

'तो जाओ, प्यारे ! आर्यजाति और भारत-भूमि की रक्षा के लिए मैं अपनी सबसे प्रिय वस्तु को बलि चढ़ाती हूँ। तुमसे अधिक प्रिय मुझे और कौन है ? कठ लोगों की यही परम्परा है। मैं भी कठ बाला हूँ, अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकती।' यह कहकर करभिका ने चन्द्रगुप्त से बिदा ली।

'आप मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हैं, आचार्य ?' चन्द्रगुप्त ने प्रश्न किया।

'पाटलिपुत्र में मेरा कार्य समाप्त हो गया है, तात ! अब मैं पुनः अपने आश्रम को वापस जा रहा हूँ। मेरा आशीर्वाद है, कि तुम्हारे कुल से आर्य-जाति और भारत-भूमि का हित हो। जब तक आर्यजाति कायम रहे, तुम्हारा और तुम्हारे कुल का नाम स्थिर रहे।'

'पर आपकी छत्रछाया के अभाव में मैं अपने कर्तव्यों का पालन कैसे कर सकूँगा, आचार्य ?'

'मैं तुम्हें अमात्य राक्षस के हाथों में छोड़े जा रहा हूँ, तात ! उनको अपना गुरु मानना। उनके प्रति वही भाव रखना, जो अब तक तुम मेरे प्रति रखते थे। चलो बेटी करभिका, अब देर करने का समय नहीं है, हमें बहुत दूर जाना है।'

'पर क्या आपकी यात्रा की तैयारी हो गई है, आचार्य ! क्या महामन्त्री राक्षस ने आपकी यात्रा का समुचित प्रबन्ध कर दिया है ?'

'इसकी आवश्यकता नहीं है, तात !'

'तो क्या आप इसी प्रकार अकेले तक्षशिला तक जाएँगे, आचार्य !'

'हाँ, तात ! भारत के ब्राह्मणों की यही परम्परा है।'

'आपके शत्रुओं की कमी नहीं है, आचार्य ! कितने ही कुल आपके नीति-चक्र से टकराकर नष्ट हुए हैं। यवनों के गूढ़पुरुषों का भी इस देश में अभाव नहीं है। यदि किसी ने आप पर हाथ उठाया, तो क्या होगा, आचार्य ?'

'अपनी रक्षा करने के लिए यह ब्राह्मण पूर्ण रूप से समर्थ है, तात ! तुम मेरी चिन्ता न करो।'

सम्राट् चन्द्रगुप्त ने आचार्य विष्णुगुप्त के पैर छुए। राक्षस, इन्द्रदत्त, सैल्युकस, व्याडि, मैगस्थनीज़ आदि ने भी चरण छूकर उन्हें प्रणाम किया।

सबको आशीर्वाद देकर आचार्य विष्णुगुप्त पाटलिपुत्र से बिदा हो गए। केवल करभिका उनके साथ थी। हिमालय से समुद्रपर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण विशाल आर्यभूमि को एक सूत्र में संगठित करने वाला, नन्दकुल का मूलोच्छेद करने वाला, भारत की शस्त्र-शक्ति और शास्त्र-बल का पुनरुद्धार करनेवाला यह महान् आचार्य अपनी मानस-पुत्री करभिका को साथ लेकर पश्चिम की ओर चलता गया, एक बार फिर तक्षशिला के अपने आश्रम में रहकर वटुकों को त्रयी, आन्वीक्षकी और दण्डनीति की शिक्षा देने के लिए। इस महान् आचार्य के लिए न धन-वैभव का कोई मून्य था, न राजशक्ति का। ज्ञान ही उसकी एक मात्र सम्पत्ति थी और त्याग ही उसका बल था।

निर्जन पथ पर चलते हुए आचार्य विष्णुगुप्त ने करभिका से पूछा—'क्यों, बेटी ! तुम्हारा यह पिता भी कितना निर्दयी है ! यदि मैं तुम्हारा असली पिता होता, तो क्या तुम्हारे प्रणय और सुख की इस प्रकार बलि दे सकता ?'

'आचार्य ! मेरे पिता आपके सदृश ही त्यागी और तपस्वी श्रोत्रिय थे।'

'पर क्या वे सचमुच तुझे इसी प्रकार बलि चढ़ा देते ?

'क्यों नहीं, आचार्य ! कठ लोगों के लिए बलिदान से बढ़कर गौरव की कोई बात नहीं होती ।'

'करभिका ! मेरी बेटी, तेरी जैसी पुत्री पाकर मेरा जीवन सफल हो गया है !'

परिशिष्ट

शब्द-अर्थ

अग्नियोग—इस प्रकार का योग (सामग्री, मसाला) जो ज्वलनशील हो और तुरन्त अग्नि पकड़ ले।

अजामेघ—ऐसा यज्ञ, जिसमें बकरे की वलि दी जाए।

अन्तपाल—सीमा प्रदेश का रक्षक सेनापति।

अन्तेवासी—शिष्य, शागिर्द।

अप्रतिहत—अपराजित, एक देवता।

अभिचार-क्रिया—मारण, मोहन, उच्चाटन आदि तान्त्रिक प्रयोग।

अभिजन—वह स्थान जहाँ पिता, पितामह आदि पूर्वज बसते आए हों।

अभिज्ञानमुद्रा—पासपोर्ट, परिचायक-पत्र।

अभिधम्म पिटक—बौद्ध त्रिपिटक का एक अंग।

अभियान—आक्रमण, किसी कार्य का अत्यधिक प्रबलता से प्रारम्भ।

अभियात्स्य कर्म—आक्रमण करने की प्रक्रिया।

अभिसंहत—संघ या संगठन में संगठित।

अर्थ—धन। ऐसी पृथ्वी जहाँ मनुष्य बसे हुए हों। सांसारिक साधन।

अर्थोपधाशुद्ध—ऐसा व्यक्ति जिसे अर्थ (धन) का लोभ विचलित न कर सके।

अश्विन्—एक देवता।

अष्टाङ्गिक धर्म—बौद्ध धर्म। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् प्रयत्न, सम्यक् विचार और सम्यक् ध्यान—ये बौद्ध धर्म के आठ अंग हैं।

आजीवक—अन्यतम सम्प्रदाय, जिसका प्रवर्तक मंखलिपुत्र गोसाल था।

आटविक—जंगल का निवासी।

अटवि—जंगल ।
आटविक सेना—जंगली जातियों के सैनिकों की सेना ।
आथर्वण—अथर्व वेद में प्रतिपादित गुह्य विधियाँ व प्रयोग ।
आन्वीक्षकी विद्या—दर्शनशास्त्र ।
आपूपिक—रोटी बनाने वाला रसोइया ।
आशुमृतक परीक्षा—पोस्टमार्टम । मृत्यु का कारण जानने के लिए परीक्षा ।
आसन्दी—बैठने की चौकी ।
आहितुण्डिक—सँपेरा ।
उच्छ्रित ध्वज—बुर्ज ।
उदास्थित—परिव्राजक व साधुओं का एक भेद ।
उपलम्भ—उपलब्धि, प्राप्ति ।
उपधा—परख, परीक्षा ।
उशना—आचार्य शुक्र ।
एकराज—एकतन्त्र शासक ।
औदनिक—चावल पकानेवाला रसोइया ।
औपचारिक—गुह्य उपचार-क्रियाएँ करने वाला ।
औपनिषदिक—रहस्यमयी क्रियाओं व गूढ़ रहस्यों का ज्ञाता ।
औशनस—आचार्य शुक्र के सम्प्रदाय का अनुयायी ।
कर्मकर—मजदूर ।
कक्ष्या—कमरा ।
कक्ष्या विभाग—पृथक् होकर बैठने के लिए बनाया हुआ कमरा ।
कण्टक शोधन—फौजदारी न्यायालय ।
कापटिक—कपट वेशधारी गुप्तचर ।
कामोपधाशुद्ध—जो कामवासना के वशीभूत होकर कुपथगामी न हो ।
कार्त्तान्तिक—ज्योतिषी ।
कार्षापण—मौर्य युग का प्रधान सिक्का ।
क्रीड़ागृह—काम-क्रीड़ा का स्थान ।
कुलमुख्य—परिवार व कुल का मुखिया ।

कुशीलव—नटों का एक भेद।

कूट चक्र—कूटनीति का गूढ़ चक्र।

कूट युद्ध—कूटनीति द्वारा किया जानेवाला युद्ध।

कोष्ठक—मन्दिर।

गण या गणराज्य—ऐसा राज्य जिसमें कोई वंशक्रमानुगत राजा न हो।

गणमुख्य—गणराज्य का प्रधान।

गर्भगृह—तहखाना।

गणिका—वेश्या।

गणिकाध्यक्ष—वेश्याओं पर नियन्त्रण रखनेवाला राजपदाधिकारी।

गूढ़पुरुष—गुप्तचर।

गृहपतिक—गृहपति का भेस बनाकर कार्य करनेवाला गुप्तचर।

ग्रामणी—ग्राम का मुखिया व राजकर्मचारी।

चरित्र—कानून का अन्यतम अंग। निगमों, श्रेणियों, जातियों, ग्रामों एवं जनपदों के परम्परागत कानून।

चण्डिका—एक देवी।

चातुरन्त राज्य—चारों दिशाओं में व्याप्त राज्य, चक्रवर्ती राज्य।

चीवर—बौद्ध भिक्षुओं द्वारा धारण किया जानेवाला वस्त्र।

जटिल—जटा जूट धारण करनेवाला तपस्वी साधु।

जनपद—ऐसा राज्य जिसके निवासी एक जन (कबीले) के हों।

जयन्त—एक देवता।

जानपद सभा—जनपद की सभा।

ज्येष्ठक—व्यवसायियों व व्यपारियों के संगठन का मुखिया।

तूर्यकर—तुरही बजानेवाला।

धर्म—कर्तव्य, कानून का अन्यतम अंग जिस कानूनी प्रश्न का निर्णय सत्य को दृष्टि में रखकर किया जाए।

धर्मस्थीय—दीवानी न्यायालय।

धर्मस्थ—धर्मस्थीय न्यायालय का न्यायाधीश।

ध्वजमात्र—जिसकी स्थिति ध्वजा के समान हो, जिसके पास वास्तविक

राजशक्ति न हो, जो केवल राजशक्ति का चिह्नमात्र हो।

दण्डनीति—राजनीतिशास्त्र।

दण्डपाल—सेना का अन्यतम पदाधिकारी।

दासहट्ट—दासों के क्रय-विक्रय का हाट।

दुर्गपाल—किले का अध्यक्ष।

दुर्गलम्भोपाय—किले की विजय का उपाय।

दौवारिक—दुर्ग या राजप्रसाद के प्रवेशद्वार का प्रधान अधिकारी।

निगम—व्यापारियों का संगठन या संघ।

निष्क—मौर्य युग का सोने का सिक्का।

निःश्रेयस—मोक्ष।

नैमित्तिक—ज्योतिषियों का एक भेद।

पक्वमांसिक—मांस पकानेवाला।

पक्वान्नपण्य—हलवाई।

पण—मौर्य युग का एक सिक्का।

पण्य—विक्रेय पदार्थ।

पण्यवीथि—बाजार।

पण्य शाला—दूकान।

पण्य शुल्क—क्रय-विक्रय पर वसूल किया जानेवाला कर।

पराग—चूर्ण, पाउडर।

पान्थशाला (पान्थागार)—यात्रियों के निवास का स्थान-होटल।

पानागार—शराबखाना।

पाषण्ड—धार्मिक सम्प्रदाय।

पूर्वसाहसदण्ड—प्राचीन काल में एक विशिष्ट प्रकार के दण्ड को 'साहस-दण्ड' कहते थे, जिसके तीन वर्ग थे, पूर्वसाहसदण्ड, मध्यम साहसदण्ड और उत्तमसाहसदण्ड। सम्भवतः इस दण्ड में आर्थिक जुरमाना किया जाता था।

प्रपा—प्याऊ।

प्रव्रज्या—संन्यास, भिक्षुव्रत।

प्राची—भारत के पूर्वी प्रदेश।

पेशलरूपा—परम सुन्दर, सुकुमारी।

पौर—पुरसभा का प्रधान, पुर (नगर) की सभा।

प्रदेष्टा—कण्टकशोधन (फौजदारी अदालत) का न्यायाधीश।

प्रेक्षा—तमाशा।

प्रेष्या—विश्वस्त सेविका, दूती।

भृत सेना—भृति (वेतन) प्राप्त कर कार्य करनेवाले सैनिकों की सेना।

भुक्तिशाला—अतिथिशाला।

बलमुख्य—सेनापति।

मदिरा—मौर्य युग की एक देवी।

मध्यमा प्रतिपदा—मध्य मार्ग, जो बुद्ध की प्रमुख शिक्षा है।

महानस—रसोईघर।

मार—काम, कामदेव।

मंत्र युद्ध—कूटनीति का युद्ध।

मोक्ष—तलाक, विवाह सम्बन्ध से मोक्ष।

मौल सेना—राज्य के मूल निवासी नागरिकों द्वारा बनी हुई सेना।

मौहूर्तिक—ज्योतिषी।

मृद्वीका—किशमिश, द्राक्षा। किशमिश की शराब।

यवन—ग्रीक।

यवनदेश—ग्रीस।

राजशासन—राजा द्वारा प्रचारित आज्ञा एवं कानून।

रूपाजीवा—वेश्या।

वार्त्ता—कृषि, पशुपालन और वाणिज्य।

वार्ताशस्त्रोपजीवि—ऐसा गणराज्य जिसके निवासी जहां अपनी आजीविका के लिए कृषि, पशुपालन और वाणिज्य का अनुसरण करते हों, वहां अपनी रक्षा के लिए शस्त्र भी धारण करते हों।

विजित—सम्राट् द्वारा विजित प्रदेश।

विवीत—चरागाह।

विवीताध्यक्ष—चरागाह का अध्यक्ष ।

वैदेहक—व्यापारी के भेस में गुप्तचर ।

वैश्रवण—कुबेर ।

व्यवहार—कानून का अन्यतम अंग । दो या अधिक व्यक्तियों द्वारा परस्पर निर्धारित किया गया व्यवहार ।

व्रात्य—जिसे व्रतपालन के परिणामस्वरूप दीक्षा देकर समाज के किसी वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया हो, यथा व्रात्य क्षत्रिय ।

शासन—कानून का अन्यतम अंग, राजकीय आदेश ।

शूकर मार्दव—सुअर के बच्चे का मांस ।

शौण्डिक—शराब बेचनेवाला ।

श्रेणी—व्यवसायियों और शिल्पियों का संगठन ।

श्रेष्ठी—सेठ ।

सत्री—गुप्तचर ।

समाज—पान, नृत्य,कला आदि के निमित्त आयोजित गोष्ठी एवं समारोह ।

सन्थागार—गणराज्यों का संसद् भवन ।

समाहर्ता—प्रान्तीय शासक ।

सार्थ—काफिला, कारवाँ ।

सार्थवाह—काफिले का नेता ।

सैनिक श्रेणि—स्वतन्त्र सैनिकों द्वारा संगठित सेना ।

स्कन्धावार—छावनी, फौजी कैम्प ।

स्वधर्म—अपना कर्तव्य ।

क्षत्रप—वायसराय, राज्यपाल ।

त्रपु—सीसा ।

त्रयी—ऋग्, यजुः, साम—त्रयी संहिता ।
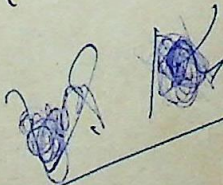
सेनानी पुष्यमित्र

(पतन और उत्थान)

सत्यकेतु विद्यालंकार का एक अन्य ऐतिहासिक उपन्यास

राजा अशोक ने धर्मविजय की नीति को अपनाकर क्षात्रशक्ति की जिस प्रकार उपेक्षा की थी, उसके कारण विशाल मौर्य साम्राज्य खण्ड-खण्ड होने लगा और विदेशी यवनों ने भारत पर फिर आक्रमण आरम्भ कर दिये। अशोक के निर्बल उत्तराधिकारियों के समय में यवन सेनाएँ भारत को आक्रान्त करती हुई अयोध्या तक चली आईं। सेनानी पुष्यमित्र ने मौर्यों के निर्वीर्य शासन का अन्त कर भारत की क्षात्रशक्ति का पुनरुद्धार किया और साथ ही उस सनातन वैदिक धर्म का भी, बौद्धों के उत्कर्ष के कारण जिसमें बहुत क्षीणता आ गई थी।

इस उपन्यास में प्राचीन भारतीय इतिहास के इसी महत्त्वपूर्ण काल की घटनाओं पर मनोरंजक रूप से प्रकाश डाला गया है।

श्री सरस्वती सदन
ए-१/३२, सफ़दरजंग एन्क्लेव
नयी दिल्ली-२९